

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj)

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER S No	DUE DATE	SIGNATURE

॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

२८५

५७७७७७

म० म० श्रीहरिहरकृतं

प्रभाषं M M HA रणियम्

‘प्रकाश’ द्विन्द

akāśa’ Hindi Commentary

व्याख्या By

ACANDRA MISRA

आचार्य श्रीरामच

ist College, Patna

(प्राध्यापक • राजकीय संस्कृत



चौरवम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणस, OFFICE

१९६६

प्रचारक : श्रीसम्भा संस्कृत शैलीय भाषिण, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०२६
मूल्य : ६-००

Sanskrit Series Office

andir Lane

amba, Post Box 8

asi-1 (India)

1969

Phone : 3145

प्रधान शाखा

श्रीसम्भा विद्याभवन

श्रीस, पो० बा० ६६, वाराणसी-१

फोन : ३०७६

THE
HARIDAS SANSKRIT SERIES
285

PRABHĀVATĪPARINAYA

OF
M M HARIHARA

Edited with the 'Prakāśa' Hindi Commentary

By
ĀCĀRYA ŚRĪ RĀMACANDRA MIŚRA
Professor, Govt Sanskrit College, Patna

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1
1969

First Edition

1969

Price : Rs. 6-00

Also can be had of

THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

Publishers and Oriental Book-Sellers

Chowk, Post Box 69, Varanasi-1 (India)

Phone : 3076

प्राक्कथन

नाटक साहित्य की प्राचीनता

भारतीय नाटक साहित्य विचारधारा तथा विकासक्रम में मूलतः स्वल्प है, इस बात को अब समो आलोचक मानने लग गये हैं। वैदिक साहित्य की समोक्षा से पता चलता है कि वैदिककाल में नाटक के समो अङ्गों—सवाद, सङ्गीत, नृत्य एव अभिनयकला का किसी न किसी रूप में अस्तित्व था। ऋग्वेद में यम यमो, उर्ध्वशी पुरुरवा और सरमा पणिके सवादात्मक सूक्तों में नाटकीय सवाद का तत्त्व वर्तमान है। सामवेद की सङ्गीतप्राणता अतिप्रसिद्ध है। आलोचकों का अनुमान है कि ऐसे सवाद हो कालान्तर में परिमार्जित होकर नाटकों के रूप में परिणत हुए। रामायण, महाभारतकाल में नाटक का कुछ और स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। विराट् पर्व में रङ्गशाला का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। नट शब्द का भी वहाँ प्रयोग किया गया है, जिमका अर्थ शोधरस्वामो ने 'नवरसामिनयचतुर' किया है। हरिबंश में रामायण की कथा पर आधारित एक नाटक के खेले जाने का वर्णन आया है। रामायण में भी 'नट', 'नर्तक', 'नाटक', 'रङ्गमञ्च' आदि का वर्णन स्थान स्थान पर मिलता है। रामायण में अभिनेता के अर्थ में 'कुशीलव' शब्द का प्रयोग भी पाया जाता है। महावैयाकरण पाणिनि ने 'पाराशर्यशिलालिभ्वा भिक्षुनटसूत्रयोः' इस सूत्र में नट सूत्र शब्द से नाट्यशास्त्र का स्मरण किया है।

इन सारी बातों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि उनके पूर्व ही अनेक नाटक रचे जा चुके होंगे, जिन नाटकों के बाद इन नटसूत्रों की रचना हुई होगी, जिन्हें पाणिनि ने पूर्वनिर्दिष्ट सूत्र में स्मरण किया है। लक्ष्य ग्रन्थों को देखकर ही लक्षण ग्रन्थ बनते हैं। अतः नटसूत्रों से पूर्व में नाटकों का अस्तित्व मानना होगा। इस तरह हम देखते हैं कि संस्कृत नाटक साहित्य को परम्परा अतिप्राचीन है।

प्राचीन पद्धति के अनुसार विचार करने से भी नाटक साहित्य की प्राचीनता सिद्ध होती है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है :—

“महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः। क्रीडनीयकमिच्छामोदृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्॥
न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्य शूद्रजातिषु। तस्मात्सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्॥

एवमस्त्विति तानुक्त्वा देवराजं त्रिमूर्त्य च।

सस्मार चतुरो वेदान् योगमास्थाय तत्त्ववित्॥

धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च सोपदेशं ससंप्रहम्। भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम्॥
सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रदर्शकम्। नाट्यसंज्ञमिमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्॥
एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदानुस्मरन्। नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्॥

जग्राह पाठ्यसूच्येदात् सामर्थ्यो गीतमेव च । यत्रुर्वेदादभिनयान् रमान्धर्षणादिः ॥
 वेदोपयद् सम्यक्दो नाट्ययदो महा मना । ण्य भगवता शृष्टा ब्रह्मणा एलितामत्रम् ॥
 आज्ञापितो विद्विषात् नाट्यवेद पितामहात् ।

पुत्रानप्यापथ योग्यान् प्रयोग चास्य तावत् ॥

एव प्रयोगे प्रारब्ध देयदानवनाशने । अभवन् सुभितासर्वे दाय्या य तत्र मूना ॥
 देवतानामृषीणाञ्च राजामथ कुटुम्बिनान् । शृतानुररण शोके नात्यनियनिधीयते ॥

शारदाजनय ने श्री भग्ने 'भावप्रकाशन' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में लिखा है —

बह्वस्यान्ते कदाचित् दृष्या शोकाग्नेश्वर ।

स्वें महिम्नि स्थित स्यैर नृत्यतान्दनिर्भरम् ॥

मनसैवाम्बुद्विष्णु ब्रह्मण च महेश्वर । नियामाद् द्रव्यद्वयस्य ब्रह्मा एवाज्ञानधाम्बुजम् ॥
 शृष्ट्वा च द्रव्यदेवस्य पुरातनमयाम्भरन् । दिव्य चारित्र्यमेश भ कथमप्यज्ञानमिदम् ॥
 इति चिन्तापरे तस्मिन्मध्यगाथविदेश्वर । स नात्ययदमप्याप्य मप्रयोगे चतुमुग्धम् ॥

उवाच वास्य भगवान् नन्दी तद्यन्तितार्थवित् ।

नात्यवदोपदिष्टानि रूपराणि च यानि मु ॥

विधाय तेषामेकैस्तु रूपैश्च शृण्वित्वात् । भरतेषु प्रयोग्य तावदा मयम्बु विज्ञानता ॥
 तस्मिन् प्रयुक्त भरतैर्भावाभिनयकोविदै ।

प्राक्तनानि च कर्माणि प्रपद्याणि भवन्ति ते ॥

एवं मूढजनन्तरयाश्रयं स भगवान् प्रभु । ध्रुवैतद्भजन प्रीतो ब्रह्मा द्यै गमग्वित् ॥
 सतस्त्रिपुरदाहास्य कदाचिद् ब्रह्मममदि । प्रयुज्यमाने भरतैर्भावाभिनयकोविदै ॥

सदतत्प्रेक्षमाणस्य मुग्धेभ्यो ब्रह्मण ब्रह्मात् ।

वृत्तिभि सह चाचार्य शृङ्गाराद्या विनिर्गता ॥”

उपर्युक्त समीक्षा तथा उद्धरणों से यह अमन्दिष्ठ रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृत नाटक साहित्य ने अपने ऊमवत् विकास में वैदिक काल, इतिहास एवं पुराणों से सह दगा एवं प्रेरणा पाई है । हमने श्री मन्त्रे का स्थान नहीं है कि संस्कृत नाटकों के विकास में पर्याप्त समय लगा होगा ।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि भारतीय नाटक साहित्य प्रौढ नाटकों से प्रभावित है । उनका नहीं है कि सिध्दार्थ बड़ा नाटक मिय राजा था, उससे मन्त्रेन्द्रनाथ नाटकों का प्रचुर अभिनय हुमा करना था । भारत में जाने वाले अन्य प्रौढ नाटकों को सभा में भी नाटक का काफी प्रचार था । इसका प्रभाव संस्कृत नाटक साहित्य पर रहा, किन्तु भारतीय प्रतिभा ने प्रौढ नाटकों से प्रभाव को आत्मसात् कर लिया ।

वहाँ तक विचार का साधन है हम वहाँ में कुछ लक्ष्य नहीं मान्य बदना है । वेना कि पहले कहा गया है, यह हम भारतीय नाटक साहित्य को वेदों पर अत्यन्त मान्य है

तब उस पर ग्रीक नाटकों के प्रभाव की कल्पना क्यों की जाय ? यदि हम भारतीय नाटक साहित्य का विकास वेदमूलक मानते हैं तब तो वह स्वतन्त्र भी हो सकता है, उस पर ग्रीक प्रभाव की कल्पना बैसे प्रमाणित हो सकेगी ? ग्रीक नाटकों के साथ भारतीय नाटकों के तुलनात्मक अध्ययन से भी इनका अवान्तर भेद ही सिद्ध होता है। कुछ लोगों ने भारतीय नाटकों में 'जवनिका' शब्द का प्रयोग देखा, उसका शुद्ध रूप 'यवनिका' को माना और इसी 'यवनिका' शब्द के आधार पर कहना प्रारम्भ कर दिया कि भारतीय नाटक साहित्य पर यवनदेश यूनान का प्रभाव पड़ा है। यह कथन भी नितान्त भ्रमपूर्ण है। 'यवनिका' नहीं 'जवनिका' शब्द ही शुद्ध रूप है, वह द्रुतगामी वस्त्र सण्डों से बनी होने के कारण 'जवनिका' कही जाती है। राजशेखर ने जवनिका शब्द का प्रयोग किया है, उनके प्राकृत प्रयुक्त जवनिका शब्द का संस्कृत संस्कारण 'यवनिका' कर इन स्वयम्भू संस्कृतज्ञों ने यूनान के सम्बन्ध का आविष्कार कर बाला। वस्तुतः संस्कृत तथा प्राकृत में भी जवनिका शब्द ही है। इस तरह के अज्ञानमूलक तर्कों की और क्या आलोचना की जाय ? भारतीय रङ्गमञ्च की व्यवस्था पूर्णता भी यूनानी प्रभाव की चर्चा के विपरीत है। यूनान के नाटक जब सुले आकाश में खेले जाते थे, तब भी भारत का रङ्गमञ्च व्यवस्थित था, जिसका प्रभाव जावा, सुमात्रा प्रभृति देशों के नाटक पर पड़ा।

संस्कृत नाटक का प्रभाव

संस्कृत में नाटकों की संख्या बहुत अधिक नहीं है, परन्तु वह बहुत कम भी नहीं है। अतः अधिक नाटककार संस्कृत में गिनाये जा सकते हैं। संस्कृत नाटककारों में सर्वप्रथम नाटककार कौन है, इस प्रश्न का समाधान सरल नहीं है। इसका उत्तर यदि दिया जाय कि मास ही सर्वप्रथम संस्कृत नाटककार हुए तो प्रायः यह उत्तर अधिक लोगों को ठीक मालूम पड़ेगा।

'लुहरसन' महीदय का कथन है कि सर्वप्रथम संस्कृत नाटककार 'अश्वघोष' है। 'लुहरसन' ने 'तूर्फान' नगर में अश्वघोष के तान नाटक प्राप्त किये थे, जिनमें एक का नाम 'शारिपुत्रप्रकरण' था। यह छ' अङ्कों का नाटक है। इसमें शारिपुत्र मौद्रल्यायन की प्रव्रज्या का वृत्तान्त वर्णित है। दूसरा और तीसरा नाटक अधूरा है। इन नाटकों की भाषा संस्कृत है। कालिदास को ही सर्वप्रथम नाटककार मानने वाले लोगों की कमी नहीं है। यह भी हो सकता है कि कालिदास के पहले बने नाटक इन दिनों अप्राप्य हो गये हों और अब कालिदास के नाटक ही आदिम नाटक कहे जाने के अधिकारी हो गये हों।

संस्कृत में नाटक समृद्धि

संस्कृत भाषा में लिखे गये नाटकों की संख्या प्रचुर है, यह बात कही जा चुकी है। केवल सरदा की दृष्टि से ही नहीं, नाटक में अपेक्षित अन्यान्य गुणों की दृष्टि से भी

संस्कृत नाटक साहित्य को समृद्ध माना जाता है। जिन प्रकार हमारे भारतवर्ष को मनुष्यता की सूचना ब्यास, वाल्मीकि, कालिदास, माघ आदि की काव्य रचि से प्राप्त होती है, उसी तरह संस्कृत के नाटक शाकुन्तल, रत्नावली आदि को निदान्त्र समृद्ध है। मार्को की साज सज्जा, पात्रों की वेष्ट भूषण, स्थान विशेष की कल्पना, परिस्थिति-विशेष को उपस्थापना आदि बानें ऐसी होती हैं जिनसे समृद्ध नाटक तात्कालिक समाज को समृद्धि का अनुमान कराने में सहायक होती है। इन दृष्टि से संस्कृत नाटक निदान्त्र समृद्ध कहे जा सकते हैं।

संस्कृत नाटकों के प्रभेद

अग्निनेय साहित्य का प्रधान अङ्ग नाटक ही है। यद्यपि शास्त्रानुसार उनका मुरार नाम रूपक है—'रूपतोपायु रूपकम्'। रूपक शब्द ही सभी अग्निनेय काव्यों का परिचायक है, परन्तु आचार्य साधारणतः रूपकमान को नाटक कह लेते हैं। संस्कृत भाषा निरवङ्ग अग्निनेय साहित्य—

“नाटकमय प्रकरणं भाण-व्यायोग-समवकार-दिमा”।

ईहामृगाङ्गवीथ्यं प्रहसनमिति रूपकानि दत्त ॥”

इन दत्त भाषों में विभक्त है, परन्तु इनमें सर्वाधिक समृद्ध नाटक ही है। आचार्य अङ्गों पर कल्पना साहित्य नहीं प्रस्तुत किया गया है जिनका नाटक पर।

नाटक में शृङ्गार तथा वीररस का प्राधान्य अपेक्षित है—‘एक एव भवेद्गो शृङ्गारो वीर एव वा। अङ्गमन्ये रसाः सर्वे।’ मन के भाव प्रधानता को दृष्टाओं में अविद आरशाद गोचर होते हैं—उपवृत्त एव मातुर्पुत्र। मातुर्पुत्र के आरशादनाथ किये गये प्रकाश शृङ्गाररस प्रधान नाटकों के रूप में और उपवृत्त के आरशादनाथ किये गये प्रकाश वीररसप्रधान नाटकों में प्रविष्ट होते हैं।

संस्कृत में किये गये नाटकों के प्राचीन प्रभेद दो ही थे। शृङ्गारप्रधान अथवा वीर-प्रधान। बाद में चल कर संस्कृत के नाटक कुछ दूरतो विद्या की ओर भी मुड़े। यद्यपि यह मुड़ना उनके शान का परिचायक हुआ पर मुड़ वे अवरय।

पण्डितों ने जब देखा कि वीर तथा शृङ्गार पर आधारित नाटकों में कुछ मर्त वग्न नहीं आ रही है, और इनसे परिष्कृत से सम्मर्दिग शास्त्रीय तरह सरलता के साथ जनमन तक नाटकों के द्वारा ही पहुँच सकते हैं, तब उन लोगों ने एक नये प्रकार के नाटक का निर्माण करना प्रारम्भ किया, जिसे लुकिचतुर्क शास्त्रीय नाटक कहा जा सकता है। ऐसे नाटकों में प्रयोग के माध्यम से लघुतर दार्शनिक बानें प्रस्तुत की जाती हैं। इन तरह के नाटकों को ‘पद्मकामक’ नाटक भी कहा जाता है। लोहान विष्णु का ‘मोक्ष-पद्मोद्भव’ इन पद्धति का एक सरल नाटक है।

प्रभावतीपरिणय नाटक

प्रस्तुत 'प्रभावतीपरिणय' शृङ्गार रस प्रधान नाटक है। इसमें श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और वज्रनामासुर की कन्या प्रभावती का पावन एवं प्रेममूलक परिणय वर्णित किया गया है, यह आर्यायन पौराणिक है अतः इसके द्वारा नाटक में अपेक्षित 'रघातवृत्त' की पूर्ति हो गई है। नाटक के लक्षण में लिखा है —

‘नाटक रघातवृत्त स्यात् पञ्चसन्धिषु सयनम् ।

विलासद्वर्थादिगुणवद्युक्त नानाविभूतिभिः ॥

× × ×

प्ररघातवृत्तो रानर्षिर्धरिरोदात्त प्रतापवान् ।

दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः ॥

× × ×

नायक में अपेक्षित गुण भी प्रद्युम्न में वर्तमान थे। इस प्रकार से नाटक के सभी तत्त्व, कथा, नायक, नायिका, वर्णनीय प्रभानादि, सारी सामग्री इसे नाटक बनाने के लिए वर्णित कथा महाभारत के अकभूष इतिवशपुराण के विष्णु पर्व में ११वें अध्याय से १७वें अध्याय तक वर्तमान है, वह इस प्रकार है —

एकनवतितमोऽध्यायः

चननेत्रय उवाच—

भानुमयापहरण विनय केशवस्य च । छालिक्यनयन चैव देवलोकान्महामुने ॥
क्रीडा च सागरे दिव्या वृष्णीनामतिरेकसाम् । अध्रौष परमाश्चर्यं मुने धर्मश्रुता वर ॥
वज्रनाभवधो ह्युक्तो निकुम्भवधकीर्तने । तन्मे कौतूहलं श्रोतुं प्रसादाद् भवतो मुने ॥

वैशम्पायन उवाच—

हन्त ते वर्णयिष्यामि वज्रनाभवध नृप । विनय चैव कामस्य साम्बस्यैव च भारत ॥
मेरो सानौ नरपते तपश्चक्रे महासुर । वज्रनाभ इति रघातो निश्चित समितितय ॥
तस्य तुष्टो महातेजा ब्रह्मा लोकपितामह । धरेण च्छन्दयामाम तप्या परितोपित ॥
अवध्य च स देवेभ्यो वने दानवसत्तम । पुर वज्रपुरं चापि सर्वरत्नमय शुभम् ॥ ७ ॥
स्वच्छन्देन प्रवेशश्च न वायोरपि भारत । अचिन्तितेन कामानामुपपत्तिर्नराधिप ॥
शाखा नगरसुर्याना मवाहाना शतानि च । नगरस्याप्रमेयस्य समन्ताञ्जननेत्रय ॥
तथा तद्भवत् तस्य वरदानेन भारत । उवास वज्रनगरे वज्रनाभो महासुर ॥ १० ॥
कोटिशो वरलब्ध तमसुरा परिवार्य ते । उपुर्वज्रपुरे रानन् सवाहेषु तथैव च ॥ ११ ॥
शाखानगरसुरपेषु रम्येषु च नराधिप । हृष्टपुष्टप्रमुदिता नृप देवस्य शत्रव ॥ १२ ॥

वज्रनाभोऽथ दुष्टामा वरदानेन दपितः । पुरस्य चाग्मनरथेय जगद् बाधितुमुपन ॥
महेन्द्रमश्वीद् गावा देवलोके विनामपते । अहमीशिनुमिरधामि प्रैलोक्यं पारनामन ॥
अथवा मे प्रयच्छस्य युद्धं देवगणेश्वर ।

सामान्यं हि जगत्पृथं कारयपानां महात्मनाम् ॥ १५ ॥

स बृहस्पतिना सार्द्धं मन्त्रपितृणां महेश्वरः । वज्रनाभं सुरर्भष्टं प्रोवाच पुण्यंशत ॥
सन्नेषु दीक्षितः सौम्य कश्यपो नः पिता मुनिः ।

तरिमन् वृत्ते यथा न्यारयं तथा म हि करिष्यति ॥ १७ ॥

ततः स पितरं गावा कश्यपं दानवोऽश्रवात् । यथोक्तं देवराजेन तमुवाचाथ कश्यप ॥
सन्ने वृत्ते करिष्यामि यथा न्यारयं भरिष्यति ।

एवं तु वज्रपुरे पुत्र यम गच्छ समाहितः ॥ १९ ॥

एवमुक्ते वज्रनाभः रथमेव नगरं गतः । महेन्द्रोऽपि यथो देवो द्वारकां द्वारकालिनीम् ॥
गावा चान्तर्हितो देवो यामुदेयमपारथीत् । वज्रनाभस्य वृत्तान्तं तमुवाच जनार्दन ॥
शौरैरपरिपथो देव याजिमेधो महाशतुः । तस्मिन् वृत्ते वज्रनाभं पातयिष्यामि वागव ॥

तत्रोपायं प्रयेजे तु चिन्तयाय सतांगने ।

मानिच्छया प्रवेशोऽस्मि तत्र वायोरपि प्रभो ॥ २३ ॥

ततो गतो देवराजो यामुदेयेन सकृत् । याजिमेधे च मन्त्रासे यमुदेयस्य भारत ॥
तरिमन् यजे वर्तमाने प्रयेशाथं सुरोत्तमा । चिन्तयामासगुर्वरिं देवराजाप्युतापुर्भा ॥

तत्र यजे वर्तमाने मुनात्थेन नटस्तदा । महर्षिस्तोषयामास भद्रनामेति नामतः ॥
तं वरेण मुनिधेष्टारघ्न्द्यामामुरात्मयत् । म यजे तु नतो भद्रो वरं देवेशरोपम ॥

देवेन्द्र कृष्णच्छन्देन सरस्यया प्रचोदितः । प्रगिपाय मुनिर्भृष्टानशमेधे समागतान् ॥
म उवाच—

भोग्यो द्विजानां सर्वेषां भवेयं मुनिवत्तमा ।

मसद्गोपी च वृथिर्वी विषेर्यमिमामहम् ॥ २९ ॥

प्रमिद्राकाशगमनः शशनुषं विदोपतः । अजप्यः सर्वभूतानां स्थावरा ये च जन्तवा ॥
यस्य यस्य च वेपेण प्रविदोपमहं सद्यु ।

मृतस्य जीवतो वापि भाष्येनोपादितस्य वा ॥ ३१ ॥

मनूषंरगादनाः स्यां ये अरारोगविवर्जितः । मुष्येपुमुंनयो जियमस्यं च मम सर्वदा ॥
एवमग्नियति सन्नेषोः प्राप्स्येनूंपते नटः । मसद्गोपी वसुमती पर्यटायमरोपम ॥ ३३ ॥

पुराणि दानपेन्द्रागामुत्तरांश्च कुरुंस्तथा । भद्राधान् बंभुमालांश्च बालाश्रुंरमेय च ॥
पर्यजीषु तु सपामु द्वारकां यदुमण्डिताम् । भावति वरदत्तः म शोर्वरो महानट ॥

ततो हंम्यान् धामंराष्ट्रात् देवलोकेविवागितः ।

उवाच भगवान्पुत्रः साम्यपितृणां सुरेश्वर ॥ ३९ ॥

भगवन्तो भ्रातरोऽस्माक काश्यपा देवपत्नि ।

विमानवाहा देवाना सुकृतीना तथैव च ॥ ३७ ॥

देवानामस्ति कर्तव्यं कार्यं शत्रुवधान्वितम् ।

तत् कर्तव्यं न मन्त्रश्च भेत्तव्यो व कथंचन ॥ ३८ ॥

न कुर्वता देवताज्ञामुग्रो दण्डं पतेदपि । सर्वत्राप्रतिपिद्धं वो गमनं हससत्तमा ॥

गरवा प्रवेश्यमन्यपा वज्रनाभपुरोत्तमम् । इतोऽन्त पुरजापीपु चरध्वमुचितं हि व ॥

तस्यास्ति कन्यारत्नं हि त्रैलोक्यातिशयं शुभम् ।

नाम्ना प्रभावती नाम चन्द्राम्बेव प्रभावती ॥ ४१ ॥

वरदानेन सा लब्धा मात्रा किल वरानना ।

हैमवत्या महादेव्या सकाशादिति न श्रुतम् ॥ ४२ ॥

स्वयंवरा च सा कन्या बन्धुभिः स्थापिता सती ।

आत्मेच्छया पतिं हसा वरयिष्यति शोभना ॥ ४३ ॥

तद्भवद्भिर्गुणा वाच्या प्रद्युम्नस्य महामन । सङ्गता कुलरूपस्य शीलस्य वयसस्तथा ॥

यदा सा रक्तभावा च वज्रनाभसुता सती ।

तस्या सकाशात् सदेशो नयितव्यः समाधिना ॥ ४५ ॥

प्रद्युम्नस्य पुनस्तस्मादानयध्वं तथैव च । स्वबुद्ध्या प्रातःकालं च सविधेयं हितं मम ॥

नेत्रवक्त्रप्रसादश्च कर्तव्यस्तत्र सर्वथा ॥ ४७ ॥

तथा तथा गुणा वाच्या प्रद्युम्नस्य महामन ।

यथा यथा प्रभावत्या मनस्तत्र भवेत् स्थितम् ॥ ४८ ॥

वृत्तान्तश्चानुदिवसं प्रदेयो मम सर्वथा । द्वारवत्या च कृष्णस्य भ्रातुर्मम यवीयस ॥

तावद्यज्ञश्च कर्तव्यं प्रद्युम्नो यावदात्मवित् । पर्यावर्तद् वरारोहा वज्रनाभसुता त्रिभु ॥

अवध्यास्ते तु देवानां ब्राह्मणो वरदपिता । देवपुत्रैर्हि हन्तव्या प्रद्युम्नप्रमुखैर्युधि ॥

नगो दत्तवरस्तस्य वेगमास्थाय यादवा । प्रद्युम्नाद्या गमिष्यन्ति वज्रनाभविनाशना ॥

एतच्च सर्वं कर्तव्यमन्यच्च सर्वमेव हि । प्रातःकालं विधातव्यमस्माकं प्रियकाम्यया ॥

प्रवेशस्तत्र देवानां नास्ति हसा कथंचन । वज्रनाभेप्सिते तत्र प्रदेशे खलु सर्वथा ॥

द्विनातितमोऽध्यायः

बैशम्पायन उवाच—

ते वासवश्च श्रुत्वा हसा वज्रपुरं ययुः । पूर्वोचितं हि गमनं तेषां तत्र जनाधिप ॥

ते दीघिकासु रम्यासु निपेतुर्वीरं पत्निम् । पद्मोत्पलैरावृतासु काञ्चनैः स्पर्शनक्षमैः ॥

ते वै नदन्तो मधुरं सस्कृतापूर्वभाषिणः । पूर्वमप्यागतास्ते तु विस्मयं जनयन्ति हि ॥

अन्तःपुरोपभोग्यासु चेरर्वापीपु ते नृप । दृष्टास्ते वज्रनाभस्य त्रिविष्टपनिवासिनः ॥

आल्पन्तं मुमुपुरं धारंराज्ञा जनेश्वर । स तानुवाच दैतेयो धारंराज्ञानिदं वच ॥७॥
त्रिविष्टपे नित्यरता भवन्तश्चास्मापिग । यदेवेहोमयेऽस्माक भवन्निरवगम्यते ॥१॥

आगन्तव्य जालपादा स्वमिद भवता गृहम् ।

विष्वक्पं च प्रवेष्टव्य त्रिविष्टपनिषामिभि ॥ ७ ॥

ते तथोक्ता शकुनयो वज्रनाभेन भारत । तथेदुक्त्वा हि त्रिविशुदानयेन्द्रनिषेदानम् ॥
चक्रुः परिचर्य ते च देवकार्यम्यपेशया । मानुपालापिनस्ते तु कथाश्चक्रु गृपत्विषा ॥
वंशचक्रा कारयपानो सर्वकल्पयागभागिनाम् ।

त्रियो रेमुर्विरोपेग शृग्वन्त्य सद्गता कथा ॥ १० ॥

विष्वन्तस्ततो हंसा ददशुश्रारहामिनीम् । प्रभायतीं वरारोहां वज्रनाभमुतां तदा ॥
हसा परिचिता चक्रुस्तां ततश्चारहामिनीम् ।

सर्गीं शुचिमुगीं चक्र हसीं राजमुता तदा ॥ १२ ॥

सा तां कदाचिन् प्रपश्य वज्रनाभमुतां सर्गीम् ।

विभ्रन्भितीं पृपश्युन्दाराग्यानकनारैराराम् ॥ १३ ॥

प्रलोचयमुन्दरीं चेन्नि त्थामहं हि प्रभायति ।

रूपशीलगुणैर्देवि किञ्चित् त्वां वक्षुमुसहे ॥ १४ ॥

व्यतिक्रामति ते भीर यौवन चारहामिनि । यदतीत पुनर्नति गत खेत इयाम्भम ॥
कामोपभोगानुशया हि रतिर्देवि न विद्यते ।

स्त्रीणां जगति कल्याणि स्यामेतद् प्रवीमि ते ॥ १६ ॥

श्वयवरे च म्यस्ता त्थं पिप्रा सर्वदुःखोभने ।

न च काश्चिद् वरयमे देवामुरकुलोद्भवान् ॥ १७ ॥

प्रीहिता यान्ति मुधोगि प्रयास्यातामवया शुभे ।

रूपशीलगुणैर्दुःखान् महताम्य कुलस्य हि ॥ १८ ॥

आगतान् नेष्टुमे देवि सरसान् कुलरूपयो ।

इहेष्यति किमर्थं त्वां प्रदुष्टो रश्मिर्गामुत ॥ १९ ॥

प्रलोचये वस्य रूपेण महतो न कुलेन वा ।

गुणैर्वा चारम्यदंदि शीर्षेणाप्यति वा शुभे ॥ २० ॥

देवेषु देव्य मुधागि दानयेषु च दानय । मानुयेवदि धर्मांसा मनुष्य म महापत्न ॥
य मदा देवि दृष्टा हि शरति न जयनानि हि ।

आरंनानांष धेनुतां शोतांवि सरितामिव ॥ २२ ॥

न पूर्णचन्द्रेण मुख जयने वा कुरोम्य । उपरते मोषमातु हि शोचन्द्रेणय वा रतिमा ॥
जगत् सारमुदृष्ट्य दूत्र म सिद्धिं शुभे ।

कृत्वातदं चरे शास्त्र विजुता प्रभवित्तुजा ॥ २४ ॥

हृतेन शम्बरो बाल्ये येन पापो निवर्हितः ।
 मायाश्च सर्वा सम्प्राप्ता न च शीलविनाशितम् ॥ २५ ॥
 यान् यान् गुणान् पृथुश्रोणि मनसा कल्पयिष्यसि ।
 पृष्टव्यास्त्रिषु लोकेषु प्रद्युम्ने सर्व एव ते ॥ २६ ॥
 रुच्या वह्निप्रतीकाश क्षमया पृथिवीसम ।

तेजसा सूर्यसदृशो गाम्भीर्येण हृदोपम । प्रभावती शुचिमुखीं त्रितीहोवाच भामिनी ॥
 प्रभावत्युवाच—

विष्णुर्मानुपलोकस्थ श्रुत सुबहुशो मया ।
 पितु कथयतः सौम्ये नारदस्य च धीमतः ॥ २८ ॥
 शत्रु किल स दैत्यानां वर्जनीय सदानघे ।
 कुलानि किल दै यानां तेन दग्धानि मानिनि ॥ २९ ॥

प्रदीप्तेन रथाङ्गेन शार्ङ्गेण गदया तथा । शाखानगरदशेषु वसन्ति किल येऽसुरा ॥
 इत्येते दानवेन्द्रेण सदृश्यन्त हि त प्रति ।
 मनोरथो हि सर्वासा स्त्रीणामेव शुचिस्मिते ॥ ३१ ॥
 भवद्भि मे पतिकुल श्रेष्ठ पितृकुलादिति ।
 यदि नामाभ्युपाय स्यात् तस्येहागमन प्रति ॥ ३२ ॥
 महाननुग्रहो मे स्यात् कुल स्यात् पावित च मे ।
 समर्थना मे पृष्टा त्व प्रयच्छ शुचिलापिनि ॥ ३३ ॥
 प्रद्युम्न स्याद् यथा भर्ता स मे वृष्णिकुलोद्भव ।
 अयन्तवैरी दै यानामुद्वेजनकरो हरिः ॥ ३४ ॥
 असुराणां स्त्रियो वृद्धा कथयन्त्यो मया भुक्ता ।
 प्रद्युम्नस्य तथा जन्म पुरस्तादपि मे श्रुतम् ॥ ३५ ॥

यथा च तेन निहतो बलवान् कालशम्बर । हृदि मे वर्तते नियप्रद्युम्न खलु सत्तमे ॥
 हेतु स नास्ति स्यात् तन यथा मम समागत ।
 दासी तदाह सख्याहं दूत्ये त्वा च विसर्जये ॥ ३७ ॥
 पण्डितासि वदोपाय मम तस्य च सगमे ।
 ततस्ता सान् वयि वा सा प्रहसतीदमब्रवीत् ॥ ३८ ॥

शुचिमुख्युवाच—

तत्र दूती गमिष्यामि तदाह चारुहासिनि ।
 इमा भक्तिं तवोदारा प्रपद्यामि शुचिस्मिते ॥ ३९ ॥
 तथा चैव करिष्यामि यथैष्यति तवान्तिकम् ।
 साक्षात्कामेन सुश्रोणि भविष्यति सकामिनी ॥ ४० ॥

इति मे भाषितं निपुं स्तरेयाः शुचिलोचने । कथाकृशालतां पित्रे कथयस्वायतेदने ॥
नम त्वं तत्र मे शेषे हितं सम्यक् प्रपश्यसे ।

इत्युक्त्वा सा तथा चक्रे यत्तन् सा तामपाम्रवीन् ॥ ४२ ॥

दानवेन्द्रश्च तां हंसीं पत्रच्छान्नपुरे तदा । प्रनावप्या समाख्याता कथाकृशालता तव ॥
तत्त्वं शुचिमुनिं ब्रूहि कथां योग्यतया वरं । किं त्वया दृष्टमाश्चर्यं जगद्युत्तमरदिमि ॥
ः जट्टपूर्वमन्यैर्वा योग्याद्योग्यमनिन्दिते । सोवाच वज्रनाभं तु हंसीं भरवरोत्तम ॥
श्रुत्तान्निन्दयामन्थ दानवेन्द्रं महापुत्रिन् ।

दृष्टा मे शान्दिली नाम माध्वी दानवमत्तम । आश्चर्यं कर्म कुर्वन्तीः मेरुपार्श्वे मनस्विनी ॥
मुननाश्चैव कौशल्या सर्वभूतहिते रता ।

कथंचिद् वरशाण्डिख्याः शैलपुण्याः शुभा सती ॥ ४३ ॥

नटश्चैव नया दृष्टो मुनिदत्तवरःशुभः । कानरूपी च भोज्यश्च त्रैलोक्ये नित्यमम्भतः ॥
कुस्त्वं या युक्तरान् वीर कालाग्रद्वीपनेव च ।

भद्राद्यान् केतुमालांश्च द्वांपानन्यांस्तघानव ॥ ४९ ॥

देवगन्धर्वगणानि नृपानि विविधानि च ।

स वेत्ति देवान् नृपेन विस्मापयति सर्वथा ॥ ५० ॥

वज्रनाभ उवाच—

श्रुत्तमेतन्मया हंमि न चिरादिव विस्तरम् ।

चारुगानां कथयतां मिदूनां च महामनाम् ॥ ५१ ॥

कुन्तलं नमाप्यस्ति सर्वथा पद्मिन्दिनि । नटे दनवरे तस्मिन् संस्तवस्तु न विद्यते ॥
इत्युवाच—

मत्तद्वीपान् विचरति नटः स दितिजोत्तम । गुणवन्तं जनं श्रुत्वा गुणकार्यः स सर्वथा ॥
तव चेच्छृणुयाद् वीर मद्भूतं गुणविस्तरम् । नटं तदागतं विद्धि पुरं तव महामुर ॥

वज्रनाभ उवाच—

उपायः सूत्रगां हंमि येनेह स नटः शुभे । आगच्छेन्मम भद्रं ते विषयं पद्मिन्दिनि ॥
ते हंसा वज्रनाभेन कार्यहेतीर्विमज्जिता । देवेन्द्रायाप कृप्याप शशांसुः सर्वमेव तद् ।

अर्धोऽर्धेन प्रदुष्टो निगुणस्तत्र कर्मणि । प्रभावयाश्च संसर्गे वज्रनाभवधे तथा ॥ ५२ ॥
दैवीं नायां ममाश्राय सविषाय हरिर्नटम् । भटवेपेण भैमानां श्रेययामाम भारत ॥

प्रदुष्टं नायकं कृत्वा सान्धं कृत्वा विदूषकम् ।

परिपार्श्वं गदं वीरमन्यान् भैमांस्तथैव च ॥ ५९ ॥

धारमुख्या नटी कृत्वा तत्तर्पमदनाम्नदा । तथैव भद्रं भद्रस्य महापांश्च तथाविधान् ॥
प्रदुष्टविहितं रम्य विमानं ते महारथाः । जुगुराक्ष्य कार्पायं देवानाममितीजमाम् ॥

एकैकस्य समा रूपे पुरया पुररस्य ते । स्त्रीणां च मरुताः सर्वे ते स्वरूपैर्नररधिपः ॥
ते वज्रनगरस्याप्य शाम्बानगरमुत्तमम् । जग्मुर्दानवमर्कीणं मुपुरं नाम नामतः ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

वशम्पायन उवाच—

तत सुपुरवासीनामसुराणा नराधिप । ददावाज्ञा वज्रनाभो दीयता गृहमुत्तमम् ॥
आतिथ्य क्रियतामेपा बहुरत्नमुपायनम् । वासामि सुविचित्राणि सुखाय जनरञ्जनम् ॥
भर्तुराज्ञा समालम्ब्य तथा चक्रुश्च सर्वश । पूर्वश्रुतो नट प्राप्त कौतूहलमनीजनत् ॥
नटस्याथ ददुर्दत्या सकार परया मुदा । पर्यायार्थे ददुश्चापि रत्नानि सुगहन्यथ ॥
तत स ननृते तत्र वरदत्तो नटस्तथा । सुपुरे पुरवासीना पर हर्षं समादधत् ॥५॥
रामायण महाकाव्यमुद्दिश्य नाटककृतम् । जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवशेष्यया ॥

लोमपादो दशरथ ऋष्यशृङ्ग महामुनिम् ।

शान्तामप्यानयामास गणिकाभि सहानघ ॥ ७ ॥

रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतरचैव भारत । ऋष्यशृङ्गश्च शान्ता च तथा रूपैर्नटै कृता ॥
तत्कालजीविनो वृद्धा दानवा विस्मय गता । आचचक्षुश्च तेषा वै रूपतुल्यत्वमच्युत ॥

सस्काराभिनयौ तेषा प्रस्तावाना च धारणम् ।

दृष्ट्वा सर्वे प्रवेश च दानवा विस्मय गता ॥ १० ॥

ते रक्षा विस्मय नेदुरसुरा परया मुदा । उपायोत्थाय नाट्यस्य विषयेषु पुन पुन ॥
ददुर्वखाणि तुष्टाश्च प्रैवेचबल्यानि च । हारान् मनोहरारचैव हेमवैडूर्यभूषितान् ॥
पृथगर्थेषु वृत्तेषु लोकैस्ते तु द्रुवुर्नटा । असुराश्च मुनींश्चैव गौत्रैरभिजनैरपि ॥१३॥
प्रेषित वज्रनाभस्य शाखानगरवासिभि । नटस्य दिव्यरूपस्य नरेन्द्रागमन तदा ॥
पुरा श्रुतार्थो दैत्येन्द्र प्रेषयामास भारत । आनीयता वज्रपुर नगेऽसाविति हृषित ॥
दानवेन्द्रवच श्रुत्वा शाखानगरवासिभि । नीता वज्रपुर रम्य नटवेपेण यादवा ॥
आवासश्च ततो दत्त सुकृतो विश्वकर्माणा । एष्टव्य यच्च तत् सर्वं दत्त शतगुणोत्तरम् ॥
अथ कालोसव चक्रे वज्रनाभो महासुर । कारयामास रम्य च चमूवाहं प्रहृष्टवान् ॥

ततस्तान् परिविधान्तान् प्रेक्षार्थाय प्रचोदयत् ।

दत्त्वा रत्नानि भूरीणि वज्रनाभो महाबल ॥ १९ ॥

उपविष्टश्च तान् द्रष्टु सह ज्ञातिभिरात्मवान् ।

छद्मे चान्त पुर स्थाप्य चक्षुर्दरये नराधिप ॥ २० ॥

भैमापि बद्धनेपथ्या नटवेपधरास्तथा । कार्यार्थं भीमकर्माणो नृत्यार्थमुपचक्रमु ॥
ततो घन संसुपिर मुरजानकभूषितम् । तन्त्रोस्वरगणैर्विद्वानातोद्यानन्ववाद्यन् ॥
ततस्तु देवगान्धार छालिष्यध्रवणामृतम् । भैमत्रियं प्रनगिरे मनश्चोत्रमुत्सावहम् ॥
आगान्धारग्रामराग गद्गावतरण तथा । विद्वमासारित रम्य जगिरे स्वरसम्पदा ॥
एयतालसम श्रुत्वा गद्गावतरण शुभम् । असुरास्तोपयामासुरपायोत्थाय भारत ॥

नान्दि च वादयामासु प्रद्युम्नो गद एव च ।

साम्बश्च वीर्यसम्पन्न कार्यार्थं नटता गत ॥ २६ ॥

नान्द्यन्ते च तदा श्लोक गद्गावतरणाश्रितम् ।

रौक्मिणैयस्तदोवाच सम्यक् स्वभिनयान्वितम् ॥ २७ ॥

रम्भाभिसार कौबेर नाटक नटतुस्ततः । शूरो रावणरूपेण रम्भादेया मनोवती ॥ २८ ॥

मलकूबरस्तु प्रद्युम्न साम्बस्तस्य विदूषकः । कैलासो रूपितश्चापि मायया यदुनन्दनैः ॥

शापश्च दत्त क्रुद्धेन रावणस्य दुरात्मनः ।

मलकूबरेण च यया रम्भा चाप्यथ सान्विता ॥ ३० ॥

एतत् प्रकरणं धीरा ननृतुर्यदुनन्दनाः । नारदस्य मुने कीर्तिं सर्वज्ञस्य महात्मनः ॥

पादोद्वारेण नृत्येन तथैवाभिनयेन च । तुष्टुबुर्दानवा धीरा भैमानामतितेनसाम् ॥

ते ददुर्बन्धे मुख्यानि रत्नान्याभरणानि च । हारास्तरलविद्धाश्च वैदूर्यमणिभूषितान् ॥

विमानानि विचित्राणि रयाश्चाकारागामिनः ।

गङ्गानाकाशगारधैव दिव्यनागकुलोद्भवान् ॥ ३४ ॥

चन्दनानि च दिव्यानि शीतानि रसवन्ति च ।

गुरूण्यगुरमुख्यानि गङ्गाद्यानि च भारत ॥ ३५ ॥

चिन्तामणीनुदाराश्च चिन्तिते सर्वकामदान् ।

प्रेक्षासु तामु धङ्गीषु ददन्तो दानवास्तथा ॥ ३६ ॥

धनरत्नैर्विरहिता कृता पुरपसत्तमः । द्वियो दानवमुख्यानां तथैव च जनेधर ॥ ३७ ॥

ततो हसी प्रभावत्या सग्री प्राह प्रभावतीम् ।

गतास्मि द्वारका रम्या भैमगुप्तमनिन्दिते ॥ ३८ ॥

प्रद्युम्नश्च मया दृष्टो विविक्ते चास्लोचने । भक्तिश्च कथिता तस्य मया तव शुचिस्मिते ॥

तेन हृष्टेन कालश्च कृतः कमललोचने । अद्य प्रदोषसमयं स्वया सह समागमे ॥ ४० ॥

तदद्य रचिरधोनि तव प्रियसमागमः । न क्षारमवति भायन्ति मिथ्या भैमकुण्डेनवा ॥

सतः प्रभावती दृष्टा हसा तामिदमप्रवीत् । उपितासि ममायामे स्वप्नुमर्हसि सुन्दरि ॥

स्वयाह सहिताऽऽवाम द्रष्टुमिच्छामि कैशयिम् ।

निसाध्वसा भविष्यामि स्वया सह निहङ्गमे ॥ ४३ ॥

हसी तथेति श्लोवाच सर्सी कमललोचनाम् । नाररोह च तद्वर्ग्यं प्रभावत्या विहङ्गमा ॥

विश्वकर्मकृते तत्र हर्म्यं पृष्टे प्रभावती । सविधानं चराराणु प्रपुष्पागमनञ्जमम् ॥ ४५ ॥

तस्मिन् कृते सविधाने काममानयितुं ययौ । प्रभावतीमनुशास्य हसी वायुसमा गतौ ॥

नटयेपधरं कामं गङ्गोवाच शुचिस्मिता । अद्य भूतः स भगवन् ममयो वर्तते निता ॥

तथति प्राह ता कामः सा निवृत्ताय पतिणी ।

अभ्यागता च मा हृमी प्रभावतिमयाप्रवीत् ।

अप्यति रौक्मिणयो प्रवावाहसायतलोचन ॥ ४८ ॥

प्रद्युम्नो नीयमानं तु ददशे माल्यमात्मवान् । भ्रमरैरावृतं वीरः सुगन्धमरिमर्दनः ॥
 निलिल्ये तत्र माल्ये तु भूत्वा मधुकरस्तदा ।
 प्रभावत्या नीयमाने विदितार्थं प्रतापवान् ॥ ५० ॥
 प्रवेशित च तन्माल्य स्त्रीभिर्मधुकरायुतम् ।
 उपनीतं प्रभावत्यै स्त्रीभिस्तद् भ्रमरावृतम् ॥ ५१ ॥
 अविदूरे च विन्यस्त प्रभावत्या जनाधिप ।
 भ्रमरास्ते ययुः सौम्य संप्याकाले ह्युपस्थिते ॥ ५२ ॥
 स भैमप्रवरो वीरस्तैः सहायैविहीनतः । कर्णोत्पले प्रभावया निलिल्ये शनवैरिव ॥
 ततः प्रभावती हंसीमुवाच वदता वरा । उद्यत पूर्णचन्द्रं सा समीच्यातिमनोहरम् ॥
 सखि दहन्ति मेऽङ्गानि मुखं च परिशुष्यति ।
 औत्सुक्य हृदि चातीव कोऽयं व्याधिरनौपधः ॥ ५५ ॥
 दधद् द्विगुणमौत्सुक्यमसौ पूर्णनिशाकरः ।
 नवोदितः शीतरश्मिः सरय हरति च प्रियः ॥ ५६ ॥
 न दृष्टपूर्वो हि मया ध्रुतमात्रेण काङ्क्षितः ।
 अहो धूमयतेऽङ्गानि स्त्रीस्वभावस्य धिक् खलु ॥ ५७ ॥
 कल्पयामि यथा बुद्ध्या यदि नाम्नेति मे प्रियः ।
 कुमुद्वतीगत मार्गं हा गमिष्याम्यकिञ्चना ॥ ५८ ॥
 मदनशीविपेणास्मि हा हा दष्टा मनस्विनी ।
 शीतवीर्याः प्रकृत्यैव जगतो ह्यादना सुखा ।
 दहन्ति मम गात्राणि किं नु चन्द्रगभस्तयः ॥ ५९ ॥
 प्रकृत्या शीतलो वायुर्नानापुं परजोवह ।
 दावाग्निसदृशो मेऽद्य दन्दहीति शुभा तनुम् ॥ ६० ॥
 ततः सरल्पये एव स्थैर्यं कार्यमिवाभनः । नावतिष्ठति निधीर्यं मनः संकल्पधपितम् ॥
 विमनस्कास्मि मुष्णामि वेपथुमे महान् हृदि ।
 वग्भ्रमीति च मे दृष्टिर्हा हा यामि ध्रुव ह्ययम् ॥ ६२ ॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

आविष्टेय मया बाला सर्वधेत्यवगम्य तु । काङ्क्षिहृष्टेन मनसा हसीमिदमुवाच ह ॥
 देव्येन्द्र तनवा प्राहमवगच्छस्व मामिह ।
 पट्पदं सह पट्पादो भूत्वा माल्ये निलीय हि ॥ २ ॥
 विधेयोऽस्मि प्रभावत्या यधेष्टं मयि वर्तताम् ।
 इत्युक्त्वा दर्शयामास सुरूपो रूपमात्मनः ॥ ३ ॥

तद्धर्म्यष्ट प्रभया घोतित तस्य धीमत ।
 अभिभूता प्रभा चैव राजश्चन्द्रोद्भवा शुभा ॥ ४ ॥
 प्रभावत्यास्तु त दृष्ट्वा ववृधे कामसागर ।
 चन्द्रस्येवोदये प्राप्ते पर्वण्या सरिता पति ॥ ५ ॥
 सलजाधोमुखा किञ्चित् किञ्चित् तिर्यगवक्षिणी ।
 प्रभावती तदा तस्यै निश्चल कमलशुभा ॥ ६ ॥

करेणाथ प्रदेशे ता चारुभूषणभूषिताम् । स्पृष्ट्वावाच वरारोहा रामाञ्जिततनुस्ततः ॥
 मनोरथशतैर्लब्ध किं पूणन्दुसमप्रभम् । अधोमुखं मुखं कृत्वा न मां किञ्चित् प्रभापसे ॥
 प्रभोपमदं मा कार्षीर्वदनस्य वरानने । साध्वस रयज्यता भीरु दास साध्वनुगृह्यताम् ॥

न कालमिव पश्यामि भीरु भीष्टवमुच्च ।
 याचाम्यपाऽथर्ल कृत्वा प्राप्त्याल निबोध मे ॥ १० ॥

गान्धर्वेण विवाहेन कुरुवानुग्रह मम । देशकालानुरूपेण रूपणाप्रतिमा सती ॥ ११ ॥
 उपस्पृश्य ततो भैमो मणिस्य नातवेदसम् । शुहाव समये वीर पुष्पैर्मन्त्रानुदीरयन् ॥
 जप्राहाथ कर तस्या धराभरणभूषितम् । चक्रे प्रदक्षिण चैव त मणिस्य हुताशनम् ॥

प्रज्ज्वाल स तनस्त्री मानयन्नच्युतात्मजम् ।
 भगवाञ्जगत साक्षी शुभस्यापाशुभस्य च ॥ १४ ॥
 उद्दिश्य दक्षिणा वीरो विप्राणा यदुत्तन्दन ।
 उवाच हर्षा द्वारस्थां तिष्ठानां रक्ष पक्षिणी ॥ १५ ॥
 तस्या प्रणम्य यातायां कामस्ता चारलोचनाम् ।

प्रहाय दक्षिण हस्त निनाय शयनोत्तमम् ॥ १६ ॥

उराग्रपोषेरयैना सान्त्वयित्वा पुनः पुन । सुपुत्र्य शनकैर्गण्ड वामयन् सुवमारतैः ॥
 ततोऽस्याश्च पपी ध्वजपद्म मधुक्वरो यथा । आलित्त्रे च सुधार्णी प्रभोग रतिकोपिद ॥
 अरीरमद् रहस्यना न चोद्वेजितपास्तदा ।

अपकृष्टं च रात्यर्षं रतिनायैर्विदारद । उवाच स तथा साखं रमन् कृष्णमुखा प्रभु ॥
 अरुणाद्यकाले च ययौ यत्र नटाभ्यम् । अनामया प्रभारण्या कथञ्चित् स विमर्षित ॥
 तामेव मनसा कान्तां कान्तरुपा सनुद्बद्धन् । न उपुर्नटपण वार्यां भैमरजता ॥
 प्रतीक्षन्तस्तदा वाक्यमिन्द्र शययोरतदा । उद्योग वज्रनाभस्य प्रैलोभयविजय प्रति ॥
 प्रतीक्षन्ता महात्मानो गुणमरुचण रता । कश्यपस्य मुन सर्वं यावत् तावदराधिना ॥
 द्वासुराणां सवयामविरोधा महात्मनाम् ।

प्रैत्रोभयत्रिपयायां यततां धर्मचारिणाम् ॥ २४ ॥

पृथ काल प्राणायानां वसतां तत्र धामनाम् । सग्राह प्राकृपा रम्य सर्वभूतमनोहर ॥

अहनि च घृत्तान्तं प्रयच्छन्ति मनाजवा ।

एकदशव्योहस्य युमाराणां महात्मनाम् ॥ २६ ॥

रमे सह प्रभावत्या प्रद्युम्नश्चानुरूपया । रात्रौ रात्रौ महातेजा धार्तराष्ट्राभिरक्षितः ॥
 तैर्हि वज्रपुर हसैर्वसद्भिर्वासवाज्ञया । व्यास नृप नटास्ताश्च न विदुः कालमोहिताः ॥
 दिवापि रौक्मिणेयस्तु प्रभावत्या नृपालये । तिष्ठत्यन्तर्हितो वीरो हससधाभिरक्षितः ॥

माययास्य प्रतिच्छाया दृश्यते हि नटालये ।

देहार्धेन तु कौरव्य सिपेवेऽसौ प्रभाजतीम् ॥ ३० ॥

सनतिं विनय शील लीला दाक्ष्यमथार्जवम् ।

स्पृहयन्त्यसुरा दृष्ट्वा विद्वत्ता च महात्मनाम् ॥ ३१ ॥

रूप विलास गन्ध च मञ्जुभापामथार्यताम् ।

तासां यादवनारीणां स्पृहयन्त्यसुरस्त्रिय ॥ ३२ ॥

वज्रनाभस्य तु भ्राता मुनाभो नाम विधुत ।

दुहितृद्वयं च नृपते तस्य रूपगुणान्वितम् ॥ ३३ ॥

एका चन्द्रवती नाम्ना गुणवत्यथ चापरा । प्रभाव-गालयते तु व्रजत खलु नित्यदा ॥
 ददृशाते तु ते तत्र रतिसक्ता प्रभाजतीम् । परिपप्रच्छतुश्चैव पित्रन्मोपगता सतीम् ॥

सोऽत्र च मम विद्यास्ति याधीता काङ्क्षित पतिम् ।

रत्यर्थं साऽऽनयत्याशु सौभाग्यं च प्रयच्छति ॥ ३६ ॥

देव वा दानव वापि विवश सद्य एव हि । साह रमामि कान्तेन देवपुत्रेण धीमता ॥
 दृश्यता मत्प्रभावेण प्रद्युम्न सुप्रियो मम । ते दृष्ट्वा विस्मय याते रूपयौवनसम्पदम् ॥
 पुनरेवान्नीत् ते तु भगिन्यौ चारुहासिनी । प्रभावती वरारोहा कालप्राप्तमिदं वच ॥

देवा धर्मरता नियं दम्भशीला महासुरा ।

देवास्तपसि रक्ता हि सुखे रक्ता महासुरा ॥ ४० ॥

देवा सत्ये रता नित्यमनृते तु महासुरा । धर्मन्तपश्च सत्यं च यत्र तत्र जयो भुवन् ॥
 देवपुत्रौ वरयता पतिविद्यां ददाम्यहम् । उचितौ म प्रभावेण सद्य एवोपलप्स्यथ ॥

ता तथेयूचतुर्हृष्टे भगिन्यो चारुलोचनाम् ।

परिपप्रच्छ भैमं च कार्यं तत् पतिमानिनी ॥ ४३ ॥

स पितृभ्य गद वीर सांख चाथान्नीत् तदा ।

रूपान्वितौ मुशीलौ च शूरी च रणकर्मणि ॥ ४४ ॥

प्रभावत्युवाच—

परितुष्टेन दत्ता मे विद्या दुर्वाससा पुरा । परितुष्टेन सौभाग्यं स कन्यात्वमेव च ॥ ४५ ॥

देवदानवयक्षाणां य ध्मास्यति स ते पति ।

भवितेति मया चेत् वीरोऽयमभिकाङ्क्षित ॥ ४६ ॥

गृहीत तदिमा विद्या सद्यो वा प्रियसङ्गम ।

ततो जगृहतुर्हृष्टे ता विद्या भगिनीमुखात् ॥ ४७ ॥

दध्यतुर्गंदसाम्बो च विद्यामभ्यस्य ते शुभे । तौ प्रद्युम्नेन सहितौ प्रविष्टौ भैमनन्दनौ ॥
 प्रच्छन्नौ मायया वीरौ कर्ष्णिना मायिना नृप ।
 गान्धर्वेण विवाहेन तावप्यरिबलार्जनी ॥ ४९ ॥
 पाणिं जगृहत्तुर्वीरौ मन्त्रपूर्वं सतां प्रियौ ।
 चन्द्रवत्या गदः साम्बो गुणवत्या च कैराविः ॥ ५० ॥
 रेमिरेऽसुरकन्याभिर्वीरास्ते यदुपुद्गवाः । मार्गमाणास्त्वनुज्ञां ते शम्भुः शक्योस्तदा ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

नभो नभस्येऽथ निरीक्ष्य मासि कामस्तदा तोयदचन्द्रशीर्षम् ।
 प्रभावतीं चाग्निशालनेग्रामुवाच पूर्णेन्दुनिकाशवरत्र ॥ १ ॥
 तवाननाभो वरगात्रि चन्द्रो न दृश्यते सुन्दरि चारश्मिभ्यः ।
 स्वस्वेषपाशान्निर्निरेदो यलाहकैश्चार निरन्तरोर ॥ २ ॥
 संदृश्यते मुञ्च तडिद् धनस्था स्वं हेमचार्याभरणान्वितेय ।
 मुञ्चन्ति धाराश्च घना नदन्तस्त्वद्धारपथे. सदृशा वराद्भिः ॥ ३ ॥
 धनप्रदेशेषु यलाहक्यस्य दन्तपङ्क्तिप्रतिमा विभान्ति ।
 निमग्नपद्मानि स्मरिन्सु मुञ्च न भान्ति तोयानि रयातुलानि ॥ ४ ॥
 अमी घना यायुवशोपयाता यलाकमालामलचारदन्ता ।
 अन्योन्यमभ्याहन्ति तुं प्रवृत्ता घनेषु नागा इव शुद्धदन्ता ॥ ५ ॥
 घनुत्तिर्यणं वरगात्रि पश्य कृतं तवापाद्भिर्मिताननरधम् ।
 विभूषयन्त गगनं घनाश्च प्रहर्षणं कामिजनस्य कान्ते ॥ ६ ॥
 घनान् नदन्ता प्रनिनर्दमानान् निरीक्ष्य मुधोनि शिरीन् प्रहृष्यन् ।
 समाहतानुत्तनपिच्छुभारान् प्रियाभिरामानुपनृप्यमानान् ॥ ७ ॥
 हर्म्येषु चान्ये दासिपाण्डुरेषु राजन्ति मुधोणि मयूरसंघा ।
 मुहूर्तशोभासतिघोररुपां दाया पतन्तो यलभीगुटेषु ॥ ८ ॥
 प्रविलस्यन्तस्तस्मिन्तरेषु मुहूर्तचूडामणिलां विधाय ।
 प्रयान्ति भूमिं नयन्ताह्वलानामाशुमाना एतत्पारदेहाः ॥ ९ ॥
 प्रवानि धारान्तरनिगृह्य मुष्णोऽग्निलक्ष्मन्दनपट्टशीत ।
 कन्दमजानुंनपुष्पभूषां समावहन् गन्धमनद्रवभूमि ॥ १० ॥
 रतिधमसरेदरिनाशानुर्नखोदभारानपने च हेतु ।
 न मारुतः स्याद् यदि चारगात्रि न मेघकान्ते मम वल्लभ स्यात् ॥ ११ ॥

प्वप्रिधेषु प्रियसङ्गमेषु रतावसाने यदुपैति वायु ।
 रतिध्रमस्येदहर सुगन्धी तन पर कि सुखमस्ति लोक ॥ १२ ॥
 जलाप्लुतानीच्य महानदीना सुगात्रि हसा पुलिनानि दृष्टा ।
 गता श्रम मानसवासल्लुधा ससारसा क्रौञ्चगणानुविद्धा ॥ १३ ॥
 न भान्ति नद्यो न सरामि चैव हतच्विपीत्रायतचारनेत्रे ।
 गतेषु ह्यप्यथ सारसेषु रथाङ्गनुल्याह्वयनेषु चैव ॥ १४ ॥
 भोगैकदेशेन शुभ शयान ध्रुव जगत्ताथमुपेन्द्रनीशम् ।
 निद्राम्युपेता वरकालतज्ज्ञा श्रिय प्रणन्योत्तरचारुरूपाम् ॥ १५ ॥
 निद्रायमाणे भगवत्युपेन्द्रे मेघाम्बराक्रान्तनिशाकरोऽद्य ।
 पद्मानलाम कमलायताक्षि कृष्णस्य घनत्रानुवृत्तिं करोति ॥ १६ ॥
 कदम्बनीपानुर्नकेतकाना खजो ध्रुव कृष्णमुपानयन्ति ।
 पुष्पाणि ग्रान्यान्मृत्यु समस्ता कृणात् प्रसादानभिकाङ्क्षमाणा ॥ १७ ॥
 नागाधरन्तो विपदिग्धवक्त्राः सृशन्ति पुष्पाण्यपि पादपान्यान् ।
 पेपीयमानान् भ्रमरैर्नाना कौतुहलं ते जनयन्त्यतीव ॥ १८ ॥
 तोयातिभाराम्बुद्वन्द्वन्दनञ्च नभः पतिप्यन्तमिवाभिधीक्ष्य ।
 निपानगम्भीरमभिल्वृष्ट मनोहर चारुमुखस्तनोरु ॥ १९ ॥
 यलाकमालाङ्गुलमाल्यदाज्ञा निरीक्ष्य रम्य घनानुन्दमेतत् ।
 सस्यानि भूमावभिवर्षमाण जगद्वितार्थं विमलाङ्गन्यष्टे ॥ २० ॥
 जलावलम्बाम्बुद्वन्द्वन्दुर्षी घनैर्घनान् योधयतीव वायु ।
 प्रवृत्तचक्रो नृपतिर्वनस्थान् गचान् गजै स्वैरिव वीर्यदृष्टान् ॥ २१ ॥
 अभौममम्भो विमृशन्ति मेघा पून पवित्र पवनं सुगन्धि ।
 हर्षावह चातकवहिणाना घराण्डजाना जलदप्रियाणाम् ॥ २२ ॥
 प्लवगम षोडशपल्लशार्थी विरौति गोष्ठ सह कामिनीभिः ।
 ऋचो द्विजाति प्रियसयधर्मा यथा सुशिष्यै परिवार्यमाण ॥ २३ ॥
 गुण महास्तोयदकालनोऽयमम्बुद्धमेघरवनभीषितानाम् ।
 परिष्वनन्त परिवर्द्धयन्ति विनापि शय्यासमय प्रियाणाम् ॥ २४ ॥
 दोषोऽयमेक सलिलागमस्य मा प्रयुदारान्वयवर्णशीले ।
 न दृश्यते यत् तव वक्त्रनुल्यो घनग्रहप्रस्ततनु शशाङ्क ॥ २५ ॥
 प्रदृश्यते भीरु यदा शशाङ्को घनान्तरस्था जगतः प्रदीप ।
 तदानुपश्यन्ति जनाः प्रदृष्टा वन्धु प्रवासादिव सन्निवृत्तम् ॥ २६ ॥
 विलापसाक्षी प्रियहीनिताना सदृश्यते भीरु यदा शशाङ्क ।
 नेत्रोत्सव प्रोषितकामुकाना दृष्ट्वैव कान्तं भवतीत्यर्थमि ॥ २७ ॥

नेत्रोत्सवः बान्तसमागतानां दावाप्रितुल्यः प्रियहीनितानाम् ।
 तेनैव देहेन धराङ्गनामां चन्द्रोऽपि तावत्प्रियविप्रियश्च ॥ २८ ॥
 विनापि चन्द्रेण पुरे पितुस्ते यतः प्रभा चन्द्रगमस्तिगौरी ।
 गुणागुणांश्चन्द्रमसा न वेधि यतस्ततोऽहं प्रदाशंसयिष्ये ॥ २९ ॥
 भवाप यो भ्राह्मणराज्यमीदृशो दुरापमन्यैः सुहृन्स्तपोभिः ।
 गायन्ति विप्राः पवमानसंज्ञं समागताः पर्वणि चाप्युदारम् ॥ ३० ॥
 पिता बुधस्योत्तरवीर्यकर्मां पुरुरवा यस्य मुतो नृदेवः ।
 प्राणाग्निरीद्वयोऽग्निमजीजनद् यो नष्टं शर्मागर्भंभयं भवात्मा ॥ ३१ ॥
 तथैव पश्चाच्चरमे महात्मा पुरोर्वशीमप्परसां वरिष्ठाम् ।
 पीतं पुरा योऽमृतसर्वदेहो मुनिप्रवीरैर्चरगात्रि घोरैः ॥ ३२ ॥
 नृपः कुशामैः पुनरेव यश्च धीमानतोऽग्निदिवि पूज्यते च ।
 धायुश्च वंशे नहुषश्च यस्य यो देवराजःवमयाप धीरः ॥ ३३ ॥
 देवातिदेवो भगवान् प्रसूतो वंशे हरिर्यत्र जगत्प्रणेता ।
 भैमः प्रवीरः सुरकार्यहेतोर्यं मुभु दक्षस्य वृतः मुताभिः ॥ ३४ ॥
 यमूव राजाय यमुश्च यस्य वंशे महात्मा क्षतिवंशदीपः ।
 यश्चक्रवर्तिवमयाप धीरः स्वैः कर्मभिः क्षत्रसमप्रभावः ॥ ३५ ॥
 यदुश्च राजा क्षतिवंशमुख्यो योऽथाप महामधिराजभावम् ।
 भोजा कुले यस्य नराधिपस्य धीराः प्रमृताः सुरराजतुल्याः ॥ ३६ ॥
 न वृष्टवृद् यस्य नृपोऽस्ति वंशे न नारिको नैष्टतिकोऽपि क्षाप ।
 अथहृषानोऽप्यथवा कर्दयः शौर्येण वा वारिरहासि हीनः ॥ ३७ ॥
 वंशे वधूस्यं वमयापतामि शशाया गुणानामनिपात्रभृता ।
 कुरु प्रणामं तिग्यराप्रदन्ति तस्य स्वमीशस्य सतां प्रियस्य ॥ ३८ ॥
 नारायणायात्मभयायनाय शोरायनाय त्रिदशायनाय ।
 स्वनेन्द्रकेतोः पुरुषोत्तमाय कुरु प्रणामं शशुराय देवि ॥ ३९ ॥

पण्यवतितमोऽध्यायः

शैलभगवत उवाच—

मश्रायमाने च मुने क्वपपस्थातितेजस्य ।

जग्मुर्देवामुराः स्वानि स्थानान्यमितविक्रमा ॥ १ ॥

यज्ञनाभोऽपि निवृत्ते सत्रे क्वपपमभ्यगात् ।

शैलोव्यविक्रपाकाहुः तमुपाधाथ क्वपपः ॥ २ ॥

यज्ञनाभ निषोप स्वं श्रोतव्यं यदि चन्मम । वस वक्रपुरे पुत्र स्वजनेन समावृतः ॥

तपसाभ्यधिक शक्र शक्तश्चैव स्वभावत । ब्रह्मण्यश्च कृतज्ञश्च ज्येष्ठ श्रेष्ठतमो गुणै ॥
 राजा कृत्स्नस्य जगत पात्रभूत सता गति ।
 सन्प्राप्तो लोकराज्य स सर्वभूतहिते रता ॥ ५ ॥
 नैव शक्यस्त्वया जतु वज्रनाभ विहन्यसे ।
 अहि पदा व्युक्रमन् वै नचिराद् विनशिज्यसि ॥ ६ ॥
 वज्रनाभश्च तद्वाक्य नाभिनन्दति भारत । कालपाशपरीताज्ञो मर्तुकाम इवीपथम् ॥
 अभिवाद्य स दुर्बुद्धि कश्यप लोकभाजनम् ।
 त्रैलोक्यविजयारम्भे मति चक्रे दुरासद ॥ ८ ॥
 ज्ञातियोधान् समानीय मित्राणि सुबहूनि च ।
 प्रतस्थे स्वर्गमैत्राग्ने विजिगीषन् विशाम्पते ॥ ९ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे देवो कृष्णेचन्द्रौ महाबलौ । प्रेषयामासतुहंसान् वज्रनाभवध प्रति ॥
 समागतास्तु तच्छ्रुत्वा यदुसुरया महाबला ।
 मन्त्रयित्वा महा मानश्चिन्तामापेदिरे तथा ॥ ११ ॥
 वज्रनाभोऽद्य हन्तव्य प्रशुम्नेनेयसशयम् ।
 तयोर्दुहितरो भार्या भव्या ता सर्वभावना ॥ १२ ॥
 सर्वा सगर्भास्ताश्चैव किं नु कार्यमनन्तरम् ।
 प्राप्त प्रसवफलश्च तासा नातिचिराद्रि ॥ १३ ॥
 सम्मन्त्रयित्वैतदर्थं हसानूचुर्महाबला । आरपेयमर्थवत् कृत्स्न शक्रकेशवयोस्तदा ॥
 हसैर्ग वा तदारयान देवयोस्तद् यथातथम् ।
 ताभ्या हसास्तु सदृष्टा न भेतव्यमिति प्रभो ॥ १५ ॥
 उत्पत्स्यन्ति गुणे श्लाघ्या पुत्रा व कामरूपिण ।
 गर्भस्था सर्ववेदाश्च साहान् वत्स्यन्त्यनिन्दिता ॥ १६ ॥
 तथा चानागत सर्वमस्त्राणि विविधानि च ।
 सद्य एव युवानश्च भविष्यन्ति सुपण्डिता ॥ १७ ॥
 एवमुक्ता गता हसा पुनर्वज्रपुर विभो । शशसुरश्चैव भेमाना शक्रकेशवभापितम् ॥
 प्रभावती तदा पुत्र सुपुत्रे सदृश पितु । सद्यो योवनसम्प्राप्त सर्वज्ञत्व च भारत ॥ १९ ॥
 मासमात्रेण सुपुत्र दर्वा चन्द्रवती नृप । चन्द्रप्रभमिति ख्यात तनय सदृश पितु ॥
 सद्यश्च यौवन प्राप्त सर्वज्ञ च भारत । गुणवत्यपि पुत्र च गुणवन्तमनिन्दिता ॥
 युवानावध सद्यस्तौ सर्वशास्त्रार्थकोविदौ । इन्द्रोपेन्द्रप्रसादेन सवृत्तौ युद्धवर्द्धनौ ॥
 हर्म्यगृष्टे वर्द्धमाना दृष्टास्ते यदुनन्दना । इन्द्रोपेन्द्रेच्छ्रया वीर नान्यथेत्यवधार्यताम् ॥
 निवेदिताश्च सम्भ्रान्तर्दैयैराकाशरश्मिभि । वज्रनाभाय वीराय त्रिविष्टपत्रयैपिणे ॥
 वधाय सर्वे गृह्यन्ता ममैते गृहधर्षका । इ युवाचासुरपतिर्वज्रनाभो महासुर ॥ २५ ॥
 तत सैन्य समाज्ञप्तमसुरेन्द्रेण धीमता । आवारयामास दिश सर्वा बुरकुलोद्बह ॥

मृगान्तामाशु वप्यन्तामिति पाचन्ततस्ततः । उच्चैस्त्रमुनेन्द्रस्य शासनादरिनामिन् ॥

तच्छुवा व्यधितामतेषां मातरः पुत्रवत्सलाः ।

रन्हुस्ता रदन्तीश्च प्रद्युम्नः प्रहसन् मर्षीत् ॥ २८ ॥

मा भैष्ट जीवमानेषु स्थितेष्वस्मासु मर्षया ।

किं नो दैव्याः करिष्यन्ति सर्वया भद्रमस्तु वः ॥ २९ ॥

प्रमात्रतीमयोवाच प्रद्युम्नो विष्टवा म्पिताम् ।

पिता तव गदापाणिः पितृव्याश्च स्थितास्तव ॥ ३० ॥

भ्रान्तरश्चैव ते देवि ज्ञातयथ तथापरे । एते पृथ्वाश्च मान्वाश्च तत्रार्थे मृत्यु मर्षया ॥

भगिन्वी पृच्छ भद्र ते कालोऽयं मृत्यु दारणः ।

मरणं सहमानानां युद्धवतां विजयां ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

दानवेन्द्रादयो हेते योऽस्यन्तेऽस्मद्दक्षिणः ।

किमत्र कार्यमस्मानि. सर्वशक्रान्तरस्थितैः ॥ ३३ ॥

प्रमात्रती रदन्ती तु प्रद्युम्निदमप्रोत् । तिरस्य त्रलिभाषाय जानुभ्यां पतिना विनी ॥

गृहाण शम्भुमानं रच शत्रुनिर्हण । जीवन् पुत्रांश्च शरांश्च द्रष्टामि यदुनन्दन ॥

आयां नृवर वेदभीमिनिन्द्रे च मानद । मृगान्तमोक्षयामानं श्यमनादरिमदन ॥

दुर्वांससा वरो दत्तो मुनिना मम धीमता । वेधन्तरहिता एष्टा जीवपुत्रा भविष्यमिष ॥

एष मे हृदयाशासो भविता न तदन्यथा । मृषांप्रितेऽमो वाच्य मुनेरिन्द्रानुवाग्भव ॥

ह्ययुक्त्वापायिनादाय मृषांशुदा मनसिपती ।

प्रददी रीविमलेषाय जयमेति वरं धरा ॥ ३९ ॥

स तं जप्राह घर्मात्मा प्रदष्टेनान्तरामना । प्रणम्य तिरसा दत्तं प्रियया भक्तिपुत्रया ॥

चन्द्रायपि निखिण गदाय प्रददी सुदा । तदा गुणवती चैव साग्वायासि महामने ॥

हंसकेतुमयोवाच प्रद्युम्नः प्रणतं प्रभु । इहैव साग्धमहितो युष्पत्य सह दादवै ॥

आकाशे दिष्टु सर्वसु योग्याम्बहमरिदम ।

ह्ययुक्त्वाय रथं चक्रे नायया मायिना वरः ॥ ४३ ॥

सहस्रतिरमं नारां शृवा । मारयिनामरात् । अनन्तमेवं कौरव्य सर्वनागोत्तमं तमम् ॥

स तेन रथमुदेन हर्षयन् रथं प्रमात्रतीम् । चकारासुरस्येषु मृगविव हताशनः ॥

शरैरादीश्वरप्रव्यैरर्द्धचन्द्रानुकारिभिः । भेदनेगंधनेरचैव तददं दितिस्मभवान् ॥

अमुराश्च रणे मत्ता वाग्नि शकैरितस्ततः । जानु पन्नपप्राप परं तिथयमाश्रितयाः ॥

धिपदेद् घाहन् केमादिम् ईपूचन्पेज्जन्तम् ।

मनुष्टानि केपांचिद्विरांगपि च धिष्टिदे ॥ ४८ ॥

पुरिष्टुथैः शिरोभिश्च कार्येभ्य शरैरि । अमुरानां मही कौलीं प्रष्टुमेवार्जुनेऽप्यथा ॥

देवैश्चरो देवगणैः सहितः समिर्तिजयः । ददसं मुक्तिं तु मुहं भैममो दिविते मह ॥

ये गद् चैव साग्ध च दैत्या समभिदुमुषु । ते ययुर्निधन सर्वे यादासीव महोदधौ ॥
 विषम तु तदा युद्ध दृष्ट्वा देवपतिर्हरि । गदाय प्रेषयामास स्व रथ हरिवाहन ॥५२॥
 दिदेश मातलिमुत यन्तार च सुप्रर्वसम् । साम्बायैरावण नाग प्रेषयामास चेश्वर ॥
 जयन्त रोक्मिणेयस्य सहायमददाद् विभु । एरावणमधिष्ठानु प्रवर स नियुक्तवान् ॥
 देवपुत्रद्विजौ वीरावप्रमेयपराङ्मौ । अनुज्ञाप्य सुरान्यच्च ब्रह्माण लोकाभावनम् ॥५५॥
 त मातलिमुत चैव गजमेरावण तदा । देव प्रेषितवान्द्रुमो विधिज्ञो वरकर्मसु ॥५६॥
 शीणमस्य तपो बभ्यो यदूनामेप दुर्मति । प्रवदन्ति तु भूतानि सर्वत्र तु यथेप्सितम् ॥
 प्रद्युम्नश्च जयन्तश्च प्राज्ञौ हर्म्य महाप्रलौ । असुरान्च्छरजालोघविक्राम्यन्तौ प्रणश्यतु ॥
 गद् कार्णिकस्तदोवाच दुर्वाच्यरणदुर्जय । उपेन्द्रानुन शक्रण रथोऽय प्रेषितस्तव ॥
 हरियुद्धमातलिमुतो यन्ता चाय महावत् । प्रवराधिष्ठितश्चाय साम्बस्वैरावणो गत ॥
 अधोपहारो रुद्रस्य द्वारकाया महाबल । श्व एत्यति हृषीकेशस्तस्मिन् वृत्तेऽच्युतानुज ॥
 तस्याज्ञया बधिष्यामो वज्रनाभ सवान्धवम् । अभ्युत्थानकृत पाप त्रिप्रिष्टपनय प्रति ॥

करिष्यामि विधान तु नैव शत्रु सुतान्वितम् ।

त्रिनेत्रत्यप्रमादस्तु कर्तव्य इति मे मति ॥ ६३ ॥

कलत्ररक्षण कार्यं सर्वोपायैर्नरेर्बुधै । कलत्रधर्षण लोके मरणादतिरिच्यते ॥ ६४ ॥
 एव सदिरय भैम स गदसाग्धो महाप्रल । प्रद्युम्नरोव्य सङ्गे मादया दिव्यरूपया ॥
 तमश्च नाशयामास दैयसृष्ट कुरासदम् । नहये दनराजश्च त दृष्ट्वा रिपुमर्दनम् ॥६५॥
 ददृशु सर्वभूतानि कार्णिण सर्वेषु शत्रुषु । अन्तरामनि वर्तन्त चैत्रशमित्र त विदु ॥
 एव व्यतीता रजनी रोक्मिणेयस्य युध्यत । असुराणा त्रिभागश्च निहतश्चातितपसा ॥

यावद् विधोषयामास कार्णिकैस्त्यान् रणाचिरे ।

सधोपास्ता जयन्तेन तावद् त्रिष्युपदीपले ॥ ६९ ॥

अयोधयजयन्तश्च यावद् दैयान् महावत् ।

तावदाकाशगङ्गाया भैम सध्यामुपास्तवान् ॥ ७० ॥

सप्तमप्रतितमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

जगतश्चञ्चुपि ततो मुहूर्तभ्युदिते रथो । प्रादुरासीद्दरिद्रवस्तार्च्येणोरगशत्रुणा ॥ १ ॥

हसवायुमनोभिश्च सुशीघ्रतरग खग । तस्यौ वियति शत्रुत्य समीपे कुरवन्दन ॥२॥

समेत्य च यथान्याय कृणो वासवमनिधा ।

पाञ्चजन्य हरिर्दग्धौ दत्याना भयवर्द्धनम् ॥ ३ ॥

त श्रुत्वाभ्यागतस्तत्र प्रद्युम्नो परवीरहा । वज्रनाभ जर्ही युक्त केशवेन त्वरेति च ॥४॥

तार्च्यमास्व गच्छेति पुनरेव प्रणोदित । चकार स तथा वीर प्रणिपत्य सुरोत्तमै ॥

स मनोरहसा वीर तादर्येणाशु ययौ नृप । अभ्याशं वज्रनाभस्य महाद्रुन्दस्य भारतः ॥
 ततस्तादर्यगतो वीरस्ततर्दं रणमूर्द्धनि । वज्रनाभं स्थिरो भूवा सर्गोच्चविदिनिन्दितः ॥
 तेन तादर्यरतेनैव गदया कृष्णसूनुना । उरस्यभ्याहृतो वीरो वज्रनाभो महामना ॥
 स तेनाभिहितो वीरो देव्यो मोहवशं गतः । चक्षार च भृशं रक्तं यभ्रामैव गतामुवत् ॥
 आश्रमेत्यथ त कार्पिणस्त्वाच रणदुर्जयः । लघसज्ञं स वीरस्तु प्रदग्नामिदमपीत् ॥
 साधु यादव वीर्येण श्लाघ्यो मम रिपुर्भवान् । प्रतिप्रहारकालोऽयं स्थिरो भव महाबलः ॥
 एवमुक्त्वा महानाद मुञ्च वा मेघशतोपमम् ।

गदां मुमोच वेगेन सघण्टां घडुकण्टकाम् ॥ १२ ॥

तथा ललाटेऽभिहतः प्रघ्नो गदया नृप । उद्धमन् रथिर भूरि मुमोह यदुनन्दनः ॥
 त दृष्ट्वा भगवान् कृष्ण पाञ्चजन्यं जलोद्भवम् ।

दध्मावाश्रासनकरं पुत्रस्य रिपुनाशन ॥ १४ ॥

त पाञ्चजन्यशब्देन प्रत्याश्रस्त महायलम् । दृष्ट्वा प्रमुदिता लोका विन्नेपेणेन्द्रकेदार्यौ ॥
 तस्य चक्र करे यात कृष्णश्चन्द्रदेन भारत । क्षुरनेमिसहस्रार दैत्यसघतुलान्तवम् ॥

तन्मुमोचाद्युतमुतस्तम्य नाशाय भारत ।

नमस्कृत्वा सुरेन्द्राय कृष्णाय च महामने ॥ १७ ॥

वज्रनाभस्य तत्कायादुच्चरन् शिरस्तदा । नारायणसुतोन्मुञ्च दैत्यानामनुपरयताम् ॥

गदं सुनाभमवधीद् यतमान रणाजिरे । हर्म्यष्टे निघोसन्तं रणरतं भयानकम् ॥

साम्बं समरमप्यस्थानमुरानरिमर्दन । निनाय निशिनैषां प्रेताधिरपरिग्रहम् ॥

निवृम्भोऽपि हते वीरे वज्रनाभे महामुरे । जगाम पट्पुरं धीरो नारायणभवादिनः ॥

निवर्हिते देवरिपौ वज्रनाभे महामुरे । अवतीर्णो महामानो हरी यत्पुर तदा ॥

लघप्रशमन चैव चक्रत् सुरसत्तमो । मान्यवयामामनुधैव पालकृद् भवादिनम् ॥

इन्द्रोपेन्द्रौ महामानौ मन्त्रविरा महाबली ।

आयायो च तदाप्ये च घृहस्पतिमतानुगौ ॥ २४ ॥

वज्रनाभस्य तद् राज्यं चतुर्धो चक्रनृप । विजयस्य चतुर्भागं जयन्ततनपरय चै ॥

प्रघ्नस्य चतुर्भागं रौक्मिणेयसुतस्य च । चन्द्रप्रभस्य ददुश्चतुर्भागं जनेधर ॥ २६ ॥

कोट्यश्रतरो प्रामाणामधिकस्ता पिशाचने ।

शाक्यपुरमहस्यं च स्फीत वज्रपुरोपमम् । चतुर्धं चक्रुस्तत्र मंरुर्ही पात्रकेदार्यौ ॥ २७ ॥

कम्बलाजिनशार्माणि रत्नानि विविधानि च । चतुर्धा चक्रुर्वीरो वीर साम्यपदेशौ ॥

ततोऽभिप्लवने यीशराजानो वासराज्या । देवदुन्दुभिवाचन मुवविभ्युपरीकृतैः ॥

स्वयं शक्रेण देवेन केदारयेन च धीमना । श्रपितंते महामान पात्रमाधवनन्दनाः ॥

विजयस्य प्रमिद्वैव शक्तिर्विपति धीमताः । मानूत्रेण गुणैर्नापि माधवानो महामनाम् ॥

अभिपिष्य जयन्तं तु साम्यो भगवान् प्रधीत् ।

एवमेते वीर सरपया राजानः शक्तिनिहाया ॥ ३२ ॥

मम वंशकरोऽत्रैकः केशवस्य त्रयोऽनघ । अवध्याः सर्वभूतानां भविष्यन्ति ममाश्रया ॥
 गमनागमनं चैव दिवि सिद्धं भविष्यति ।
 त्रिविष्टपं द्वारकां च रम्यां भैमाभिरक्षिताम् ॥ ३४ ॥
 दिशागजसुतान् नागान् ह्यांश्चोच्चैः श्रवोऽभवयान् ।
 हृच्छयैषां प्रयच्छस्व रथास्वष्टकृतानपि ॥ ३५ ॥
 गजावैरावणसुतौ शत्रुक्षयरिपुञ्जयौ । प्रयच्छाकाशगौ वीर साम्बस्य च गदस्य च ॥
 आकाशेन पुरीं यातु द्वारकां भैमरक्षिताम् । आयातु च सुतौ द्रष्टुं यथेष्टं भैमनन्दनौ ॥
 इति संदिश्य भगवान् देवराजः पुरन्दरः । जगाम भगवान् स्वर्गं द्वारकामपि केशवः ॥
 पण्मासानुषितस्तत्र गदः प्रद्युम्न एव च । साम्बश्च द्वारकां याता रुढेराज्ये महाबलाः ॥
 अद्यापि तानि राज्यानि मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे ।
 तिष्ठन्ति च जगद् यावत् स्थास्यन्त्यमरसंनिभ ॥ ४० ॥
 निवृत्ते मौसले युद्धे स्वर्गं यातेषु वृष्णिषु । गदप्रद्युम्नसाम्भारते गता वज्रपुरं विभो ॥
 ततः प्रोष्य पुनर्यान्ति स्वर्गं स्वैः कर्मभिः शुभैः ।

प्रसादेन च कृष्णस्य लोकवर्तुर्जनेश्वर ॥ ४३ ॥
 प्रद्युम्नोत्तरमेतत् ते नृदेव कथितं मया । धन्य यशस्यमायुष्य शत्रुनाशनमेव च ॥
 पुत्रपौत्रा विवर्धन्ते आरोग्यधनसम्पदः । यशो विपुलमाप्नोति द्वैपायनवचो यथा ॥
 उपरि लिखित हरिवंश की कथा में जो थोडा बहुत परिवर्तन किया गया है उससे नाटक की रमणायता बढ गई है यह बात निःसंशय कही जा सकती है ।

प्रभावती परिणय की कथावस्तु

(१)

पुराणों के अनुसार कश्यप की दो पत्नियों थीं १ दिति, २ अदिति । दिति से उत्पन्न दैत्य, तथा अदिति से उत्पन्न आदित्य-देव बड़े गये । दोनों दल का सम्बन्ध वैमात्रेय कः सम्बन्ध रहा । दैत्यों में वज्रनाभ तथा सुनाम नाम के दो भाई बड़े वीर तथा प्रबल तपस्वी हो गये हैं । वज्रनाभ ने अपनी तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करके वरदान प्राप्त किया था कि उसको नगरी 'वज्रपुर' में उसकी इच्छा के बिना किसी का प्रवेश नहीं हो सकता है । उसको ब्रह्मा ने यह भी वर दिया था कि उसे देवगण नहीं मार सकते हैं । एक समय की बात है वज्रनाभ ने मन्त्रणा करके अपने गुरु शुक्र को इन्द्र के पास सवाद कहने की भेजा । संवाद का स्वरूप यह था कि—'दे देवराज, यह समस्त रसार हम लोगों की पैतृक सम्पत्ति है, उचित है कि हम कश्यप के पुत्र उसका समान अंश प्राप्त करें । अतः आपने जितने दिनों तक स्वर्ग का भोग किया है, उतने दिनों तक अब मुझे स्वर्ग का भोग करने दें ।'

१॥ संवाद सुनकर इन्द्र तथा बृहस्पति चकित रह गये, इन लोगों ने मन्त्रार्थ करके उत्तर दिया कि वज्रनाम का कहना जायज है, परन्तु न्यायानुसार वैदिक मन्त्रों का विभाजन पिता की मृत्यु के बाद ही होना चाहिये, वह समय आवेगा तो वज्रनाम का प्रयोग स्वीकृत होकर रहेगा। यदि इसमें कुछ आपत्ति हो तो बहू विनाश से पूछ लें। तदनुसार वज्रनाम वादप के आश्रम में पहुँचा। वादप ने वज्रनाम को समझा दिया कि हमारा द्वादश वार्षिक यज्ञ चल रहा है, उसके बाद आप लोगों के मनोरथ पूरे होंगे, इस वार्त्तालाप की सूचना इन्द्र को भी मिली, उन्होंने शिवि को सूचना उदेन्द्र को दी। मगवान् तथा इन्द्र ने योजना बनाई। तदनुसार इन्द्र ने शुचिमुखी नामक इंद्र के प्रधानत्व में एक ईस समुदाय को वज्रपुर में जाकर प्रभावती के हृदय में प्रदुष्ट के प्रति अनुराग उत्पन्न करने को कहा। शुचिमुखी ने वही किया। अनुराग के कारण प्रभावती का विरह बढ़ने लगा (प्रथम अङ्क)।

(२)

वधा क्रम में प्रभावती ने अपने पिता वज्रनाम से कह दिया कि यह ईसो अनुरागपूर्ण देशान्तर वृत्तान्त सुनाने में निपुण है। इस पर कुहूली देशराज ने शुचिमुखी को वृत्तान्त सुनाने के लिये कहा। शुचिमुखी ने मद्रादि नरों के नाट्यप्रवास को वर्णन द्वारा वज्रनाम को इस प्रकार से आकृष्ट कर दिया कि—उमने मद्र आदि को दुलहा देने का अनुरोध कर दिया। शुचिमुखी की योजना सफल हो गई। (द्वितीय अङ्क)।

(३)

योजनानुसार मद्र आदि नरों के साथ प्रदुष्ट, सान्ध, गद आदि वादव वीर मध्येष में शुचिमुखी के साथ आ गये। इन लोगों ने अपने अभिनय कौशल से वज्रनाम को तथा समकी रानियों को इतना आकृष्ट कर लिया कि इन लोगों ने प्रसन्न होकर बहुत सारे उपहार दिये। (तृतीय अङ्क)।

(४)

वज्रपुर में प्रदुष्ट आदि के आ जाने पर शुचिमुखी के मातृमम से वनद्य प्रभावती के साथ पत्र व्यवहार होने लगा। एक दिन पुत्र के साथ प्रसन्न रूप में प्रदुष्ट प्रभावती के अन्तःपुर में प्रवेश कर गये। प्रभावती के साथ उनके द्वारा की गई छेड़छाड़ों से प्रभावती के कोप पर शुचिमुखी ने क्रोधमय भाषा में सूत्र व्यवहार किया। एक समय प्रभावती प्रदुष्ट का विश्व विनाश करके अपना मन बहला रही थी, वही समय विरहहरिणी में प्रदुष्ट प्रदुष्ट वही उपस्थित हो गये, विश्व तथा प्रदुष्ट को छावा, दोनों में तुल्य कर देसकर प्रभावती तथा रानियों के आश्रय का ठिकाना नहीं रहा। प्रदुष्ट रूप में प्रदुष्ट को अन्तःपुर

में पाकर प्रभावती घबडा गई, शुचिसुखी के समझाने पर वह प्रकृतिस्थ हुई। दोनों का प्रच्छन्न मिलन हुआ। (चतुर्थ अङ्क)।

(५)

परभृनिका आदि सखियों ने गद तथा साम्ब को भी चन्द्रावती एवं युगवती के प्रणय में आवद्ध किया। वे दोनों वज्रनाम के अनुज सुनाम की कन्यायें तथा प्रभावती की बहिन के साथ सखियाँ थीं। उनके अनुराग को सफल बनाने के लिए योजना बनाई कि उनको भी प्रद्युम्न द्वारा दी गई तिरस्कारिणी के बल से अन्तपुर में रखा जाय। तदनुसार गुप्त मार्ग से अन्वकार में गद तथा साम्ब को अन्तपुर में पहुँचा दिया गया। (पञ्चम अङ्क)।

(६)

एक रात प्रभावती ने सपना देखा कि उसके प्रिय प्रद्युम्न ने उसके पिता का वध कर दिया है। वह बहुत दुःखी हुई। उसकी सखियों ने उसे स्वप्न व्यर्थता के बारे में बहुत सी बातें कहीं, पर उसके हृदय को आश्वासन नहीं मिला। इस पर उसने स्वप्नदृष्ट अमङ्गल को शान्ति करने का विचार किया। तब तक वर्षा आ गई। प्रद्युम्न ने प्रभावती को अभयदान दिया कि अब तक तुम्हारे पिता द्वारा अन्तपुर पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया जायेगा तब तक मैं उन पर अस्त्र नहीं उठाऊँगा, और बिना तुम से कहे मैं उन्हें नहीं भाँसेगा। (छठा अङ्क)।

(७)

धीरे धीरे वज्रनाम पर यह बात सुल गई कि उसके कन्यान्तपुर में शत्रुओं का प्रवेश हो गया है तथा उनके सम्पर्क में कन्यायें दूषित हुई हैं। इन पर क्रुपित होकर वज्रनाम ने असुर सैन्य सजा कर अन्तपुर पर घावा बोल दिया। फिर क्या था, प्रद्युम्न, साम्ब और गद ने अपनी वीरना दिखाई। सारे सैन्य के साथ वज्रनाम तथा सुनाम मारे गये। युद्ध में भगवान् को भी मदद करनी पड़ी। अन्त में प्रभावती के पुत्र तथा युगवती-चन्द्रावती के पुत्रों को वहाँ का राज्य विभक्त कर बाँट दिया गया। (सप्तम अङ्क)।

मूल कथा तथा प्रभावती परिणय की कथावस्तु पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि परिवर्तन केवल नाम मात्र का है, वह भी इसी उद्देश्य से किया गया है कि चमत्कार बड़े। भित्ति समान है, रङ्ग भर दूसरा है, वह भी इसीलिए कि चित्र साफ उभर सके।

प्रभावती परिणय के प्रणेता

‘प्रभावती परिणय’ के रचयिता हरिश्चरोपाध्याय ने अपना परिचय स्वयं दे दिया है,

जनः इसके सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वह हरीदेव का के पुत्र राघव का के भात्मज थे। उन्होंने स्वयं लिखा है :—

“प्रादुर्भूय पुरो गिरिरिव ह्यपीकेशात्कृती राघवो
यस्तिग्मद्युतिवद् दिवाकरमहावंतो दिदीपे द्विजः ।
या लक्ष्मीरथ मैथिलानुदभवद् विद्यावदातारमन-
स्ताम्यामुद्भवमापनु कुशलवप्रख्यातगोश्री मुती ॥

एषा तयोः प्रथमजेन निजानुजात-धीनीलकण्ठरिक्ण्ठविभूषणाय ।

सत्तल्लवीनगुणगुम्फनियन्मूनिमुक्तायली हरिहरेण शिरेण शीर्णा ॥”

(प्रभावतो परिणय, हरिहर सुभाषित)

इन दोनों उद्धृत श्लोकों से स्पष्ट हो जाता है कि ‘हरिहर’ के विनामह ‘हरीदेव’ विना ‘राघव’ मात्र ‘लक्ष्मी’ तथा अनुज ‘नालकण्ठ’ थे। इनहीं श्लोकों में यह भी जान होना है कि यह मैथिल थे। इन्होंने प्रभावतो परिणय के आरम्भ में अपने नाम का नाम भी बताया है।

‘धीरामेश्वरमीश्वरीऋषिगिरामाराधयन्ती चिराद्या
विद्याभिरुशामलास्यलहरी तस्या यदि स्यादियम्’
‘तत्पराधीनतयैव तर्हीद्विप्रमनुगृहीतयत्या.’

(प्रभावतो परिणय)

इन दोनों उद्धरणों से कवि का पूरा पता चल जाता है।

मैथिल पञ्जीजन्य के अनुसार भी हरिहर का पूर्वजित परिवार प्राप्त होता है जिसका विलूत उद्देश्य श्री० रामानाथ श्याम० ए० द्वारा संपादित हरिहर विरचित मूक्तमुक्तावली या हरिहर सुभाषित नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ का अनेको लिखित भूमिका में मिलता है। उस भूमिका से तथा उसमें दिये गये बंध वृत्तों में यह भी प्रमाणित होता है कि उनका मूल— “हरमदे देहट” था, तथा उनके वंश में आज भी लोग वर्धमान हैं जो उनके सन्तान स्मारक हैं। हमारे सम्बन्ध में विलूत जनजाती के विर घं० रामानाथ श्याम की भूमिका—‘हरिहर सुभाषित पर) देराना च दिये ओ प्रकटित है।

हरिहर की रचनाएँ

हरिहर नाम के बहुत पठित हुए हैं जिनकी विभिन्न रचनाएँ प्रसिद्ध हैं, उनमें हमारे परिचयावक की मात्र दो रचनाएँ हैं—१ प्रभावतो परिणय २ मूक्तमुक्तावली वा हरिहर सुभाषित।

दक्षिण कुछ लोग ‘मधुहरि निर्देह’ नामक नाटक का भी हरिहर के नाम में निर्दिष्ट करते हैं, परन्तु महाप्रयोगवाच मुद्रण का पत्रों द्वारा लिखित हरिहर निर्देह की भूमिका

से स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि भर्तृहरि निवेद के रचयिता हरिहर प्रभावती परिणय के प्रणेता हरिहर से भिन्न पुरुष थे। भार० एल० मित्र एव काशीप्रसाद जायसवाल ने अपनी सूचनाओं में क्रमशः पृष्ठ १५९ तथा ८८ में प्रभावती परिणय के श्लोक उद्धृत करते हुए यह बातें स्वीकृत की हैं।

भर्तृहरि निवेद किसी धर्मशास्त्रनिबन्धा हरिहर की रचना है। इस बात को प्रो० रमानाथ झा ने बशानुक्रमजनित कालभेद के द्वारा प्रमाणित कर दिया है।

हरिहर का पाण्डित्य

हरिहर उपाध्याय मूलतः दार्शनिक विद्वान् थे जैसा कि उनके समय के मैथिल हुआ करते थे। गङ्गेश की भूमि में दार्शनिक विद्वान् का होना ही प्रचलित परम्परा थी, दार्शनिकता की पृष्ठ भूमि में ही वहाँ धर्मशास्त्र, काव्य, नाटक आदि भिन्न भिन्न प्रकार के साहित्य पनपा करते थे, प्रसिद्ध नाटककार जयदेव ने जहाँ प्रसन्न राषव लिखा, वहाँ उनके न्याय ग्रन्थ भी हैं। मुरारि ने यदि 'अनघंराषव' की रचना की, तो उन्होंने मीमांसा में भी मत प्रवर्तन का श्रेय प्राप्त किया। गोकुलनाथ ने गद्यकाव्य, नाटक, काव्यप्रकाश टीका के साथ ही 'रश्मिचक्र', 'लाघवगौरवरहस्य' आदि शीर्षस्थ दार्शनिक ग्रन्थों का भी निर्माण किया। हरिहर ने भी न्यायादिदर्शन के साथ काव्यकला साखी थी। उनके मानसह मा कविता के रसिक थे। स्वयं हरिहर ने ही कहा है—'ओरामेधरभीधरी कविगिरामारावन्ता चिराचा विद्याभिरुवास लास्यलहरा तस्या यदि स्यादियम्'। इस प्रकार दार्शनिकता की भित्ति पर अबलम्बित कविता के यशस्वी कवि हरिहर पाण्डित्य कवि थे। उनकी कविता पाण्डित्य की सहचरी थी। उनके दो ग्रन्थ मिले हैं १. हरिहर सुभाषित या सूक्तिसुक्तावली २. प्रभावती परिणय नाटक। प्रथम प्रकाशित है, द्वितीय अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका है। यही अब मैं उसके प्रकाशन का प्रयास कर रहा हूँ।

कुछ लोग 'भर्तृहरि निवेद' नामक नाटक को भी इनकी रचना मान रहे थे, उनके हय अभिमान का खण्डन महानहोपाध्याय बबशी सुकुन्द ज्ञा एव प्रो० रमानाथ झा ने ही कर दिया है।

हरिहर का समय

प्रो० रमानाथ झा ने पत्नीप्रबंध का विवरण प्रस्तुत करके सिद्ध कर दिया है कि हरिहर का जन्म १५९५-२० के लगभग में हुआ था। यद्यपि इस कथन का आधार बहुत प्रामाणिक है, फिर भी हमें दस पाँच वर्ष का हेरफेर हो सकता है, क्योंकि कुछ बातें अटक पर आधारित की गई हैं और उनमें परिवर्तन सम्भव रहता ही है। समय के निश्चित रहने पर भी हरिहर के सम्बन्ध में बहुत जानकारी प्राप्त नहीं है। इतना ही कहा जा सकता है कि

वह एक विशिष्ट विद्वान् थे, ओखिय सम्प्रदाय के गण्य मान्य जन तथा 'विठ्ठो' नामक ग्राम के निवासी थे। स्व० महाराज कामेश्वर सिंह की बड़ी बहन के पति प० मुकुन्द दा उनके बरत के हैं। इसके अनिर्लभ अन्य जवबन घटनायें ज्ञान नहीं हैं।

प्रभावती परिणय का काव्यसौष्टव

हरिहर की रचना में एक अद्भुत सौष्टव है, जिसकी उपलब्धि उन्होंने मुरारि तथा जयदेव की शैलियों का समन्वय करके की है। मेरे बहने का अभिप्राय यह है कि हरिहर ने मुरारि की गाढ़बधना अर्थगाम्भीर्य आदि के साथ जयदेव की प्रासदिकता तथा सुकुमारता का भी अपना कविता में समामात्र किया है। वह सरल से सरल तथा बन्धगा पदों की सज्जा में समान रूप से सरलता पा सके हैं वही उनकी बन्धना है—

विधिना विनिपातनाय नीतो रविरस्ताचलमभ्युधायगाथे । मुग्धमुदणमभ्युत्तै
रप्य प्रणयके त्रिपदि प्रमाणयन्ति ॥'

इस तरह के सरल पद्य प्रस्तुत किये हैं वही—

'यायामन् वासरधीरिचितमिद्विरोदारदीपोपरिष्ठात्
सगृष्टावापपायितविनापियसीलानारज्ज्वलानि ।
भूमीभाग्य हरिद्विभुंविभिभिरभित पायमानानि मन्य
मान्यतायय सम्प्रयविरलीभिरस्तामभावं भवन्ते ॥

इन तरह के गण्यबन्ध पदों की सज्जा में सा मन्त्र हो सकने का भेद प्राप्त किया है। ये दो उदाहरण मैं हमलिय प्रस्तुत कर रहा हूँ कि पाठक बड़ों रचना में दोनों तरह के पदों को उचित समान रूप से सरलता का आभास पाय कर सकेंगे।

कवि द्वारा एक अल्प सौभाग्य की बात है उसमें भी बड़ी बात है सरल भाव की रचना में कृत्रिम प्राप्त कर सकता। हरिहर काव्यदाय का अटक 'प्रभावती परिणय' एक सफल नमूना है। इस विषय में किसी जो सम्झे करने का अवसर नहीं मिलेगा। साहित्य में कथो रचन की रचना पर ही साहित्य विद्वान् विचार करते हैं वह बात सर्व विद्वान् हैं और वह रोचकता प्रसारण करिणय में प्रकृत है।

इस गीतक में मद्र के साथ मरुत का कथो कथन दुःखिणुगी के साथ कुमार का वास्तविक रूप का चरित्र चरित्र तथा मद्र का बर्णन इन मद्र व है कि ये चरित्र हरदय को अद्भुत करते हैं।

अब हम कुछ ऐसे पद्य उद्धृत करेंगे जिनसे अन्य हरिहर को कविता शैली का कोटि निर्धारण करने में स्वयं मान्य हो सकते हैं। देखिये—

'शान्तानामामदुदयदं निगमनाः शून्यि गुणी
सामंघनादिव कथमरा मयं ण्य व्यरंभीम् ।

भूयो भूय प्रतिनृपवचो नम्रमाताचरन्मे
कायोऽभ्यासादिव समभवद्भ्रूक एव क्रमेण ॥'

(अङ्क २ श्लोक २)

वृद्ध कञ्चुकी की उक्ति है, वह अपनी वृद्धावस्था को कोस रहा है—वह कहता है कि मैं सदा से राजाओं की आज्ञा को सिर पर रखता आया हूँ, उसी सर्प में मेरे सारे बाल गिर गये, राजगण के प्रत्येक आदेश पर नम्रता प्रकाशित करने के लिये बारबार झुकने के अभ्यास से मेरा शरीर बक्र हो गया। बाधक्य की खलिनना तथा झुकने का कारण किस प्रकार उपप्रेक्षित हुआ है

परम्पराकृत नियमानुसार नाटक में प्रातः मध्याह्न सायं, वर्षा वसन्त, आदि के वर्णन की प्रवृत्ति कवियों में देखा जानी है हर्ष के नाटकों के बाद निर्मित नाटकों में कम-बेशी रूप में यह क्रम विद्यमान है। प्रभावनीपरिणयकार ने इस वर्णन क्रम में खूब सफलता प्राप्त की है। प्रथम अङ्क के अन्त में मध्याह्न का द्वितीय तथा चतुर्थ अङ्क के अन्त में सन्ध्या का, षष्ठ अङ्क में प्रभात का एवं वर्षा का वर्णन इतना सुन्दर है कि मैं यहीं एक एक उदाहरण प्रस्तुत करने के लोभ का सवरण नहीं कर पा रहा हूँ।

(मध्याह्न)

'नीरावैविहगस्तिरोहितगिरो निर्यातनि स्पन्दना
मध्याह्ने मिहिरातपेन तरवस्तप्ता इथोन्मूछिता ।
शोकोन्मादभरेण पादपतितास्तेपा तु जाया इव
च्छाया सङ्कुचितोपतप्ततनव क्रोशन्ति क्षिप्तीरवै ॥'

पक्षिगण नीरव हो रहे हैं, निर्यात हो जाने से वृक्ष निश्चल हैं, ऐसा लगता है—मध्याह्न में सूर्य किरण से सन्तप्त होकर वृक्ष समूह मूर्च्छित हो रहे हों, उन वृक्षों की पक्षी सी लगने वाली छाया उनके पैरों पर पड़ी है उनके शरीर सन्तप्त हैं और वे क्षिप्तीरव के व्याज से आक्रोश कर रही हैं।

(सूर्यास्त)

'अस्तोर्वीधिरमन्दिर दिनमणौ प्राप्ते प्रिये दूरतो
रक्त सत्वरमग्धर परिदधे स्मेरानना वारणी ।
अन्यास्त सहसा दिशामथ मुखान्यालम्बते नीलिमा
मीलन्नीरजलोचना किमधुना पायोचिनी मुद्गति ॥'

दूर देश से प्रियतम सूर्य के अस्ताचल रूप मन्दिर में आते ही धारणी दिशा रूप नायिका ने मुस्करा कर रक्त अम्बर (लाल वक्ष-आकाश) धारण कर लिया, अन्य दिशाओं

‘यद्यप्येव विशेषविश्ववयिता शिनासु दत्ता वयम्,
नाश्रये शम्बरगर्वडम्बरहरो देवः स्मरो नायकः ।’

(प्रभावतीपरिणय—१-१३)

इस श्लोक पर मुझे इर्षकृत ‘रत्नावली’ के निम्न लिखित पद्य की छाया पडती हुई प्रतीत होती है—

‘श्रीहर्षो निपुणः कविः परिपद्येपा गुग्ग्राहिणी,
लोके हारि च वसराजचरितं नाश्रये च दत्ता वयम् ।’

प्रभावतीपरिणय में एक श्लोक है :—

‘कृतिमतामपटोरपि घटयति तेजस्विनां पुरस्कार ।
हरति हरितामनूर्जगतो जयजाड्घिकानि तिमिराणि ॥’

(प्रमा० प० १-२०)

इस श्लोक पर अभिज्ञानशाहुन्तल के निम्न लिखित श्लोक की छाया पड रही है—

‘किं वाऽभविष्यदरणस्तममा विभेत्ता तं चेसहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ।’

×

×

×

‘चित्रमेतदनुचिन्तयन्नय चित्रतामनितमा किमागतः’

प्रभावती परिणय के इस पद्यार्थ को—

‘चक्रुर्युवानः प्रतिविम्बिताद्गा सजीवचित्रा इव रत्नभित्तिः ॥’

नैषधीय चरित के इस पद्य से मिलाइये ।

प्रभावतीपरिणय में एक श्लोक है :—

‘केलिध्रमखिलतनं समन्तात् सवीजयन्तोऽपि शरीरमासाम् ।
त्रासेन नान्त-पुरसुन्दरीणा चेलाञ्जल सञ्जलयन्ति वाता ॥’

(प्रमा० प० २-४ ॥)

इस श्लोक पर निम्न लिखित श्लोक की छाया प्रत्यक्ष है—

‘यस्यावरोधप्रमदाजनानां निद्रां विहारार्थपथे गतानाम् ।
घातोऽपि नास्त्रंसयदंशुकानि को लम्बयेदाहरणाय हस्तम् ॥’

प्रभावती परिणय में वर्णित भ्रमर बाषा का शाहुन्तल में वर्णित भ्रमर बाषा से भांशिक समानता स्पष्ट है ।

अन्य कवियों के काव्य की भी छाया प्रभावती परिणय में अवेषण करने पर मिल सकती है, परन्तु इससे हरिहर की कवित्वशक्ति पर आँच नहीं आती है, यह बात मैं बिना किसी सदेह के कहना हूँ ।

प्रस्तुत संस्करण

यह बात सबसे पहले ध्यान में रख लाजिवे कि 'प्रभावती परिणय' आज तक मुद्रित रूप को नहीं प्राप्त कर सका था । कुछ पुस्तकालयों में इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ ही उपलब्ध हैं, जो लेखक दोष से नितान्त अशुद्ध हैं । पेशावर कायस्थ लेखकों द्वारा लिखित होने के कारण पाठ इस प्रकार से अशुद्ध हो गये हैं कि उनका शुद्ध रूप निश्चित करना एक कठिन कार्य है । इसके अतिरिक्त एक और कठिनार्थ है कि प्रभावती परिणय में खी पात्र तथा नीच पात्र की भाषा प्राकृत है, संस्कृत की अशुद्धि को वैयाकरण समझ सकने हैं, परन्तु प्राकृत की अशुद्धियों पक्क में आती ही नहीं हैं । मुझे जो हस्त लिखित प्रति मिली थी, जिससे मैंने प्रस्तुत संस्करण तैयार किया है, वह एक कायस्थ की लिखी हुई थी, तथा उस पर समय ले० स० ५५६ लिखा हुआ था । आज से तीन सौदे तीन सौ वर्ष पहले एक मात्र अक्षर शानशाली पेशावर कायस्थ की लिखी संस्कृत प्राकृत काव्य का वैसा रूप हो सकता है यह बात विद्वानों के अनुमान में आ सकती है । अस्तु ।

मैंने प्रभावती परिणय की मूल प्रति स्वयं लिखी, लिखने समय मुझसे जहाँ तक बन सका मैंने यह चेष्टा की है कि पाठ शुद्ध रहे । सम्भव है मेरे द्वारा शोधित पाठ में कहीं कहीं मूल पाठ से कुछ भेद आ गया हो, परन्तु इसमें मैं निरुपाय था । हाँ, इतना मैंने अवश्य देखा है कि पाठ शुद्ध एवं न्याय हों । प्राकृत भाग का संस्कृत अनुवाद भी मुझे ही करना पड़ा है, उसमें मुझे बहुत परेशानी हुई है । इन सारे कष्टों का पारितोषिक मुझे विद्वज्जनों के आशीर्वाद रूप में मिलेगा, यही मेरे लिए सन्तोष का स्थान है ।

मैंने इस संस्करण में मूल के साथ प्राकृत अक्षर का संस्कृत अनुवाद तथा समस्त मूल भाग का हिन्दी रूपान्तर दे दिया है जिससे रसग्राही पाठकों को कुछ सुविधा हो जायगी ।

इस संस्करण के सम्पादन में मुझे पटना विश्वविद्यालय के हस्तलिखित ग्रन्थागार के अन्यतम अधिकारी तथा अपने शिष्य वि० श्री जगन्नाथ मिश्र तथा सा० वेदान्ताचार्य एम० ए० से बहुत साहाय्य प्राप्त हुआ है, अतः मैं उनको आशीर्वाद देता हूँ ।

गङ्गा दण्डहरा }
वि० स० २०२६ }

विनयावनत—
रामचन्द्र मिश्र

॥ श्रीः ॥

प्रभावतीपरिणयम्

‘प्रकाश’ हिन्दीव्याख्योपेतम्



प्रथमोऽङ्कः

देव्या मानापनोदप्रणतशिवशिरशशीतघाम्ना नखेन्द्री
सम्पूर्णं सैहियेयाकृतिकुटिलजटामण्डलार्धावकृद्धे ।
गीर्वाणाश्चन्द्रपर्यभ्रमचकितहृदो म्यञ्जदेतत्-किरीटो-
रसङ्गाद् गङ्गाप्रवाहे प्रवदति विहितस्नानपुण्याः पुनन्तु ॥ १ ॥

अपि च—

ध्यानावधानपरिलह्वनजागरूक-
रोपानलोन्मथितमन्मथविप्रहस्य ।

पार्वती के मान को दूर करने के उद्देश्य से शिव पार्वती के चरणों पर अपना शिर रखते हैं उस समय उनके मस्तक पर वर्तमान चन्द्रमा की कान्ति से पार्वती के चरण का नख पूर्णचन्द्र की तरह होकर महादेव के जटाभार-रूप राहु से प्रस्त सा प्रतीत होने लगना है मानो चन्द्रग्रहण उपस्थित हो गया हो, सेवा मे उपस्थित देवगण चन्द्रग्रहण को उपनत देखकर चकित हो उठते हैं, उन्हें महादेव के शिर पर प्रवाहिन होने वाली गङ्गामे स्नान का पुण्य अदसर प्राप्त हो जाता है, वे देवगण हमे पवित्र करें ॥ १ ॥

और—

ध्यानभङ्ग करने के कारण उदित प्रोधरूप अग्नि में कामदेव के शरीर को भस्म कर देने वाले महादेव को अपने उपकर्म के पश्चात् जो दयाभाव उत्पन्न

सद्यः प्रवृद्धकरुणापरिणाहदीर्घं
 देवस्य पातु परिदेवितमिन्दुमौलेः ॥ २ ॥
 (नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—(अलमतिविस्तरेण । पुरोऽवलोक्य) कथमयमशेषभुवन-
 वनिताविधीयमानसायन्तनमङ्गलदीपिकासहस्रसमकालमेव पूर्वाचल-
 शिखरसौधपरिसरे प्राचीदिगङ्गनया प्रदीयमानः प्रदीप इवोदित एव देवो
 रोहिणीरमणः । तथावदेन प्रसाद्यामि (प्रणम्य)

दिङ्नागरीवदनलम्बिघनान्धकार-

केशापसारणविसारिकरप्रसीद ।

उर्वीतलं तरुणतिग्मकरापराध-

फलान्तं प्रसाधय सुधामधुरैर्मयूखैः ॥ ३ ॥

अपि च—

जातस्त्वमेव भगवन् भुवने भवानी-

प्राणेश्वरोऽयमलिके तिलकं चकार ।

हुआ, उसके चलते उन्होंने जो पश्चात्ताप किया, वह पश्चात्ताप हमारी रक्षा
 करे ॥ २ ॥

(नान्दी के अन्त मे)

सूत्रधार—(अधिक विस्तार अनावश्यक है) (आगे की ओर देखकर)
 क्यों यह चन्द्रमा उदित हो रहे हैं जो समस्त संसार की ललनाओं द्वारा दिये
 गये हजारों दीपमालिका के साथ ही प्राचीनायिका द्वारा प्रवर्तित दीप के समान
 लग रहे हैं । तब तक इनकी आराधना रुकें । (प्रणाम करके)

दिशारूप नायिका के मुखों पर लटकते हुए अन्धकारस्वरूप केशपाश को
 दूर करने में समर्थ हाथ (कर) वाले चन्द्रदेव, आप प्रसन्न हों, और सूर्य की
 कठोर किरणों से पीड़ित इस पृथ्वीतल को अपने अमृतमय करों से आह्ला-
 दित करें ॥ ३ ॥

और—

इस संसार में आप ही एक ऐसे उत्पन्न हुए जिते शिव ने भी अपने मस्तक

यत्सोदरास्त्वमृतकौस्तुभपारिजाता
यस्यान्वये स्वयमयं हरिराविरासीत् ॥ ४ ॥
(नेपथ्ये)

भाव, साधु स्मारितम्,
सूत्रधार—(आकर्ष्यं) अये कथमयं पारिपार्श्विकः, (नेपथ्याभिमुखमव-
लोक्य) मारिप, किमिव ?

(प्रविश्य)

नट — भाव, सबहुमानमस्मानिय नियोजयति जनकजनपदाभरण-
मणिश्रेणीवेणीसरस्यतीस्रोतःसनाथोत्सङ्गा शृङ्गारादिनाट्यरसास्वादन-
सुखावहा महाकवीनां नवीनानुबद्धनाटकाभिनयकौतुकोपनीतचित्तचापला
परिपत् । तदिमा कतरं प्रबन्ध प्रणीय प्रीणयामीति चिन्तयन्नेव शीतांशु-
वशावतस भगवन्त वासुदेवमारयातवताऽनुस्मारितोऽस्मि भावेन यत्किल
श्रीवासुदेवात्मजन्मनः कुमारप्रद्युम्नस्य सञ्चरितसन्दर्भगभित प्रभावती-
परिणय नाम नाटकं परन्तु कुतस्त्यमेतदिति स्मारयितुमवशिष्यते ।

पर स्थान दिया, आपके सोदरो मे है अमृत, कौस्तुभ तथा पारिजात वृक्ष ।
आपके वश मे स्वय भगवान् ने भी जन्म लिया है ॥ ४ ॥

(नेपथ्य मे)

भाव आपने अच्छा स्मरण कराया ।

सूत्रधार—(सुनकर) वयो, यह पारिपार्श्विक है, (नेपथ्य की ओर
देखकर) मारिप, क्या बात है ।

(प्रवेश करके)

नट—मिथिला के भूषण सरस्वती के उपासक तथा शृङ्गारादि रसो से पूर्ण
नाट्य के आस्वादन मे रसशील महाकवियों की यह सभा नवनिमित्त नाटक
के अभिनयार्थे अचपल भाव से हमको प्रेरित कर रही है, अतः इस परिपत्
को किस प्रबन्ध के अभिनय से प्रसन्न करूँ, इसी चिंता मे मैं या कि आपने
चन्द्रवशभूषण भगवान् वासुदेव की याद दिला दी, मुझे याद पड गया वासुदेव
के पुत्र प्रद्युम्न के चरित से पूर्ण प्रभावतीपरिणय नामक नाटक, परन्तु वह
किसकी कृति है यह नहीं याद पड रहा है ।

सूत्रधारः—मारिप, मैथिल एवायं प्रबन्धः ।

नटः—(सवितकम्) भाव, बहवो हि मैथिला महाकवयः, तेषु—

शङ्के शङ्करमिश्रविश्रुतकृतेर्षाचामयं विश्रमः ।

सूत्रधारः—नैवम्, प्राचीना हि ते जगद्गुरवः ।

नटः—प्रायः प्रादुरभूदियं रुचिपतेर्षाणीति जानीमहे ॥

सूत्रधारः—नैतदपि, ततोऽपि नूतनोऽयम् ।

नटः—श्रीरामेश्वरमीश्वरी कविगिरामाराधयन्ती विराद्

या विद्याभिरुवास लास्यलहरी तस्या यदि स्यादियम् ॥५॥

सूत्रधारः—एवमेतत्, परन्तु तत्पराधीनतयैव तद्दौहित्रमनुगृहीत-
वत्या, यावत् कवयितारं विशिष्य व्याहरामि ।

प्रादुर्भूय पुरोगिरेरिव हृषीकेशात्कृती राघवो

यस्तिग्मद्युतिवद्दिवाकरमहावंशो दिदीपे द्विजः ।

सूत्रधार—वह प्रबन्ध तो मिथिला का ही है ।

नट—(सोचना हुआ) मित्र, मिथिला में बहुत से महाकवि हुए हैं,
उनमें—

संभव है विश्रुतकीर्ति शङ्करमिश्र की यह कृति हो ?

सूत्रधार—नहीं, वे तो अतिप्राचीन तथा विश्वगुरु हैं ।

नट—तब हो सकता है कि वह रुचिपति की रचना हो ।

सूत्रधार—नहीं यह बात भी नहीं है, उनसे भी यह नवीन है ।

नट—तब संभव है कि यह रामेश्वरमिश्र की रचना हो त्रिनको
सरस्वती अपनी लीलाओं से रिझाती रही ॥ ५ ॥

सूत्रधार—हां, ठीक है, परन्तु रामेश्वरमिश्र के वर में होने के कारण
उनके दौहित्र को अनुगृहीत करने एक चमत्कार दिखलाने वाली सरस्वती की ही
वह वृत्ता है, साफ घट्टों में मैं कवि का नाम बता रहा हूँ । जैसे पूर्वाक्ष से
प्रकट होकर भगवान् सूर्य दीप्त होते हैं उसी तरह हृषीकेश नामक पिता से

या लक्ष्मीरथ मैथिलादुदभवद्विद्यावदातात्मन-
स्ताम्यामुदभवमापतु कुशलत्रप्रयातगोत्रौ सुतौ ॥ ६ ॥

एषा तयो प्रथमजेन निजानुजान-
श्रीनीलकण्ठकविकण्ठविभूषणाय ।

गोविन्दसूनुगुणगुम्फनिषक्तसूक्ति-
मुक्तावली हरिहरेण चिरेण चीर्णा ॥ ७ ॥

अभिनयाय चास्मासु भरतेषु समपिता ।

नट — भात्र तदहमवधारयामि, भरतकुलानुग्रहायैव कवेरयमभिनि
वेश, परय—

परोपकाराय महाकवीना-
मेकत्र कुत्रापि वचोविलासा ।

रसान् समाहृत्य समर्पयन्तो
वृत्ति चिराम्माधुकरिं चरन्ति ॥ ८ ॥

सूत्रधार — मारिप, कुत्रापि किमुच्यते ? सकर्षणो वासुदेव प्रद्यु-
म्नोऽनिरुद्ध इति—

जन्म लेकर राघव नाम के पण्डित कर महावश मे दीव्य हुए और विद्वान्
मैथिल से उत्पन्न हुई लक्ष्मी । इन्ही दोनो—राघव तथा लक्ष्मी के कुशलव-
तुल्य दो पुत्र पैदा हुए ॥ ६ ॥

उन दोनो पुत्रो में ज्येष्ठ पुत्र हरिहर न अपने अनुज नीलकण्ठ के पदन के
लिये बाहुदेवतनय प्रद्युम्न के गुणो से पूण इस न टक रत्न की रचना की है ॥७॥
और अभिनयार्थ उन्होने अपनी कृति हर्षे दी है ।

नट—मित्र, मुझ लगता है कि भरतो पर कृपा करने के लिये ही कवि
ने यह प्रयास किया है देखो—

परोपकार के लिये ही कविगण किसी पात्रविशेष की वणन का रुक्ष्य
बनाकर यत्रतत्र से रससञ्चय करते हुए मधुकरि वृत्ति का अवलम्बन
करते हैं ॥ ८ ॥

सूत्रधार—मारिप, किसी पात्रविशेष मे—ऐसा क्यों कहते हो, सकर्षण,

ये चत्वारः प्राकृतैस्तैर्विकारैः

प्राग् ब्रह्माण्डाद् ब्रह्मखण्डा बभूवुः ।

ते खल्वेते वृष्णिवंशेऽवतीर्णा

दुःस्थामेतां स्थापयन्तो घटित्रीम् ॥ ९ ॥

तेन हि—

विदूरं वेदेभ्यो यदि यदुपु तद्धाम परमं

गिरान्नेदीयस्त्वं ननु तनुभिरेताभिरभजत् ।

परमतादेतस्यास्तदनु चरितस्वर्गसरितः

कुतः स्रोतः सारस्वतमुच्यतवित् सङ्गमयतु ॥ १० ॥

अपि च—

वासुदेवप्रसादनमपि प्रयोजनमेतस्य, कुतः,

कवेः कथं मन्मथवर्णनाभि-

र्नाराधितः स्याद्दरविन्दनाभ ।

यतः स्वतोऽपि स्वतन्त्रपूजा

सन्तोषहेतुर्महतामुक्षीते ॥ ११ ॥

वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध यह चार ब्रह्मखण्ड प्राकृत विकारों के कारण ब्रह्म से प्रकट हुए, यह सभी यादव वंश में अवतीर्ण होकर इस विपन्न पृथ्वी की रक्षा कर रहे हैं ॥ ९ ॥

जो ब्रह्म बाणी से परे अगम्य था, वही ब्रह्म यदुर्गम में इन रूपों में अवतार लेकर बाणी के समीप आगया है, उसके आचरणरूप गङ्गा को छोड़कर, औचित्य का ज्ञाता कवि अपनी सरस्वती के प्रवाह को और कहीं सङ्गम करने के लिये प्रेरित करे ॥ १० ॥

और—वासुदेव की आराधना भी इस बाणी का प्रयोजन है, क्योंकि—
कवि द्वारा किये गये कामदेव के वर्णनों से भगवान् कृष्ण कैसे नहीं प्रसन्न होंगे । अपनी पूजा से बढ़कर पुत्र का सरकार लोगों के सन्तोष का कारण हुआ करता है ॥ ११ ॥

न केवलमेतावन्मात्रमपि यतः—

संस्थावद्भिः सकलजगतीजित्वरैर्दूरदृष्टा-
दथात् कष्टादधिकमधिकं तर्कमुत्थापयन्तः ।

श्रान्ताः सार्द्धं किमपि कविना ये सतीर्थ्याः सुस्नार्था
स्तेषामेव शिशिरमधुरा भारती प्रादुरास ॥ १२ ॥

नटः—(सबहुमानम्) एवमेतत् । तत्सुरमनेन प्रबन्धेनाराधिता
परिपत् ।

सूत्रधारः—एवमेतत् , परन्तु—

यद्यप्येव विशेषवित्कवयिता शिक्षासु दक्षा वयं
नाट्ये शम्बरगर्वदम्बरद्वरो देवः स्मरो नायकः ।
रङ्गेऽस्मिन्नपिपुणं तथापि भरतैरेतैरुपक्रम्यतां
यन्नाक्रामति दुर्जनस्य रसनारङ्गस्थलीं दुर्यशः ॥ १३ ॥

अपि च—

कविना निपुणं गिरां गरिम्णा
चरिते शम्बरवैरिणः प्रणीते ।

इतनी ही बात नहीं है, क्योंकि—

सकल विश्वविजयी जो विद्वद्गण बलेश कर के तर्कों की उद्भावना करते-
करते श्रान्त हो गया है, प्रकृत कवि के साथ वह सुख की कामना करता है
उन्ही सबर्ग कवियों की यह शीतल मधुर कविता प्रकट हुई है ॥ १२ ॥

नट—(सादर) यही बात है । तब तो इस प्रबन्ध से परिषद् भलीभाँति
प्रसन्न होगी ।

सूत्रधार—हाँ, ऐसी ही बात है, परन्तु—

यद्यपि इस नाटक के रचयिता कवि विशेषज्ञ हैं, हम सभी नाट्यकला
प्रवीण हैं, नाटक के नायक भी शम्बर के गर्व को दूर करने वाले कामदेव हैं,
फिर भी भरतगण अभिनय में पूर्ण सतर्कता बरतें, जिससे दुर्जन की जीभरूप
रङ्गस्थल में दुर्यश न नाचने लगे ॥ १३ ॥

और—भरतगण बाणी की गरिमा को ध्यान में रख कर कवि द्वारा

भरताः कुरुताभियुक्तमन्तः

सुखमेतेन वशीभवन्तु सन्तः ॥ १४ ॥

नटः—भाव, सतां हि वशीकरणमिति न दुष्करं, यतः—

विरलोऽपि गुणो महत्त्वभाजां

विमले हृन्मुकुरेऽनुविम्बमेति ।

निभृतेन तिरोभवन्त्यमीषां

गरिमप्राघदरीषु द्रुपणानि ॥ १५ ॥

कि पुनरिदानीं नाट्यारम्भसमयसमुचितमाचरणीयम् ।

सूत्रधार—मारिप,

सांसारिकेऽस्मिन् व्यापारे घाघतोऽहर्निशं हृदः ।

संगीतमिच्छिस्थगतान्न स्थिरीकरणं परम् ॥ १६ ॥

(स्थिरे चाधिकरणे स्थेमानमावहन्ति विन्यस्तानि वस्तूनि, तदादेशय गृहिणीं सङ्गीताय ।)

नटः—भाव, कं समयमाश्रित्य सम्प्रति सङ्गीतमुपक्रम्यताम् ।

निमित्त इस नाटक के अभिनय में पूर्ण सावधान होकर काम करें जिससे सज्जन-गण अनायास वशीभूत हो जाय ॥ १४ ॥

नट—मित्र, सज्जनों को वश में करना कुछ कठिन कार्य नहीं है, क्योंकि—

महान् जनो के हृदयरूप दर्पण में अस्पमाना में वर्तमान गुण भी प्रतिबिम्बित होता है और उनके गौरव की दरी में घारे शोक धुपसाय छिप जाते हैं । १५ ॥

इस समय नाट्यारम्भ के उपयुक्त क्या करना चाहिये ।

सूत्रधार—मारिप,

इन सांसारिक व्यापारों में अहर्निश दौड़ते हुए हृदय को संगीत की मिति पर निश्चल करने के सिवा दूसरा कोई स्थिर करने का उपाय नहीं है ॥ १६ ॥

नट—मित्र, किस समय को आश्रित कर के सङ्गीत प्रारम्भ किया जाय ।

सूत्रधार — साम्प्रतिक शरत्समयमेव । इह हि—
 धुनीते हंसालां हरिदनुचरीचामरमित
 सितच्छत्रं धत्ते शिशिरकरमाकाशपुरुष ,
 इयन्तारालाजान् किरति पुरवृद्धेव रजनी
 जगज्जेतुं सज्जोभवति नियतं तन्मनसिज ॥ १७ ॥

नट — (सविमशम्) भाव, कयमारभ्यता सङ्गीतकम् ?

सूत्रधार — कयमिव ?

नट — भाग्येन हसारयानेन स्मारितोऽस्मि यद्य कुमारप्रद्युम्नस्य
 क्रीडाकमलिनीगण्ड कुतश्चिदुपनिपतितानि रात्रहसमिधुनान् दैवीं वाच-
 मुद्गिरतीति नागरिकाख्यानमुपश्रुत्य कुतूहलोत्तरलचेतसो भरतकुलमौ-
 लिभूता भावभार्या पुरस्कृत्य सखला शैल्युपयोपितस्तत्रैव गता नाद्यापि
 निवर्त्तन्त इति ।

सूत्रधार — आ, जानामि शुचिमुखीप्रधान निगूढसन्निधान हसकुल-
 मेतत् ।

सूत्रधार — वत्तम न शरत् समय को ही इसमें—

निशाख्य नासो हसमालास्वरूप चामर झल रही है, आकाशरूप पुरुष
 चन्द्रमास्वरूप उजले छत्र को पकड़े हुआ है ग्रामवृद्धा स्त्री को तरह यह रात्रि
 तारास्वरूप लाजा बिखेर रही है ऐसा लगता है मानो कामनृपति जगत्
 जीतने को तैयार हो रहे हों ॥ १७ ।

नट — (सोचकर) मित्र कैसे सङ्गीत प्रारम्भ करें ?

सूत्रधार — क्यों ?

आपक हसख्यान से मुच स्मरण हो आया है कि आज कुमार प्रद्युम्न के
 क्रीडाकमलवन मे कही से उतरे हुए हस के जोड़े देववाणी बोलन हैं,
 नागरिकों की इस बात को सुन कर उत्कर्षित होने वाली समस्त भरतनारियाँ
 भरताङ्गनाप्रधान आपकी पत्नी को आगे करके वहीं चली गई हैं । व अब तक
 वहाँ से नहीं लौट सकी हैं ।

सूत्रधार — अहा, समय गया यह वही शुचिमुखी प्रभृति हसो का
 समुदाय है जो कुछ रहस्यमय कार्य में लगा है ।

नट—(सकौतुकम्) भाव, भिन्नार्थमिदमाकर्णयितुमुत्कण्ठतोऽस्मि ।

सूत्रधारः—श्रूयताम्, दिव्यहंसाः खल्वेते, प्रभवति चैतेषु प्रगल्भा
विदग्धहंसी शुचिमुखी ।

वज्रनाभस्य नगरात्सेयं द्वारघटीमिमाम् ।

प्रेम्णा घटयितुं प्राप्ता प्रद्युम्नेन प्रभावतीम् ॥ १८ ॥

(नेपथ्ये—सत्रोधम्)

आः शैलपर्वर, सर्वलोकसर्वस्थभूत रहस्यमिदमुद्घाटय व्याहरन्न
बिभेपि ?

सूत्रधार—(आकर्ष्यं सापराधमिव) अये, कथमयमस्माकं कुशीलगानां
कुलमणिमुनिदत्तवरस्तत्रभवान् भद्रो देवप्रणिधिदेवीस्त्रीतिमुद्घाटिता-
माकर्ष्य क्रुद्धयति, तदेहि सम्प्रत्येतस्य दर्शनपथादपसरान् । (इति
निष्क्रान्ती)

प्रस्तावना

नट—(कौतुक के साथ) मित्र, आप अपने कपन का थोड़ा अर्थ स्पष्ट
कीजिये, मैं उत्काण्ठ हो रहा हूँ ।

सूत्रधार— सुनिये, ये स्वर्गीय दूत हैं और इनका प्रधान है शुचिमुखी
नाम की विदुषी तथा प्रौढ़ा हरी ।

यह वज्रनाभ की नगरी से द्वारकापुरी इसीलिये आई है कि वह प्रभावती
के साथ प्रद्युम्न का प्रेम संबंध स्थापित कर सके ॥ १८ ॥

(नेपथ्य में—सत्रोधम्)

अरे नगधम, समस्त सभार का यह सर्वस्व स्वरूप रहस्य है, ६६ को
साक-साक कहते हुए तुमको भय नहीं हो रहा है ?

सूत्रधार—(मुनकर सापराध की तरह) अरे, क्या यह हम कुशीलवों
के कुपथेष्ठ, नारद द्वारा वर-प्रदान से सम्मानित, देवों के गुप्तवर भद्र हैं जो
देवनीति को उद्घाटित होते मुन कर कुपित हो रहे हैं, अच्छा चलो, अभी इनको
दृष्टि से अलग हो चलें । (जाते हैं)

प्रस्तावना समाप्त

(ततः प्रवशति भद्र.)

भद्र—(आ. शैलूपेत्यादि पठित्वा संवरणमभिनीय) अस्तु वा निषेधमुखे-
नापि नायमर्थं प्रसञ्जनीयः । इदन्तु चिन्तयामि—

प्रासोत्कम्पिनमत्सुरासुरशिरोरत्नाङ्कुरोद्धर्षण-

प्रोच्यत्पीठमणिप्रभाजलचलत्पादारविन्दो हरि ।

गीर्वाणान् परिभूय भूयसि मुहुर्मामादरे स्थापयन्

यस्मिन्नादिशतिस्म कर्मणि कथं स्यामस्थ पारङ्गम. ॥ १६ ॥

अथवा—अगणितगरिमाणो हि ते कार्यमर्यादायाः पारतन्त्र्येण परेषु
प्रयत्नमाना. प्राकृतमपि पुरुषं परा कोटिमारोहयन्ति, तथाहि—

कृतिमत्तामपटोरपि घटयति तेजस्विनां पुरस्कारः ।

हरति हरितामनूरुर्जगतीजयजाह्निकानि तिमिराणि ॥ २० ॥

(भद्र का प्रवेश)

भद्र—(आ. शैलूपापसद, इत्यादि पठ कर फिर बन्द कर देने के
अभिनय में) अथवा इस बात को निषेध करने को मुद्रा में भी नहीं प्रकाशित
करना है, मैं सोचता हूँ—

भय से कापते हुए देवदानवगण के मस्तक मणि के सङ्घर्षण से जिनका
पादपीठगत मणि घिसता रहता है और उसी के कारण दीप्त मणिप्रभा से
जिनका चरणारविन्द प्रक्षान्त होता रहता है, ऐसे हरि ने समस्त देवगण को
छोड़कर मुझे जिस आदर का पात्र बनाया तथा गुह्यतर कार्य में नियुक्त किया
है, मैं उस कार्य को किस प्रकार पूरा कर सकूंगा ॥ १९ ॥

अथवा उनकी महिमा अपरवार है, बड़े कार्य की महत्ता को ध्यान में नहीं
रख कर ही दूसरों को आदेश दे दिया करते हैं और इस प्रकार से साधारण
जन को भी उंचा गौरव प्रदान करते हैं । जैसे—साधारण जन को भी जब
तेजस्वी पुरुष गुह्यतर कार्य में नियुक्त करते हैं तब उसकी चतुरता निखर आती
है, सूर्य द्वारा निदुक्त होने से ही वो अमूर्क लोकत्रय में व्याप्त तम को दूर करने
में समर्थ हो पाता है ॥ २० ॥

अपि च—

देवो द्वारवतीपतिर्वितनुते सत्कारमाराधितः
सर्वः सोदरभावमादरपरः शाम्बादिरात्म्यते ।
प्रद्युम्नः परमेय यन्मयि पुनः प्राणादपि प्रीयते
तज्जानामि जयन्ति जृम्भितफलाग्रम्भारिसम्भावनाः ॥ २१ ॥

अथ च नैतावदपि निरभिसन्धि, यथा—

दूरादानकदुन्दुभेरुपगतास्तत्राश्वमेधाध्वरे
सन्नाट्याभिनयेषु तेषु मुनयस्ते ते मयोपासिताः ।
तादृचैरयमर्पितो मयि धर. स्वच्छन्दसञ्चारिणो
येनैतस् सचराचरं जगदपि व्यामोहयामो धयम् ॥ २२ ॥

(अग्रतोऽवलोक्य । आश्चर्यम्) कथमय पुरुहूतदूतः सारणः,

(प्रविश्य)

सारण—(सानन्दम्) परिस्सज्जम्ह पिअग्रस्स । (परिप्वजामहे प्रिय
वयस्यम्) । (इति परस्परमालिङ्गतः)

और—द्वारकाधीश मेरे द्वारा आराधित होकर मेरा सरकार करते हैं, शाम्बा आदि आदर के साथ सोदर की तरह मानते हैं, यह प्रद्युम्न तो मुझ पर प्राणों से भी बढ़कर प्रेम करता है, इन सभी घटनाओं से मुझे ज्ञात होता है कि यह सब इन्द्र के द्वारा किये गये मेरे आदर का ही परिणाम है ॥ २१ ॥

और यह भी बिना गुप्त रहस्य के नहीं है, जैसे—यदुराज के अश्वमेध यज्ञ में दूर दूर के मुनिगण आये हुए थे, मैंने नाटक के अभिनय द्वारा उन्हें आराधित किया था, उन लोगों ने प्रसन्न होकर मुझे कुछ ऐसा वरदान दिया है जिससे मैं स्वच्छन्दचारी होकर चराचर जगत् को मोहित करता हूँ ॥ २२ ॥

(आगे की ओर देखकर) (आश्चर्य के साथ) क्या यह इन्द्र के दूत सारण हैं ।

(प्रवेश करके)

सारण—(सानन्द) प्रिय मित्र, आओ हम गले से लगे ।

(परस्पर मालिङ्गन करते हैं)

भद्र—वयस्य, कुशल देवराजस्य ।

सारण—(सनि श्वासम्) कुदो कुशल जायदायि सा वैरिणो ण पराहु-
वीअन्ति । (कुत कुशलं यावताऽपि ते वैरिणो न पराभूयन्ते)

भद्र—(सोऽवेगम्) किं किमप्यद्यतनमत्याहितम् ।

सारण—अहइ । (अयकिम्)

भद्र—सविशेषमभिधीयताम् ।

सारण—सुणादु वअस्सो, सो वखु परक्कमावलेअ-पज्जलन्त-रोस-
वेसाणरो वज्जणाहो सुणाहाधिद्धिअदुच्चासुरसेण्णसहाओ ऋत्ति आअ
च्छिअ अमरावतीए दुआवप्पमुहे ज्जेअ णिवेसिअ खन्धानारो आसि ।
(शृणोतु वयस्य, स खलु पराक्रमावलेपप्रज्वलद्रोपवैरवानरो वज्जनाभ. सुनाभा-
धिधितोच्चासुरसैन्यसहायो क्षटित्यागत्य अमरावत्या द्वारप्रमुखे एव निवेशितस्क-
न्धावार आसीत् ।)

भद्र—आ शक्ति, अमरावतीमप्यवरुरोध दानवः, अथवा—किमा-
श्चर्यम्,

प्राक् पर्याप्ततपश्चर्यावशीकृतविरञ्चिना ।

भद्र—मित्र, देवराज तो सकुशल हैं ।

सारण—(निश्वास छोड़ कर) तबतक कुशल कहाँ जबतक इन
वैरियों का पराभव नहीं होता है ।

भद्र—(रुद्धिन्ततापूर्वक) आज की कोई नई बात क्या है ?

सारण—और क्या ?

भद्र—स्पष्ट करके बताओ ।

सारण—सुनो मित्र, पराक्रम के गर्व से रोष बल्लि को प्रज्वलित करता
हुआ वह वज्जनाभ सुनाभ के आधिपत्य में असुरसैन्य का सङ्गठन करके शीघ्र
आकर अमरावती के द्वार पर सैन्यसन्निवेश करके उपस्थित हो गया ।

भद्र—कितनी बड़ी शक्ति है, उस दानव ने अमरावती को ही घेर लिया ।
इसमें क्या आश्चर्य है ?

पूर्वकाल में वज्जनाभ ने प्रचुर तपस्या द्वारा ब्रह्मा को वश में करके द्वेष

दीर्घद्वेषभृता तेन घृता देवैरवध्यता ॥ २३ ॥

ततस्ततः ।

कारण—तदो तेण तक्करणमणुप्पेसिदो समग्गासुरवग्गाणं गुरु भअव भग्गो सुरणाहसमीव समागच्छिअ गच्चणिअमरक्कराक्खेअ महाराअउउत्त पाहो वाहरदित्ति । (ततस्तेन तत्क्षणमनुप्रेषित समग्रामुरवर्गाणां गुरुभंगवान् भागव. सुरनायसमीप समागत्य गर्वनिर्भराक्षराक्षेप महाराजव्यनाभो व्याहर्तीति ।)

मित्र—

पूर्णां दिडनागरत्नाकरकनकमणिप्रावरत्नैस्त्रिलोकी
पिड्यं नः काश्यपानां स्वमिति स्मृतया संविभज्योपमोग्या ।

तस्ते यावन्ति यातान्यमरपरिवृढस्यर्नगर्षा युगानि
व्यावस्वत्सङ्गमस्मद्भुजभुजगपतिस्नायदेना प्रशास्तु ॥ २४ ॥

किं घटुना—

उर्षीं दुर्षारदैस्याक्रमणपरवशा दुर्दशा यात यूयं
स्थलोकेऽस्मत्प्रतापप्रतिनयतरणि प्रज्यलन्नाविरस्तु ।

वश उनस करदान ले लिया है कि वह देवो से बध्य नहीं होगा ॥ २३ ॥

इसके बाद क्या हुआ ?

स्मरण—इसके बाद उसने तरफाल समस्त दानवों के गुरु धुत्र को इन्द्र के पास भेजा, धुत्र ने आकर गय तथा अपमान के व्यवहार चन्द्रों में बय्य नाम का संदेश कहा—

मित्र,

यह दिग्गजों, सागरों, स्वर्णों और मणिओं से पूर्ण पृथ्वी हम छाया की बपौती सम्पत्ति है, उचित है हम काश्यप की सन्तानों उसका समभाग करके उपभोग करें । अतः, देवराज, आपने जितने दिनों तक स्वर्ण का उपभोग किया है उतने दिनों तक अब यह हमारा अङ्गरूप चर्षराज से मुक्त बाहु उसका भोग करेगा ॥ २४ ॥

अधिक क्या ? दुर्षयं दैवों के आक्रमण से परवश होकर आप लोग पृथ्वी पर बने जाय. और स्वर्ण में हमारे प्रतापस्वर मूर्ध की प्रसार विरलें प्रकट हा ।

नो चेद् दम्भोलिदम्भज्वरमुपचरतु त्वद्भुजस्तम्भभाजं
स्वस्सेवाविष्टदेवाहुरसमरचरो निष्कृपो न कृपाणः ॥ २५ ॥

एत्तिअ भणिअ तुण्हिहको आसि । (एतावद् भणित्वा तूष्णीकं आसीत् ।)

भद्रः—अहो दुरबलेपो दैत्यहतकस्य । अहो दुःखिनयगर्भता भार्गव-
गिराम् । अहो प्रमादः प्रसीदत. परमेष्ठिन । । तत. परमभिधीयतां किं
प्रतिपन्नममरापतीपतिना ।

सारण —तदो तत्काल पञ्जलन्त क्रोहकालाणलजालाहिं त्रिअ णिस्स-
रन्तीहि आरत्तीकिदलोअणसहस्स पुणो पुणो भीसण कुलिस-फालि-
अकरअल महेन्द्र चिन्ता-णिवत्तहिअअ अ देवपरिसद् वित्तलि-
हिअ त्रिअ पलोइअ देव्याण उअज्जाओ त्रिहप्पई भूत्ति उट्ठिअ महेन्द्र
मुत्तरिअञ्चले धेत्तूण सुधम्माए वाहिर मन्तिट्ठु ओसरिओ । (ततस्त
त्कालप्रज्वलत्क्रोधकालानलज्वालाभिरिव नि धरन्तीभिरारत्तीकृतलोचनसहस्र पुन
पुनर्भीषणकुलिशस्फालितकरतल महेन्द्र चिन्तानियत्कहृदया च देवपरिषद् विव-
लिखितामवाबलोत्प देवानामुपाध्यायो बृहस्पतिर्ज्ञातिवित्याय महेन्द्रमुत्तरीयाञ्चले
गृहीत्वा सुधर्माया बहिर्मन्त्रयितुमपसृत.) ।

भद्रः—युक्तमेतत्, ततस्तत. ।

अगर आप ऐसा नहीं करते तो देवासुरसंग्राम विहारी हमारा यह निर्दय
कृपाण आपके दम्भरूप ज्वर का उपचार करने को प्रस्तुत हो जायगा ॥ २५ ॥

इतना कहकर शुक महाराज चुप हो गये ।

भद्र—दैत्याधम का एवं वाश्चर्यकर है, और शुक की वाणी भी अविनय
से भरी हुई है । इसके बाद इन्द्र न क्या किया, यह बताइये ।

सारण—इसके बाद बृहस्पति ने देखा कि तत्काल प्रज्वलित कापलप
कालानल को ज्वाला से उगलती हुई इन्द्र की आँखें लाल हो रही हैं, और वह
बारबार करगत वज्र का स्पर्श कर रहे हैं, इधर देवगण चिन्ता में मग्नहृदय हो
रहे हैं, वह क्षीप्र उठ गये और इन्द्र को चादर की छोर पकड़ कर देवसभा से
बाहर मन्त्रणा के लिये बुला लाये ।

भद्र—यह तो ठीक किया । इसके बाद ?

सारणः—तदो विष्वदाए मन्तणाए आअच्छिअ देव्यगुरुणा आअ-
 किरदं, जुत्तं ज्जेव वज्जणाहो वाहरदि, करीअदि ज्जेव एव्व जइ पिदरो
 सवरदा होन्ति जमन्तीअदि—(ततो निर्व्यंढायां मन्त्रणायामागत्य देवगुरुणा
 भणितं मुक्तमेव वचनाभो व्याहरति, क्रियत एव यदि पितरो उररती
 भवतः, यन्मन्यते—)

पितर्युपरते पुत्रा विभजेयुर्यथायथम् ।

जीवन्पुनः स एव स्वान् स्वैच्छया विभजेरसुतान् ॥ २६ ॥

इतत्थ भरद्वाजस्सरस्सज्जेव सआसं गच्छध, सो जं आणवेदि तं ज्जेव
 अम्हाणं पमाणन्ति । (इतः भरद्वाजसरस एव सकाशं गच्छत, स यदाज्ञापयति
 तदेवास्माकं प्रमाणम् इति ।)

भद्रः—साधु, मन्त्रिमहत्तरगीर्वाणगुरो, साधु, यतः—

अनघीतप्रतीकारे दिरोषस्तिनि वैरिणि ।

समर्थं क्षिपता क्षिप्ताः पुरुषेण विपत्तयः ॥ २७ ॥

ततस्ततः,

सारणः—तदो सुकोदीरिद वकोवण्णास उज्जुअं युग्गिअ अत्तणो

सारण—इसके उपरान्त मन्त्रणा करने के बाद देवगुरु भावे और उन्हींने
 कहा कि वचनाभ का वचन ठीक है, ऐसा ही किया जायगा यदि पिता का
 देहान्त हो जाय, जैसा कि कहा गया है :—पिता की मृत्यु के बाद पुत्र उसकी
 सारी सम्पत्ति बाँट लें, परन्तु जीवित्तायस्वा में पिता ही अपनी इच्छानुसार
 विभाग कर दे ॥ २६ ॥

अतः आप लोग भरद्वाज सरोवर के पास चले आइये, वदप्य महाराज की
 जैसी आज्ञा होगी वह हम लोगों की मान्य होगी ।

भद्र—साधु, मन्त्रिभेद्य वृहस्पति, साधु । त्रिपत्ता कोई प्रतीकार नहीं हो
 ऐसा दुस्मन जब सिर पर चढ़ बैठे, सब जो पुरुष समय सेर बनता है वह
 विपत्ति को पार कर जाता है ॥ २७ ॥

इसके बाद क्या हुआ ?

सारण—इसके बाद मुक्त ने आकर सारी वषा गुनाही त्रिसमें द्रुटिलता के

उअरि पिदुलो अणुउलतुण मण्णमाण महासुरसेण्ण सणाह वज्जणाह पुरो-
कदुअ भअवदो मारीअस्स सआस गदो । (तत शुक्रोदीरित वक्रोपयास
श्रुजुवं बुद्धवा आत्मन उपरि पितु अनुकूलत्व मन्यमान महासुरसैयसनायं वज्ज
नाभ पुरस्कृत्य भगवतो मरीचे सकाश गत ।)

भद्र—ततस्तत ।

सारण—तदो ताण सुरलोअलुद्धाण ताइ ताइ विण्णपिआह आअ-
ण्टिअ भअउदा मारीएण चिन्तिउण भणिअ अम्ह एतस्सि अद्धावसिट्ठे
वारहवारसिए सत्ते समत्ते तुम्हे अप्पत्तमणोरहा ण चिठिठस्सघ त्ति वज्ज
णाहो वि पित्तर प्रमाणीकदुअ परावुत्तो वज्जउर । (ततस्तेपा सुरलोक-
लुब्धाना तानि तानि विज्ञपितानि आकम्प्य भगवता मरीचिना चिन्तयित्वा भणि
तम्—अस्मिन्-अर्धावशिष्टे द्वादशवारिके सत्रे समाप्ते यूयम् अप्राप्तमनोरथा न
स्थास्यथ इति वज्जनाभोऽपि पितर प्रमाणोक्त्य परावृत्तो वज्जपुरम् ।)

भद्र—साधु साधु, यूयमप्राप्तमनोरथा न स्थास्यथेति विशिष्टामात्र
उभयथाऽप्युपपन्न, अथवा—नाद्यतन सहस्राक्षपक्षपातो दाक्षादयणीना-
यकम्य तत्राप्य कालो व्यरसायस्य । त्व पुन किंनिमित्तमत्रागत ।

साथ सरलता मिली हुई थी वज्जनाभ ने समझा कि पिशाजी मेरे अनुकूल हैं
ही अतः वह बड़ी ही मेना को साथ लेकर आगे आगे चला देवगण भी साथ
हो लिये ।

भद्र—इसके बाद ?

सारण—उन स्वगलोलुपों की सारी बातें सुन कर भगवान् मरीचि ने
कहा कि हमारे इस अर्धावशिष्ट द्वादश वर्षों में समाप्त यज्ञ के समाप्त होने पर
तुम लोग अपूण मनोरथ नहीं रह जाओगे । वज्जनाभ न भी पिता की वाणी को
प्रमाण मान लिया और वह अपन नगर को लौट गया

भद्र—साधु साधु । आप लोग अप्राप्त मनोरथ नहीं रह जायेंगे इसमें
दोनों तरह से नश्य ठीक बैठता है अथवा—भगवान् मरीचि आज से ही
इन्द्र का पक्षपात नहीं करने लगे हैं उद्योग करने का समय मिल गया । यह
तो कहो कि तुम यहाँ क्या करने आये थे ?

सारण.—मए इध आअछिअ एसो महेन्द्रसन्देसो वासुदेवगोअरी-
कटो (मया इत आगत्य एष महेन्द्रसन्देशो वासुदेवगोवरीकृतः ।) (इति वचं
कथयति)

भद्रः—कथमङ्गीकृतमेतद् भगवता ।

सारणः—अध इं । (अथ किम् ।)

भद्र —(सानन्दम्) तर्हि सर्वतोमुखी सम्प्रति देवदण्डनीतिः ।

सारणः— तुम्हे उण किवारारा । (त्वं पुन किव्यापारः ?)

भद्रः— (समन्तादवलोक्य) विचन एवायं प्रदेशः, श्रूयतां ये यत्रु ते दिग्-
हंसा भगवता महेन्द्रेण—

काश्यपा यूयमम्माकं पन्धवो घशयस्मिन् ।

यञ्जनाभपुरं प्राप्ताः साधु साधयतेऽसितम् ॥ २८ ॥

इत्येवमादिष्टाः ।

ते हि विचित्रवयसो मिङ्गमा इति वञ्जपुरे प्राप्तप्रवेशाः प्रभा-
वत्याः सखीभाने शुचिमुखीमादेश्य दनुजराजान्तःपुरदीपिकायामेष
दीर्घकालमुपिताः ।

सारण— मैंने यहाँ आकर इन्द्र का सन्देश वासुदेव के पास पहुँचाया है ।

(जान में कहता है)

भद्र— क्या वासुदेव ने यह स्वीकार कर लिया ।

सारण— और क्या ?

भद्र— (सानन्द) तब तो देवों की दण्डनीति सब ओर से चल रही है ।

सारण— तुम क्या कर रह हो ?

भद्र— (चारों ओर देखकर) यह स्थान तो निर्जन है । गुनिप — महेन्द्र
ने जिन हंशों को यह कहा था —

हओ, तुम भी काश्यप होने से हमारे भाई हो, अतः तुम लोग वञ्जनाभ की
नगरी में आकर हमारा कार्य करो ॥ २८ ॥

वे नाना तरह की बोली बाले हुए हैं अतः उनका वञ्जनाभपुर में अवश
मुलभ हो गया, उन्होंने अपने दल की हठी शुचिमुखी को वभावती की
सखी बना दिया, और वे दानवराज के अन्तपुर में बिरजाल तब रह गये ।

सारणः—अहं इं सुइमुहीए ववसिदं । (अप कि शुचिमुख्या व्यवसितम् ?)

भद्रः—तया हि पुरस्तात् त्रिभुवनकथाकर्णनकुतूहलिनीषु प्रभावती-
प्रमुखासु दनुजकन्यकासु भारतपर्योपवर्णनप्रसङ्गेन द्वारवतीप्रस्तावे
वृष्टिवंशवर्णनायामनुवर्त्तिता यथाप्रमन्मन्यावतारः कुमारः प्रद्युम्नः ।
अथैकदाःरहसि प्रियसखीभावेन तासु तासु प्रणयगमिता सुप्रवृत्तासु
वार्त्तासु—

किमपि तरुणिमा तवाधिरास्ते

तरुणि तनौ रमणीयतानुरूपः ।

इह गहनतरः स्मरादुदीते

प्रतिपदलब्धभयोऽदयोऽभियोग ॥ २९ ॥

तेन हि—

कति कति न कुलेषु जन्मभाजो

जगति जयन्ति गुणोज्ज्वला युवानः ।

स्मरपरवशातामुपेत्य कस्मि-

न्नपि करभोरु, कुरु प्रसन्नमन्नः ॥ ३० ॥

सारण—और शुचिमुखी ने क्या किया ?

भद्र—शुचिमुखी ने पहले त्रिभुवनकथा-श्रवणोत्सुक दनुजकन्याओं के
आगे भारतवर्ष के वर्णनक्रम में द्वारवती-प्रसङ्ग में मन्मथावतार कुमार प्रद्युम्न
की अवतारणा की । फिर एक समय एकान्त में नानाविध प्रणयवस्था के सिलखिले
में उसने प्रभावती से कहा—

हे तरुणि, तुम्हारी देह में सौन्दर्य के अनुरूप यौवन का उदय हो रहा है,
इस अवस्था में पगपग पर भय उत्पन्न करनेवाला काम का आक्रमण हुआ
करता है ॥ २९ ॥

इसलिये—

अच्छे-अच्छे वंशों में बहुत से गुणवान् युवकों ने जन्म लिया है, तुम काम-
परवश होकर उन्हीं में से किसी युवक पर अपना अन्तःकरण प्रसन्न कर
दो ॥ ३० ॥

इत्याख्यातवत्यां शुचिमुखायामनुमुक्तद्वयमन्थिः प्रभावती-प्रियसरि,
यदि प्रथमं सर्वथैव मन्मथपराधीनता पुरन्ध्रीणान्तर्हि पुरुषान्तरप्रसङ्गे
सत्यभङ्गः इत्युपहसितवती ।

सारण—(सकौतुकम्) साहु उवषमो, तदो तदो । (सापुष्यक्रमः ।
सतस्ततः ?)

भद्र—ततश्च शुचिमुखी सोत्प्रामहास प्राह, आ,

तन्निर्णीतं भवति भवती रौक्मिणोयानुरक्ता

व्यक्तानुक्ताप्यतिचिरमियं चोरिता वित्तवृत्तिः ।

किं त्येतस्मिन्नदृष्ट गहने त्वामहं नानुमन्ये

पुण्येनास्मिञ्जुषि जयिनी जायसे वा न घेति ॥ ३१ ॥

इत्युपक्रमेण सा विदग्धदूती पीनदूतीमन्तर्निगूढास्त्रीतिमुञ्जीवयन्ती
तथा तथा व्यप्रसितवती यथा हि मप्रति—

घ्नति मधुरमस्या कोकिले कर्णबाधा

समुदयति संधांशौ शोणता लोचनस्य ।

शुचिमुखी ने जब इस प्रकार कहा तब प्रभावती के हृदय की गाँठ गुल
गई, उसने कहा कि हे प्रियसरि, यदि त्विषी नियमपूर्वक पहले कामपराधीन
हूँ या करती हूँ तब यदि उनका दूसरे पुरुष पर अनुराग होगा तब तो सतीत्व-
भङ्ग होगा, ऐसा कह कर हँस दिया ।

सारण—(कौतुक से) उपनम तो बड़ा अच्छा है, इसके बाद क्या
हूँगा ?

भद्र—इसके बाद शुचिमुखी ने हँसकर कहा—ओ, मैं समझ गई, तुम
प्रद्युम्न पर अनुरक्त हो, तुमने आज तक अपनी मनोदत्ता को गुल रखा था,
वह व्यक्त हो गई, परन्तु मैं तुम्हें इस गहन कार्य में अक्षर ही नहीं
दूँ सङ्गी, हो सकता है अपने प्रातनपुत्रों के बल पर तुम दृग्मे सफल हो जाओ
यह भी संभव है कि न भी सफल होओ ॥ ३१ ॥

इस प्रकार सब अनुर दूती ने इन्द्र की सुवशीति को उम्मीदित करते हुए
वैशा प्रयत्न किया कि अब, कोदल की मधुर आवाज से उसके काम बाधा का

अपि हृदयनिदाघोद्दाहमेवाप्यमाणः

प्रगुणयति मृणालस्यूतशैवालजालः ॥ ३२ ॥

ततः पुनरद्यात्रैव ते विदग्धमा समागताः सन्ति ।

सारणः—(सानुशयम्) वअस्स कित्ति उण एत्तिओ पवन्धो पसारि-
अदि । उज्जुअं उजेय किण्णपज्जुण्णो वज्जणाहस्स णिग्गहे णिउज्जीअदि ।
(वयस्य, किमिति पुनरेतावान् प्रबन्ध. प्रसार्यते, अजुकमेव किन् प्रद्युम्नो
वज्रनाभस्य निग्रहे नियुज्यते ।)

भद्रः—विमूढोसि, न सल्वेवमेवाक्रम्यते वज्रपुरम् ।

सारणः—तदो किं ? (ततः किम् ?)

भद्रः—

वीरवर्मविधुरेण केनचित्

कैतवेन दनुपुत्रपत्तनम् ।

कः प्रवेशयतु केशवारमजं

स्मारमोहनमहास्त्रमन्तरा ॥ ३३ ॥

तदेहि यावत्कुमारागारमुपगत्यावगच्छामि शुचिमुख्या विलिख्यापिते

अनुभव करते हैं, चन्द्रमा के उदित होते ही उसके नयन लाल हो उठते हैं,
मृणाल मे गुंथे हुए शैवाल भी उसके शरीर पर डाले जाने पर हृदयदाह ही
उत्पन्न करते हैं ॥ ३२ ॥

वहाँ से वे पक्षी आज यहाँ आए हुए हैं ।

सारण—(पश्चात्ताप के साथ) मित्र, इतना प्रबन्ध क्यों किया जा
रहा है, सीधे सीधे प्रद्युम्न को वज्रनाभ के ऊपर आक्रमण करने को क्यों नहीं
कह दिया जाता है ?

भद्र—तुम मूर्ख हो, वज्रपुर पर यों ही आक्रमण नहीं किया जा सकता है ।

सारण—तब फिर क्या होगा ?

भद्र—वीरजन विरुद्ध किसी प्रकार के छल से कुमार प्रद्युम्न को वज्रपुर में
कन्दर्प मोहन मन्त्र के अतिरिक्त कौन प्रविष्ट करा सकता है ॥ ३३ ॥

अत आओ, कुमार के आवास में चलकर पता लगावें कि शुचिमुखी द्वारा

सारण — एरण्णेदम् । (एव न्विदम् ।)

भद्र — (निरूप्य) अहो दुर्निवारता कामकार्मुकप्रहारस्य, यत्प्रहर्त्तार-
मपि लक्ष्यीकरोति । तथाहि—

अन्तश्चिन्तावहारं कथयति वितथम्मारिताम्मेरनेत्रं
म्फायान्न श्वासमालामलिनितदशनोद्द्योतमेतस्य वक्रम् ।
किञ्च म्माग विकारं चिदलितकदलीगर्भकाण्डातिपाण्डु
द्रूते बाधासमाधाधिकूलमावरलोक्म्पलोल कपोल । ३५ ॥

अपि चास्य—

अनाकलितनीरसं किमपि मन्दमालोकितं
पर विधुग्निताघर श्वसिनमुद्ध्युरं सर्पति ।
पुन पुनरुक्षीरित प्रतिपदं पुरागामिना
विरेण चरणार्पणे भवति वा नवोपक्रम ॥ ३६ ॥

(प्रत्यक्षवदाकारो लक्ष्य बद्ध्वा)

विजितजगतीयोपिद्रुत्नं त्वमेव जगत्त्रये
किमपि वचसा पारे पुण्य प्रभावति तावकम् ।

सारण— यही बात है ।

भद्र— (देखकर) आश्चर्य कामबाणो की दुर्निवारता पर जो प्रहार करने
वाले को भी अपना लक्ष्य बनाते हैं क्योंकि— व्यर्थ पैली हुई आस बता रही है
कि भीतर चिंता प्रवेश कर गई है बही हुई आस से इसके मुह की कान्ति
मलिन कर दी गई है कटे हुए कदली काण्ड की तरह पाण्डु तथा कम्पमान
इसके कपोल बताते हैं कि बाधा का समाधान नही हो पा रहा है ॥ ३५ ॥

और इसका—

अस्पृष्ट नीरस देखना है, अधर क मलिन बनानवाला दबास है, बारबार
कहने पर आगे चलन पर भी यह आगे की ओर कभी पैर उखाता कभी न
भी उठाता है ॥ ३६ ॥

(प्रत्यक्ष की तरह आकाश की ओर देखकर) हे प्रभावति समस्त ससार
की रमणीयता को पराजित करनेवाली स्त्री तूमही हो, तुम्हारा पुण्य बाणी

नवजलधरस्निग्धश्यामं घण्डुर्लवलीफलं
तुल्यितुमलं जातं यस्याः कृते नु मनोभुवः ॥ ३७ ॥

तत्सखे सारण, सुधर्मासुपगत्य देवराजगोचरीक्रियतामेतावान्
चृत्तान्तः ।

सारण.—जं वअस्सो वाहरदि त्ति । (निष्क्रान्तः) (यद् वयस्यो
व्याहरति ।)

भद्र — अहमित प्रमदवनं प्रविशतः कुमारस्य समीपमुपसरामि ।

(इति परिक्रामति)

(ततः प्रविशति प्रतीहारेणोपदिश्यमानमार्गो यथानिदिष्ट कुमारः प्रदुग्धः)

कुमारः—(सचिन्तम्) निविवेकतानुरागस्य. यतः—

किं जातु घञ्जनगरेऽप्यपरे विशग्नि
दूरे सरोरुद्वदशः प्रणयप्रसङ्गः ।

से परे है, क्योंकि कामदेव ने भी तुम्हारे लिये अपने नवजलधर-श्याम शरीर
को लवलीफल की तरह पाण्डुवर्ण कर रखा है ॥ ३७ ॥

अतः सखे सारण देवसभा में जाकर यहाँ तक के समाचार से देवराज को
अवगत करा दो ।

सारण — मित्रवर की जैसी आज्ञा । (जाता है)

भद्र—मैं यहाँ से प्रमदवन में प्रवेश करते हुए कुमार प्रदुग्ध के पास
चलता हूँ ।

(आगे चलता है)

(प्रतीहार द्वारा निदिश्यमान-मार्गं कुमार प्रदुग्ध
का यथानिदिष्ट रूप में प्रवेश)

कुमार—(सचिन्तभाष से) प्रेम कितना निविवेक होता है ? क्योंकि—
क्या वयस्यपुर में दूसरे लोग पैठ सकते हैं ? फिर कमलनयनी प्रभावती के

वाञ्छामि तामहमथापि मनोरथानां

पन्थाः प्रसर्पति समे विषमे समानः ॥ ३८ ॥

(इति परिक्रामति)

कुमार — (उपविश्य) गान्धारि, चित्र चित्रम् ।

प्रतीहारी— (चित्रमुपनीय दर्शयति)

कुमारः— (विलोक्य)

ध्वान्तश्यामलकान्तकुन्तलचयं स्फीतायताक्षिद्वयं

शोणस्निग्धतराघरं भुजलतालीलादतीयाकरम् ।

उत्तुङ्गस्तनमुग्धमध्यमुदितध्रोणीकमूरुद्वयी-

रम्भावद्धसरोजसुन्दरपदं निर्माणमेणीदृशः ॥ ३९ ॥

(चिरञ्च निर्वर्ण्य)

नियतयिह तनीय नस्ति मध्यो यदत्र

स्मरलिखितमिधैषा रोमलेखा प्रमाणम् ।

स्फुटमथ विरुणद्धि स्फीतकाभ्तेः समीप

स्थित चिकुरतमस्त्वं चन्द्रमस्त्वं मुखस्य ॥ ४० ॥

प्रणय की बात कैसी ? ऐसी स्थिति में भी मैं उसे चाहता हूँ । मनोरथ का मार्ग सम तथा विषम में समान नहीं हुआ करता है ॥ ३८ ॥

(आगे चलना है)

कुमार— (बैठकर) गान्धारी चित्र दो चित्र ।

प्रतीहारी— (चित्र लाकर दिखलाती है)

कुमार— (देखकर) इस सुन्दरी का निर्माण अति विलक्षण है, अन्धकार-सदृश श्यामल रमणीय इसके बाल हैं, लाल लाल ओठ हैं, बाहु रूप लता के पत्र सदृश हाथ हैं, उँचे स्तन से रमणीय मध्य, जङ्घारूप कदली स्तम्भ में लग्न कमल सदृश पैर हैं ॥ ३९ ॥

(देर तक देखकर)

निश्चय ही इसकी पतली कमर विद्यमान है, उसकी सत्ता में कामदेव के लेख की तरह दोखनवाली रोमरेखा ही प्रमाण है । बाल अन्धकार हैं, फिर वे मुखचन्द्र के पास कैसे विद्यमान हैं, यह बात परस्पर विरुद्ध लग रही है ॥४०॥

(रूपातिरेक निरूप्य) अहह,

चैत्रीचन्द्रद्युतिमतितरां दूरत कारयित्वा
जित्वा जाम्बू दनञ्जनासारसंभारशाभाम् ।
चित्रोन्नोता मदयति मन कान्तिरम्भोरुदाक्ष्या
साक्षादस्यान्नयनमिलने स्यान्नयत्तत्र विश्व ॥ ४१ ॥

(इति भूयोऽपि निर्भरानुरागमालोकयति)

भद्र — (विलोक्य) अहो चित्रार्पितायामपि मनोरथविधायामयमभि
निवेश ,

तथा ह्येतस्य—

विचित्र्य प्रागभ्या करचरणद्वक्पद्मानकर
निमज्ज्यान्त कान्तिप्रकरसरसो लाचनमुनि ।
समाक्रम्य स्वैरं लालतवलिसोपान्मधुना
ऽधिकृढा हृद्वेदी स्तनशिवसपर्या रचयति ॥ ४२ ॥

(साश्चयम्)

(स्व गौरव को देखकर) अहह !

चित्र में लिखित इस कमलनयनी सुन्दरी की कांति चैत्र की चादनी को परास्त करके और स्वर्ण कण की कमनीयता को भी विजित करके मेरे मन को मतवाला बना रही है इसके साथ साक्षात् नयन मिलन होने पर क्या होगा सो मैं नहीं समझ पा रहा हूँ ॥ ४१ ॥

(फिर स्नेहपूर्वक उसी चित्र को देखता है)

भद्र — (देखकर) अहो चित्रलिखित होने पर भी इस प्रियतमा के प्रति इनका इतना मनोवश है ।

देखो— इनके लोचनरूप मुनि न पहले हाथ पैर तथा नयनरूप कमल पुष्प धुतकर रख लिये फिर कान्ति सरोवर के अन्ध तर प्रवेश कर अवगाहन किया जन तर त्रिवलिरूप सपान प्राग से हृदयरूप वेदी पर आरोहण किया, अब वह लोचन मुनि स्तन स्वरूप शिव की पूजा कर रहा है ॥ ४२ ॥

(आश्चर्य भाव से)

चित्रमेतदनुचिन्तयन्नयं

चित्रतामतितामां किमागतः ।

यद्विचिन्तनघनो मनोलय-

स्तन्मयत्वमथवा किमद्भुतम् ॥ ४३ ॥

चारदुपसर्पामि (इत्युपसृत्य)

जयति जयति कुमार ।

कुमार — (अनाकलयन्) अहह ॥

अप्युज्झितोचितचमत्कृतिचेष्टितानि

चित्रे कयापि कलयोल्लिखितानि, तानि ।

अङ्गानि चेत्परिचितानि विलोचनाभ्या-

मेतावताप्यभिमतानि मयाजितानि ॥ ४४ ॥

साशसञ्च-

लीलादोलङ्गुजविसलतालोलचेलाल्ललान्त-

श्चश्चद्वक्षश्चपलकुररीशिक्षितानीक्षितानि ।

आस्यं ह्यास्यामृतसमुदयस्निग्धदन्ताधराग्तं

को जानीते कुवलयदश' कस्य नेत्रातिथि स्यात् ॥ ४५ ॥

यह प्रद्युम्न इस चित्र को देखते हुए क्या स्वयं चित्र बन गया है । चिन्ता करने से इसका मन अतिलीन हो रहा है, यह तन्मयता तो अद्भुत है ॥४३॥

जब तक समीप जाता हूँ । (समीर जाकर) जय हो, कुमार की जय हो ।

कुमार— (नहीं सुनते हुए) अहह ।

उचित चमत्कृतचेष्टा स रहित होने पर भी चित्र में इस सुन्दरी के अङ्ग इस चतुरता से अङ्कित हैं कि मेरी आँखों ने उन्हें उचित रूप में पहचान लिया है और इतन से ही मैंने अपना अभिमत प्राप्त कर लिया है ॥ ४४ ॥

(आशसा के साथ)

कौन जानता है कि इस सुन्दरी का लीलासञ्चालित मुञ्जलता से चञ्चल अञ्चल में किलकारिया भरनेवाला वसन्त स्थल चपल मृगी से शिक्षित दर्शन, और हास्य रूप अमृत से स्निग्ध अधरवाला मुख किसे देखने को मिलेगा ॥४५॥

भद्र.—

नेत्रातिथिस्त्वदन्यस्य रूपमेतादृशं कुतः ।

अम्भोजिन्यनुभावस्य भानुरेव हि भाजनम् ॥ ४६ ॥

कुमार —(विलोक्य) कथं वयस्यो भद्रः, वयस्य, इत आस्यताम् ।

भद्र.—(उपविशति)

कुमार —(आत्मगतम्) अहो सदादसमुग्धोऽभिलापः । तत्किमनेना-
चगतं स्यात् । भवत्वेवं तावत् । (प्रकाशम्) वयस्य, अपि तर्कयसि केयं
रामणीयकनिधि ? (इति चित्रफलकं दशयति)

भद्रः—(चिरं निरूप्य) अनया रामणीयकमुद्रया

नारायणादाविरभूत्स्वर्वशीकर्तुमुर्वशी ।

(अथवा) न सम्यगवधारयामि अभिनयनिर्माणरमणीयेयं मान्मथी-
सुकृतपरिणति, तेन हिः—

इयत्या रूपसम्परया संप्रतीम प्रभावतीम् ॥ ४७ ॥

भद्र— यह रूप तुम से अतिरिक्त किसे देखने को मिलेगा ? क्योंकि
कमलिनो के स्नेह का पात्र भानु ही होता है ॥ ४६ ॥

कुमार—(देखकर) वयो, मित्र भद्र हो मित्र, इधर बैठो ।

भद्र—(बैठता है)

कुमार—(स्वगत) यह अभिलाप तो कुछ इसके वयन से सुफल प्रतीत
होता है । तो क्या यह जानना है । अच्छा तब तक ऐसा होवे । (प्रकट)
मित्र, क्या तुम अन्दाज लगा सकते हो ? यह कौन सी सुन्दरी है ? (चित्र
दिखलाता है)

भद्र—(देरतक देखकर) इस सुन्दरता से तो—

उर्वशी स्वर्ग को वश में करने के लिये नारायण से पैदा हुई थी ।

अथवा— ठीक समझ नहीं रहा हूँ यह वन्दर्प के पुष्पों को परिणति-
स्वरूपा रमणी नवीन निर्माण रमणीय है, इससे तो मैं समझता हूँ कि—

इतनी रूपराशि के कारण यह प्रभावती ही है ॥ ४७ ॥

कुमार — आश्चर्यं कुतोऽयं तर्क ?

भद्र — श्रयताम् —

प्रसादितासीत् प्रियया सुरारे

पुरा चिरार्द्धहरा हरस्य ।

तस्या समासाद्दि वरस्वरूपया

कन्या किलेयं प्रतिमा रमाया ॥ ४८ ॥

सेव सन्प्रति सबलोकाभरणभृता सुन्दरीणा सीमन्वमणिरिति श्रूयते ।

कुमार — (उपरितोषम्) यत्सत्य त्वमेवास्य रहस्यावेदनस्य पात्रमसि प्रियवयस्य प्रभावत्या प्रतिकृतिमेतामुपनीतवती सुरलोकहृसी शुचिमुती ।

भद्र — (सबहुमानस्मितम्) सदृशमेवैतत् —

हरति सरसि ज्मथ्रेणिरेव द्विरेफ

तरलयति पयाधेरन्तरं चन्द्रिकैव ।

रमयतु कतमा त्वा धीरलाघण्यलक्ष्मीं

त्रिजगदुपरिभृता तादृशीमन्तरेण ॥ ४९ ॥

कुमार — आश्चर्य यह तक किस आधार पर ?

भद्र — सुनिये —

राक्षसराज की स्त्री ने अधनारीश्वर शिव की प्रेयसी पावती का प्रसन्न किया था उ ही से उसने वर रूप में लक्ष्मी की प्रतिमास्वरूपा वह कन्या प्राप्त की है । ४८ ॥

वह इन दिनों विन्वसुन्दरी तथा समस्त ससार का अलङ्कार हो रही है, ऐसा सुना जाता है ।

कुमार — (सन्तोष के साथ) सचमुच तुम्हें इस रहस्य को कहने के पात्र हो । सुरलोक हृसी शुचिमुखा प्रभावती का यह चित्र ले आई है ।

भद्र — (आदर तथा मुस्कुराहट के साथ)

कमलमाला ही भ्रमर को आकृष्ट करती है समुद्र के अन्तर को चाद्रका ही तरलिन करती है । हे धीर त्रिलोक रमणीया लावण्यलक्ष्मीस्वरूपा वैसी रमणी के सिवा कौन स्त्री तुम्हें आकृष्ट करेगी ॥ ४९ ॥

कुमारः—परन्तु वयस्य, कस्मिन्नपि सुजन्मनि यूनि जातानुरागतो प्रभावत्याश्चित्रन्यस्तेयमवस्था कथयति । तथा हीयम्—

अस्याम्भोजनिवेशनिश्चलदृशः सख्याः समुद्गीजनात्
पीनोत्तुङ्गकुक्षोत्तरङ्गविसिनीपत्रोद्गताङ्गदुयुतिः ।

शेते शैवलशालिशीतलशिलातल्पे तदल्पेतरः

कस्यायं कृतिनो वयस्य तपसामादकप्रसादोदयः ॥ ५० ॥

भद्र —(बिहस्य) प्रायस्तवैव तपसामय प्रसादः। यतस्तस्या हृदय-
ङ्गमा प्रियसखी शुचिमुखोति श्रूयते, चित्रञ्चैतत्तयोपनीतमिति ।

कुमार —उक्तमेतावत्तयापि मदनुयुक्त्या—

विघट्यकपटात्कथामपरथा मया प्रस्तुतां
प्रसञ्जयति पौषपं तव तटस्थनामाश्रिता ।

अथेतदुपवर्णने पुलकिता कपोलस्यखी

स्फुटं कथयति त्वयि स्मरनिवेशमेणीदृश ॥ ५१ ॥

कुमार—परन्तु मित्रवर, प्रभावती की यह चित्र लिखित अवस्था कह
रही है कि वह किसी युवक पर अनुरक्त है । क्योंकि यह—

मुख कमल पर निनिमेष नयनो से देखती हुई सखी पट्टा झल रही है,
स्तन पर निहित कमलिनो पत्र व्यजन वात से हिल रहे हैं, उसपर उसके अङ्गों
की द्युति चमक रही है, वह सेमार से पूर्ण शीतल शिलातल पर पड़ी हुई है, यह
किस भाग्यवान् युवक की तपस्या का उदय है ? ॥ ५० ॥

भद्र—(मुस्कुराकर) प्राय यह तुम्हारी ही तपस्या का परिणाम है । इसका
कारण यह है शुचिमुखी प्रभावती की हृदयसखी है और वही यह चित्र लाई है ।

कुमार—मेरे पूछने पर उसने भी इतना कहा था किः—

मैं दूसरी कथा कहती रहती हूँ तो वह उस कथा की कटी को तोड़कर
तटस्थभाव से तुम्हारी वीरता का प्रसङ्ग बना देती है, जब मैं तुम्हारी वीरता
का वर्णन करने लगती हूँ तो उसके कपोल रोमाञ्चित हो सठने हैं, वही
रोमाञ्चित कपोल उस मृगनयनी के तुम्हारे विषय में कामभाव का स्पष्ट
कथन करते हैं ॥ ५१ ॥

भद्र—(सबहुमानम्) उपपद्यते, प्रायश पौरुषेकपरितोषैव योपिनाञ्चित्तवृत्ति, विशेषेण तादृशवीरवशप्रसूतानाम् । तत्रापि च पराक्रमनिर्भर-पुरुषप्रकाण्डोपभोग्या प्रभावती, तन्न किञ्चित्पर वज्रपुरप्रवेशप्रकारपरि-कल्पनादवशिष्यते ।

कुमार—(सोत्कण्ठम्)

पतगनृपतिवन्नपत्य दूरा

दमृतमिवापहरामि तामिदानीम् ।

(सचिन्तश्च)

कथमय तदभङ्गुरं विरिञ्चे

वैचनकपाठपिधानमुत्क्षिपामि ॥ ५२ ॥

वयस्य सम्भवत्यत्रापि कश्चिदुपाय ?

भद्र—किन्न सभजति ।

प्राप्तु ररनान्यम्पुराशौ कराम्या

कीडन्नक येन चक्रे प्रकार ।

ईषत्प्राय कुर्वता सुर्वलभ्यं

भद्र—(सादर) यह ठीक है । प्राय स्त्रियों की चित्तवृत्ति पौरुषमात्र से परितोष प्राप्त करती है खास कर उस तरह के वीरवश में उत्पन्न स्त्रियों की । उसमें भी प्रभावती तो पराक्रमी पुरुष के ही उपभोग का पात्र है । वज्रपुर में प्रवेश के प्रकार की कल्पना के सिवा अब और कुछ रोष नहीं है ।

कुमार (उत्कण्ठित भाव से)

पतगराज ने जैसे दूर से चपट कर अमृत उड़ा लिया था उसी तरह उसे उड़ा लाऊ ?

(चिन्तापूर्वक) ब्रह्मा के उस अभङ्गुर वरदानरूप कपाट को कैसे दूर करू ॥ ५२ ॥

मित्र क्या इसका भी कोई उपाय हो सकता है ?

भद्र—क्यों नहीं हो सकता है ?

नक्र-समुदाय से व्याप्त सागर में हाथ से रत्नों को पकड़ने का उपाय जिघने कर दिया है उसके लिये अलभ्य वस्तु को आसानी से प्राप्त कराने का

चिन्तेनास्मिन्नमितो नाभ्युपायः ॥ ५३ ॥

मनागनाकलन हि मोहमावहति ।

ईदृशेषु दुरुद्देशेषु नीतिमार्गेषु मुह्यताम् ।

एकान्तसेवितस्वान्ता चिन्ता चिन्तामणीयति ॥ ५४ ॥

कुमार—एवमेतत्, परन्तु चिरमपि चिन्तयन् मनोरथपथेषु प्रस्वलत्येवान्तरात्मा ।

भद्र—सत्यमेतत्, केषुचित्स्वकीयेषु कर्तव्येषु बाहुल्येन विमुह्यन्ति महान्त, तदस्माभिरेवायमवधार्य कार्यक्रम । परन्त्वविज्ञाप्य वासुदेवं विचिन्तयितुमपि नेतादृश साहस समुत्सहामहे ।

कुमार—(सन्नोडम्) कथं ज्ञातव्यमेव तत्र भवता वासुदेवेनापि ।

भद्र—अस्त्यत्रापि वक्रता व्याहारस्य ।

उद्धेजयन्ति दैतेया देवानपि दिवानिशम् ।

तद्देवकार्यव्याजेन बोधनीयो महाहरिः ॥ ५५ ॥

उपाय करना कितना कठिन है ॥ ५३ ॥

थोड़ी देर समय में नहीं आने से घबराहट होनी है ।

इस तरह दुरुह कर्तव्यमार्ग में घबडाहट में पड़ने वालों के लिये एकान्त बैठकर चिन्ता करनाही सफ़्त उपाय है ॥ ५४ ॥

कुमार—यही बात है परन्तु चिरकाल तक चिन्ता करने पर भी मनोरथ पथ पर आत्मा फिसलती ही है ।

भद्र—यह बात सत्य है । साध करके कुछ आत्मकर्तव्य में बड़े लीन भी घबडा जाते हैं अतः हम लोगो को ही कार्यक्रम निर्धारित करना है । एक बात है कि वासुदेव को सूचित किये बिना इस तरह के साहसकार्य में चिन्ता करने का भी साहस नहीं करता हूँ ।

कुमार—(सलज्जभाव से) क्या यह बात वासुदेव को भी अतानी ही होगी ।

भद्र—इसमें भी उक्ति वचनता रहेगी ।

दैत्य लोग देवों को दिन रात तर्ज किया करते हैं, अतः वासुदेव को हम देव कार्य को व्याज बनाकर सूचना देंगे ॥ ५५ ॥

कुमारः—यथा जानासि । (ऊर्ध्वमवलोक्य) कथं गगनमध्यमध्यासुद्धो भगवानुष्णभानु , तन्नूनमेतावत्कालेन तानि हंसमिथुनानि वज्रनगरान्तःपुरदीर्घिकायामुपनिपतितानि भ्रमिष्यन्ति ।

ततः तस्याम्—

प्रत्येकं नलिनीदलावलितलच्छायाविनीतध्रमं
लीलोत्पातमृणालिकाकवलनव्याधूतचञ्चुपुटम् ।
तोयोत्तीर्णतटावतीर्णतरुणीमञ्जीरमञ्जुध्वनीन्
वद्वस्पर्द्धमघोऽनुकूत्रति कलं प्रायेण हंसीकुलम् ॥ ५६ ॥

भद्र—अहो निदाघसमयावपि शारदोऽयं तीव्रकरस्तिग्मकरः,
तथाहि—

माध्याह्निकैमिद्विरवद्विकरालकीरौ
फाण्डोत्करादिव परिञ्चलतः पतद्भि ।
अङ्गारकैरिदमपूरि जगत् किमन्यत्
तेजोऽपि नायनमिहायनमुज्जहाति ॥ ५७ ॥

कुमार—तुम जैसा उचित समझो । (ऊपर देखकर) क्यों, सूर्य आकाश के मध्य में आगये, निश्चय ही इनकी देर में वे हंस के जोड़े वज्रपुर की अन्तःपुर-दीर्घिकाओं में पहुँच चुके होंगे ।

तव उच्य दीर्घिका मे—

वे हंस के जोड़े नलिनी-दल की छाया में यकान दूर करेंगे, मृणाल उखाड़ कर षोच में डालेंगे और पानी में स्नानार्थ उतरती हुई रमणियों की मञ्जीर-ध्वनि से लय मिलाकर शब्द करेंगे ॥ ५६ ॥

भद्र—अहो, निदाघ के सूर्य से भी शरद्वनु का सूर्य अधिक तेजवाला होता है—क्योंकि—

मध्याह्निकालिक सूर्य के अग्निवदृश करो से जलने हुए दिशा रूप काष्ठ से निकलने वाले अङ्गारों से सघार परिपूर्ण हो रहा है, नयन का तेज भी चिलमिचल रहा है ॥ ५७ ॥

अपि च—

नीरावैर्षिहृगैस्तिरोहितगिरो निर्वातनि'स्पन्दना
मध्याह्ने मिहिरातपेन तरवस्तप्ता इवोन्मूच्छिताः ।
शोकोन्मादभरेण पादपतितास्तेषां तु जाया इव
च्छायाः सङ्कुचितोपतप्ततनव क्रोशन्ति सिल्लोरवैः ॥ ५८ ॥

कुमार.—त्रयस्य, माध्याह्निकी क्रियामनुतिष्ठाव' ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

केसरवीथी नाम प्रथमोऽङ्कः



और—

पक्षिगण नीरव हो रहे हैं, निर्वात होने से बुझ निश्चल हो गये हैं, ऐसा लगता है मध्याह्न में सूर्य किरण से सन्तप्त हो कर बुझसमूह मूच्छित हो रहे हो । उन मूच्छित वृक्षों की पत्नी सौ लगने वाली छाया उनके पैरों पर पड़ी है उनके शरीर सन्तप्त हैं, और वे सिल्लोरव के वृक्ष से आक्रोश कर रही हैं ॥ ५८ ॥

कुमार—मित्र, अब हम लोग मध्याह्न-कृत्य करें ।

(सभी का प्रस्थान)

केसरवीथी नामक प्रथम अङ्क समाप्त



द्वितीयोऽङ्कः

(वतः प्रविशति कञ्चुकी)

कञ्चुकी—(जरावैवल्य नाट्यम् , सनिवेदम्)

नेदीयस्यपि नेत्रमक्षमतमं क्षीणं श्रुतेः पाटवं-
घाघो विस्खलिताः स्खलन्ति गतयो भूयो वपुर्वेपते ।
चैरेतैर्व्यवहारभारमितरे मुञ्चन्ति सांसारिकं
मादृक्त्तैरधिकाधिकं व्यवहरन्नन्त पुरे सीदति ॥ १ ॥

अपि च—

राक्षामाक्षामहमुद्वहं नित्यशा मूर्ध्नि गुर्वी
तरसघर्षादिव कचभरः सर्व एव व्यरसीत् ।
भूयोभूयः प्रतिनृपघ्नो नम्रतामाचरन्मे
कायोऽभ्यासादिव समभघद् वक्र एव क्रमेण ॥ २ ॥

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—(बुढ़ापे की असमर्थता का अभिनय करता हुआ)

(विरक्त भाव से)

समीप स्थित वस्तु मे भी नयन दर्शन सामर्थ्यहीन हो रहे हैं, वाणी लडखडा रही है, चाल भी लडखडाने लगी है, शरीर कांपता है, जिस स्थिति मे दूधरे लोग साधारण भार को उतार फेंकते हैं, मेरे जैसा आदमी उस दशा मे अन्त पुर का पूरा भाग बिर पर उठाये हुए कष्ट उठाना रहता है ॥ १ ॥

और—मैं सदा से राजाओ की आज्ञा को बिर पर उठाता रहा हूँ, उसी संघर्ष मे मेरे सारे केश गिर गये, राजा के प्रत्येक आदेश पर अपनी नम्रता प्रदर्शित करते रहने के कारण झुकने के अभ्यास से मेरा शरीर, बक्र होजा गया ॥ २ ॥

(समन्तादवलोक्य) अहो देवस्य दानवपतेरप्रतिहतानि प्रभुत्वानि,
तथाहिः—

एते भूपतयो भुजागलजिताः कारागृहे शेरते
सेवायै स्पृहयन्ति सन्ततमहो दीना दिशामीश्वराः ।
किञ्चान्यत्पुरुहूतदूतनिवहाः सन्धानयद्दस्पृहाः
प्राप्ता न प्रभवन्ति हन्त नगरी-सीमा समुल्लङ्घने ॥ ३ ॥

कि बहुना—

केलिधमस्विन्नतमं समन्तात्
संघीजयन्तोऽपि शरीरमासाम् ।
प्रासेन नान्तःपुरसुन्दरीणां
चेलाञ्जलं सञ्चलयन्ति घाता. ॥ ४ ॥

अपि च—

केलीशिक्षण्डिताण्डघपण्डितपटहा यदृच्छया जलदाः ।
परिपूरयन्ति चारिभिरुद्यानलतालघालघलयानि ॥ ५ ॥

(चारों ओर देखकर) अहा, दानवराज का प्रभुत्व अव्याहत है—
देखिये—

बाहुबल से पराजित ये राजागण कारागार में पड़े हैं, दिक्पालगण सेवा करने को लालायित रहते हैं और कितना कहा जाय, ये इन्द्र के गुप्तघर पता लगाने के लिये व्यग्र रहते हैं फिर भी दैत्यराज की नगरी की सीमा पार करने में भी समर्थ नहीं हो पाते ॥ ३ ॥

अधिक क्या कहें,

रतिभ्रमजनित स्वेद से आर्द्र शरीर पर हवा करने वाले यह वामुदेव भय के मारे दैत्यराज के अन्त पुर की स्त्रियों के वरुप्रान्त को सञ्चालित तक नहीं करते हैं ॥ ४ ॥

और—यह मेघगण दैत्यराज के केलीमयूर को नृत्यतत्पर करने के लिये वाद्य वा काम करते हुए अपने पानी से इनके उद्यान में अक्षरिपद पत्ताओं के आलवाल को पूर्ण किया करते हैं ॥ ५ ॥

(विस्मरणमभिनीय) कुतोऽस्मि प्रचलितः ?

(सखेदम्)

अदृष्ट चिकुरा इवातिविरलाः श्वासा इव कष्टमाकृष्टाः ।

स्मृतिरन्तः स्थविराणां गतिरिव कतिधा न विस्मृतति ॥ ६ ॥

(चिरेण स्मृत्वा) आं, आज्ञापितोऽस्मि कश्यपाश्रमात् प्रतिनिवृत्तेन महाराजव्रजनाथेन, यथा, वात्स्यायन, जानीहि देवी वसुमती किञ्चयापारेति ? तदेतदन्तःपुरद्वारम्, यावत् प्रविशामि । (प्रविष्टकेन पुरोऽवलोक्य) किमियं सैरन्ध्री सुवदना इत एवाभियर्तते ?

(प्रविश्य)

सुवदना—अज्ज वन्दामि । (आर्यं, वन्दे ।)

कञ्चुकी—भद्रे ! कल्याणिनी भूयाः । अथ सुवदने, जानासि किञ्चयापारा देवी वसुमती ?

सुवदना—(निःश्वस्य) अज्ज जाणामि । (आर्यं, जानामि ।)

(भूलने का अभिनय करते हुए) मैं कहाँ चला या ?

(खेद के साथ)

हाय, मेरे बालों की तरह विरल, श्वास की तरह कठिनाई से खींची जाने वाली स्मृति मेरी बाल की तरह बार बार स्तब्ध होती रहती है ॥६॥

(विरकाल पर याद करके) हाँ, कश्यपाश्रम से लौटे हुए महाराज ने मुझे आज्ञा दी थी कि वात्स्यायन, पता लगाओ कि देवी वसुमती क्या कर रही हैं ? यही तो अन्तःपुरद्वार है, जब तक प्रवेश करता हूँ । (प्रवेश की मुद्रा में—आगे की ओर देखकर) क्या यह परिचारिका सुवदना इधर आ रही है ?

(प्रवेश करके)

सुवदना—आर्यं, प्रणाम करती हूँ ।

कञ्चुकी—भद्रे, कल्याण हो, भरी सुवदने जानती हो देवी वसुमती इस समय क्या कर रही हैं ?

सुवदना—(निःश्वस छोड़कर) आर्यं, जानती हूँ ।

कञ्चुकी—आः किमयमतिविह्वलयो व्याहारः ?

सुवदना—किण्ण जाणादि अज्जो भट्टिदारिआए पहावदीए अदि-
सहन्तो सरीरसन्तापो सअलं उज्जेव अन्तेउरं परिहअदि । (किन्न जाना-
त्यार्यो भत्तुं दारिकायाः प्रभावत्या अतिमहान् शरीरसन्तापः सकलमेवान्त पुं
परिभवति ।)

कञ्चुकी—हुं । कथितमेव मे प्रभावती प्रियसख्या तरलिकया,
यया हि—

सुता शैवलशीतलेऽपि शयने लिप्ता चिरं चन्दनै-
रान्दोलद्वलयावलीभिरभितोऽध्यालीभिरुद्धीव्यते ।
तापोऽस्यास्तदपि प्रकम्पितहृदो हा दीप्तदाघायते
को हेतुः किमिद्वोचितं न खलु तज्जानाति मादृग् जनः ॥ ७ ॥

सुवदना—एव ण्णेदम् , ण जाणीअदि को एथ हेदू । कि उण
ववसिदव्वं, विआघणिटाण अजाणिअ अणवसरो पदीआरस्स । (एवं
न्विदम् , न ज्ञायते कोऽत्र हेतुः । कि पुनव्यंबसितव्यं व्याधिनिदानमज्ञात्वाऽनव-
वसरः प्रतीकारस्य ।)

कञ्चुकी—अहा, यह व्यथापूर्ण उद्गार कैसा ?

सुवदना—क्या आप नहीं जानते हैं कि राजपुत्री प्रभावती का महान्
शरीर-सन्ताप समस्त अन्त पुर को तबाह किये हुए है ।

कञ्चुकी—हाँ, प्रभावती की प्रिय सखी तरलिका ने मुझसे कहा
था कि—

प्रभावती सेमार से शीतल शयन पर पड़ी हुई चन्दन से लिप्त होकर
चञ्चलवल्या सखियों द्वारा वीजित होती रहती है फिर भी उसका हृदय सदा
कम्पित होता रहता है और सन्ताप प्रदीप्त दाघानल की तरह बढ़ता ही जाता
है । इस सन्ताप का क्या कारण है और इस स्थिति में क्या करना ठीक है
इन सारी बातों को हमारे जैसा आदमी क्या जान ॥ ७ ॥

सुवदना—यही बात है । पता नहीं चलता है कि इस सन्ताप का क्या
कारण है ? व्याधि के निदान को जाने बिना प्रतिहार करना कठिन होता है ।

कञ्चुकी—अयि किमन्यन्निदानम् ?

निशि निशि मद्यन्ति स्फीतशीतांशुभास

प्रतिलतिक्रमधीरा सञ्चरन्ति द्विरेफा ।

किमधिकमविनीते यौवने जृम्भमाणे

रतिरमणशराणां दुनिवार प्रहार ॥ ८ ॥

सुवदना—साहु सभावित्, मए उण अन्तेउरवुत्तन्तो त्ति तुम्हाण पि पुरदो न फुड भणित् । (साधु सभावितम् , मया पुनरन्त पुरवृत्तात् इति युष्माकमपि पुरतो न स्फुट भणितम् ।)

कञ्चुकी—अयि रफुन्मप्यतिनिगूढमन्त पुरवृत्तमस्मादशेषु, पश्य—

पश्यन्तोऽप्यनिरीक्षिण शृण्वन्तोऽपि न शृण्वन्ति ।

न स्मरन्ति स्मरन्तोऽपि नृपान्त पुरचारिण ॥ ९ ॥

तत्सुपदने, न किञ्चिदत्याहितम् , यतो देवेन स्वयवरेति स्वापि ताया भर्तृदारिकाया मनोरथस्थान युवानभयधार्य देव्येय प्रमाणमिति ।

सुवदना—हिअअङ्गम ज्जेअ देवीए आअकरदि अब्बो किं उण एद

कञ्चुकी—अरी और क्या निदान होगा ? प्रत्येक रात्रि मे खुली चादनी मादकता लाती है, अधीर भ्रमर हर लता पर सञ्चार करते हैं, और क्या कहा जाय जवानी के आने पर कामबाण का प्रहार दुनिवार हो उठता है ॥ ८ ॥

सुवदना—आपने ठीक अनुमान किया है । हमने तो आप से भी इछ लिये नही कहा था कि यह अ त पुर का रहस्य वृत्तात् है ।

कञ्चुकी—अरी अतिगुप्त अन्त पुर वृत्तात् भी हम लोगो के ज्ञात रहता है, देखो—राजाओ के अन्त पुर के कमचारी देखकर भी नहीं सुनते एव याद करके भी नही याद करते हैं ॥ ९ ॥

इसलिये सुवदने, सबडाने की कोई बात नहीं है । महाराज ने प्रभावती को स्वयवरा करार दिया है, फिर राजकुमारी के अभिलषित युवक का पता लगाकर देवी अनुकूल व्यवस्था करने मे समर्थ है ।

सुवदना—अभिलषित युवक का ही तो देवी पना लगा रही हैं । इधी

उजेव जाणिदु देवीए भट्टिदारिआसआसं एक्कदिअह अह अणुप्पेसिदा ।
(हृदयङ्गममेव देव्या बालक्षयते आर्यं, किं पुनरेतदेव ज्ञातु देव्या भर्तृदारिकाव-
काशमेकस्मिन् दिवसेऽहमनुप्रेषिता ।)

कञ्चुकी—ततस्तत ।

सुवदना—तदो मए गदुअ णलिणीदलसअणुञ्चत्तमाणतणुलदाए
ताए पासे उअविसिअ कुलसिलवत्तविज्जाहिं सणाहा (लज्जा) के के ण
पत्थूदा दाणवकुमारा त क्वु सोऊण तक्खण विठणउद्धमाणवेअणा-
विआरवहुअरविच्छ्रद्धिदसुञ्जा मीलत्तणेत्तणीलुप्पला पहायदी सभमविसं-
ठुलेहि सहीअणेहि भक्ति आआच्छिअ सहि पहावदि णम्भणामि सहि
पहायदि त्ति विलपिअवअणचन्दम्मि चन्दणसलिलचुनुणहिं आसि-
ञ्चिअ णअणुप्पलम्मि कप्पूरचूणणाइ णिकिरविअ अङ्गेषु अ सीअलत्तलो
क्खिदकमलिनीपत्तेहि वीज्जिअ कह कह पि पतियोधिना । (ततो मया
गत्वा मलिनीदलशयनोद्धतं मानतनुलतायास्तस्याः पार्श्वे उपविश्य कुशलोत्त-
विद्याभि सनाया के के न प्रस्तुता दानवकुमारा । तत्सञ्जु श्रुत्वा तस्मिन् द्विगुण-
वधं मानवेदनाविकारबहुलविच्छुरितशुचा मीनेत्रनीलोत्पला प्रभावती सभ्रमवि-
सष्टुलै सखीजनैर्ज्ञातव्यागत्य सखि प्रभावति, ननु भणामि सखि प्रभावतीति विल-
म्बितवदनचन्द्रे चन्दनमलिलबुडुवैरासिच्य नयनोपरले कपूरचूणानि निक्षिप्य
अङ्गेषु च शीतलजलोक्षितकमलिनीपत्रैर्वीजयित्वा कथं कथमपि प्रतिबोधिता ।)

का पता लगान के लिये तो देवी ने एक दिन मुझ राजकुमारी के पास
भेजा था ।

कञ्चुकी—तब क्या हुआ ?

सुवदना—इसके बाद मैं कमलदलपर करघट्टे लेनी हुई उस राज-
कुमारी के पास जाकर बैठी, कुछ-शीत तथा विद्या से युक्त किन २ राजकुमारों को
मैंने चर्चा में उपस्थित नही किया परन्तु उस पर उसकी वेदना दुगुनी हो
उठी, वह जोशकुल हो गई उसकी आँखें मुँद गइ, सखियाँ पबझाकर दौड़ीं,
सखियों ने प्रभावती का नाम लेकर बारबार पुकारा, लटकते हुए चेहरे पर
पानी के छींटे दिये आँखों में कपूरचूण डाला, शरीर पर शीतल जल से सिक्त
कमलदल से पट्टा किया, तब किसी प्रकार वह होउ म आई ।

कञ्चुकी—(सचिन्तम्) हन्त, महतोऽनर्थस्यायमङ्कुरप्ररोह ।

सुवदना—(सविषादम्) किं कखु एद भणिद् भादि । (कि खत्वेतद् भणित भवति ।)

कञ्चुकी—अयि सरले, बहुदशिताया सहचरोचिरजीवितेय मुखर-
यति, पश्य, नूनमेव कस्मिन्नपि त्रिपक्षपक्षवृत्तिनि परोक्षानुरागो भट्टदारि-
काया पितृपक्षानुसारिषु महासुरङ्कुमारेषु चित्तवृत्तिमन्यथयति । नहि
मिहिरमरीचिप्रणयपरिचयादपरमपि किञ्चित् समुदितेषु सकललोक-
लोचनानन्दमन्दिरेषु चन्द्रकरकन्तलेषु विनिमीलयति कमलपनीम् ।

सुवदना—तदो किं (तत किम् ?)

कञ्चुकी—अयि किन्न जानासि, प्रभातत्या त्रिभुवनातिशयिता रूप-
सम्पत्तिनेतादृशञ्च परोक्षानुरागमवगत्यास्या प्रणयिना जीवितव्यये-
नापि सगमाय यतनीयम् ।

सुवदना—अञ्ज, तदो यि कि, सअरराज्जेय भट्टिदारिआ तस्सञ्जेव

कञ्चुकी—(चित्तित भाव से) यह तो बड़े भारी जनप को जड़ है ।

सुवदना—(विषादपूर्वक) आप क्या कह रहे हैं ।

कञ्चुकी—अरी सरले, बहुत दिनों तक जीन के साथ मैंने बहुत कुछ
देखा है जो मुझ कहने को प्रेरित कर रहा है । देखो—निश्चय किसी शत्रु-
पक्षीय युवक पर राजकुमारी का परोक्ष अनुराग है जो पितृपक्षवर्ती अमुर—
कुमारो पर उसकी चित्तवृत्ति को टिकने नहीं द रहा है । सूयाकरण सपकं के
अतिरिक्त और कोई वस्तु सभी लोगों को आँखों को आनन्दित करनेवाली
चन्द्रिका के सामने कमलकुल को धालें बन्द करने को प्रेरित नहीं कर
सकती है ।

सुवदना—इससे क्या ?

कञ्चुकी—अरी क्या तुम नहीं जानती है कि प्रभाततो के अशौकिक
सौन्दर्य तथा इस प्रकार के परोक्षानुराग को देखकर उसका प्रणयी युवा
जानगवाकर भी सगम का प्रयास करेगा ।

सुवदना—उससे भी होगा क्या ? राजकुमारी तो स्वयंवरा है हो, उसी

हिअअट्टिअस्स वरस्स देव्वेण पडिवादणीअत्ति । (बायं, ततोऽपि किम्, स्वयंवरैव भवृदारिका तस्यैव हृदयस्थितस्य वरस्य देवेन प्रतिपादनीयेति ।)

कञ्चुकी—आ किमेवमुदीर्यते ?

चरमशिखरिशीर्षे नोदितः स्निग्धधामा
सघनगिरिस्समुद्रा नापवृत्ता घरित्री ।

कथय कथमिवायं मानिनीमौलिररनं

धितरत्तु परपक्षे कन्यकां घञ्जनामः ॥ १० ॥

सुवदना—ना परोप्परविरुद्धं वस्तु एद् णहु एआरिसीओ कुलकण्ण-
आओ अण्णस्सि हिअअ णिवेसिअ अण्णपरिणीटाओ होन्ति । (वत्त
परस्परविरुद्ध खत्विदम्, न खत्वेतादृश्य. कुलकन्यका. अन्यस्मिन् हृदयं निवेश्य
अन्यपरिणीता भवन्ति ।)

कञ्चुकी—अतएव दुरवधारणीयोदर्कमेतत् । वत्से, त्वया चातिनिगृढ-
मेतदन्त'पुरकौलीनं धारणीयम् ।

सुवदना—ण केवल एत्थ अज्जस्स णिष्ठीओ किं चण महाराअदारुण-
त्तुणसङ्घिदाए देवीए वि । (न केवलमत्रायंस्य नियोग. कि पुनर्महाराजदाण-
स्वसङ्घिताया देव्या अपि) ।

हृदयस्थित वर को महाराज राजकुमारी सर्व देवे ।

कञ्चुकी—आ, ऐसा क्यों कहती हो, अभी अस्ताचलपर से चन्द्रोदय
नहीं हुआ है, और न अभी धन पर्वत तथा घागरों से सुक्त यह पृथिवी हो
उलट गई है । अभिमानियों में अग्रगण्य बज्रनाभ अपनी कन्या को विपत्ती
वर के हाथों में किस प्रकार सर्व देवे, तुम्ही कहा ॥ १० ॥

सुवदना—यह बात परस्पर विरुद्ध है । ऐसी कुलकन्याएँ दूसरे को
दिल देकर तीसरे के हाथों नहीं सर्वायी जाती हैं ।

कञ्चुकी—इसीलिये तो इसका पत्र अनिश्चित है । बेटी, तुम इस
अन्त'पुरापवाद वृत्त को पूब छिनाकर रखना ।

सुवदना—यह केवल आप का ही आदेश नहीं है, महाराज की कठोरता
से शाश्वत देवी का भी यही आदेश है ।

कञ्चुकी—तदावेदय किंव्यापारा देवी ?

सुवदना—कइमो वि रणो कीडाकमलिनीसओवआसण्णसीअला-
मन्दचन्दमासीलावेदिआसणाह माहवीमण्डघट्टिदाए भट्टिदारिआए सुह
उद्धल करट्टु देवी गता आसि । (कस्मिन्नपि क्षणे क्रीडाकमलिनी सरोवरा-
सन्नशीतलामन्दचन्द्रम शिलावेदिकासनाथमाधवीमण्डपस्थिताया भर्तृदारिकायाः
सुसप्रश्न कर्तुं देवी गताऽऽसीत् ।)

कञ्चुकी—ततस्तत ?

सुवदना— तदो तत्थन्तरेसञ्जेव दिव्वहसउल इन्दिअसमूह पिअ चित्त-
वतीए सुइसुहीए भग्गतग्गकुदो वि आअच्छिअ तहिं जेव उवणिअडिअं तकरण
उण दीहसन्दावट्टुम्मिअसरीराए भट्टिदारिआए भत्ति उट्टिअ अन्तरानन्द-
परिधुम्मिरतारएहि लोअणेहि पलोइअ इदो एट्टु पिअसहि त्ति सुइसुहि
सदाविअ तक्काल खण्डिदोवणीद विस्िणीयत्तासणे उअवेसिअ सहि बलअ
परिसन्ताविदासि त्ति आसिच्चिदा चन्दणपकिलेहिं वप्पूरसलिल चुलुएहिं
उवणीदाह अ कोमलसेवालमुणालकुराइ । (ततस्तत्रातरे तदेव दिव्यहस-
कुलम् इन्द्रियसमूह इव चित्तवत्या शुचिमुख्या मागंमाण कुतोऽप्यागत्य तत्रैवोप-
निपतित तत्क्षण पुनर्दीर्घसन्ताप दु स्थित शरीरया भर्तृदारिकया घटित्युत्पाद्य
अन्तरान दपरिपूणमानतारर्षैर्लोचनै विलोक्य इत एतु प्रियसखीति शुचिमुखी

कञ्चुकी—अच्छा यह तो बताओ देवी क्या कर रही हैं ?

सुवदना—कुछ समय हुआ है कि क्रीडाकमलिनीसरोवर के पास वत्तमान
शीतल चन्द्रशिला से युक्त माधवी मण्डप में अवस्थित राजकुमारी से कुशल-
पूछने के लिये देवी वहाँ गई थीं ।

कञ्चुकी—उसके बाद ?

सुवदना—उसके बाद वहाँ दिव्य हसकुल उतरे जो चित्तवती शुचिमुखी
नामक हरी के इन्द्रिय समूह से लगते थे वह हसदल कुछ खोजते खोजने
वहाँ आ गया था । तत्काल राजकुमारी ने शट से उठकर—यद्यपि राजकुमारी
के अङ्ग दीर्घ सन्ताप से कष्ट में थे तथापि—आन्तरिक आनन्द से घूमती
कनीनिका वाले नयनों से उन्हें देखा, फिर राजकुमारी ने प्रियसखी शुचिमुखी,

शब्दायित्वा तत्कालघण्टितोपनीतबिखिनीपत्रासने उपवेश्य सखि बलवान् परि
सन्तापितासीति आश्रिता च दनपङ्क्तिलैः कर्पूरसलिलचुतुकैः, उपनीतारण कोमल
शैवालमृणालाङ्कुरा ।)

कञ्चुकी—(सबहुमानम्) अस्त्येव हृदयङ्गमा सखी शुचिमुखी प्रभा-
वत्या । पश्य,

अन्त स्थिरानुरागो वा यदि वा कार्यगौरवम् ।

एतदेव पराधीनं जनं जनयति ह्ययम् ॥ ११ ॥

सुवदना—अजन, कज्जगोरवं वि सभावीअदि । (आयं, वार्यगोरव
अपि सभाभ्यते) ।

कञ्चुकी—(अनिरोधम्) अस्त्विदमपि कथितप्रायम् , ततस्तत ।

सुवदना—तदो तरलिका मेत्त परिवारा पहायदी वीसम्हजम्पिदेहि
अत्ताणअ पिणोदेत्ति त्ति तक्खण ज्जेव ताए सआसादो उट्टिअ विहार-
मन्दिर आअच्छिअ देवी उअरिअलिन्दए आरूढत्ति । (ततस्तरलिकामात्र-
परिवारा प्रभावती विसम्भत्रलितैरामानं विनोदयतीति तत्क्षणमेव तस्या
सकाशादुत्थाय विहारमन्दिरमागत्य देवी उपर्यलिन्दके आरूढेति ।)

इधर बाओ कह कर शुचिमुखी को पुकार लिया, तत्काल तोडहर लाये गये
कमलपत्ररूप आसन पर उभे बैठाया, फिर कहा कि तुम्हें बहुत मानाप का
अनुभव हो रहा है ऐसा कहकर राजकुमारी ने चन्दन कर्पूर मिश्रित जल से
उभे सीवा और कोकिलमृणालसङ्घ स्नाने को दिये ।

कञ्चुकी—(सादर) शुचिमुखी तो प्रभावती की प्रियवती है ही ।
देखो—हृदय में स्थिर अनुराग अपवा कार्य-गौरव यही ऐसी दो वस्तुएँ हैं जो
मनुष्य को पराधीन कर देती हैं ॥ ११ ॥

सुवदना—आप, कार्यगौरव तो है ही ।

कञ्चुकी—(रोक्ते हुए) जाने दो यह कथित वा ही है । इसके बाद ?

सुवदना—इसके बाद तरलिकामात्र के साथ प्रभावती बिचरत वार्ता-
लाप से अना मन बहणायै—ऐसा कहकर देवी उसके पास से उठकर विहार
मन्दिर में चली आई और ऊपर चढ़ गई ।

कञ्चुकी—तज्ज्ञातमेतावदावेद्यामि देवाय । त्वमपि समीहित सम्पा-
द्य । (इति निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः

(ततः प्रविशति विरहावस्थोपविष्टा प्रभावती शुचिमुखी-तरलिके च)

प्रभावती—(सोच्छ्वासानन्दम्) सखि, सचक उजेव तस्स महा-
भाअस्स इत्थ पाविदा तए मज्झ पडिक्किदी । (सखि सत्यमेव तस्य
महाभागस्य हस्त प्रापिता तथा मम प्रतिकृति ?)

शुचिमुखी—अयि कोऽयमप्रत्यय ? (सस्मितञ्च शरीरमस्याः
निदिशन्ती) किं बहुना—

प्रतिकृते प्रियपाणिसमागमं

तव शरीरमुदीर्यति स्फुटम् ।

सपदि सात्त्विकभावभरस्फुर-

उजाडिम जातमिदं कथमन्यथा ॥ १२ ॥

कञ्चुकी—अच्छा, जितना जान सका हूँ वह महाराज से निवेदित कर दू-
तुम भी अपने मन की करो । (दोनों का प्रस्थान)

(विष्कम्भक समाप्त)

(इसके बाद विरहावस्था में बैठी प्रभावती के साथ शुचिमुखी तथा
तरलिका का प्रवेश)

प्रभावती—(उच्छ्वास तथा आनन्द के साथ) सखि, क्या तुमने सचमुच
हमारा चित्र उस महाभाग के हाथ में पहुँचा दिया ?

(स्वेदादि सात्त्विक विकार प्रकट करती है)

शुचिमुखी—यह कैसा अविश्वास ? (मुस्कराकर) (उसके शरीर को
दिखलाती हुई) और क्या कहा जाय ।

तुम्हारा यह शरीर ही स्पष्ट कह रहा है कि तुम्हारा चित्र तुम्हारे प्रिय-
तम के पास पहुँच गया है । अथवा यह शरीर तत्काल सात्त्विक भावों के
उदय से जड़ क्यों हो गया है ॥ १२ ॥

प्रभावती—(लज्जते)

शुचिमुखी—किञ्च, प्रियसरि, न केवलं तत्रैव कृते प्रतिकृतेः कुमारहस्तप्रापणं किन्तु तत्तादृगनेक-सहस्रवासुदेवान्तःपुरदुर्लभिव-जन्मनो रुक्मिणीनन्दनस्य तस्यापि मनोरथोन्मादमेदुरित-भदन-वेदनावसन्नमनुपेक्षणीयं शरीरसौकुमार्यमिति ।

तरलिका—(आनन्दम्) पिअण्णो पिअण्णो । (प्रियन्नः, प्रियन्नः)

प्रभावती—(निःश्वस्य) समासासणं पि एदं णिब्बावेदि कन्दप्प-कप्पाणलजालावलीकजलिदाइं अङ्गाइं । (आसवाद्यनमप्येनन्निर्वाणसिं कन्दपं कत्वानलजवालावलीकवलितानि अङ्गानि ।)

शुचिमुखी—किमाश्वासनमात्रमेतदित्याशङ्कया । शृणु मुभगे, प्रागेव प्रणयप्रसङ्गोद्घाटनप्रसङ्गस्य स सङ्घटितत्वदीयरामणीयकगुणाकर्णनकुतू-हलेन परवानिवासीत्, अनन्तरञ्च—

आलक्षितः क्षितिपतेर्दुर्दितुर्दुरुद्ध-

स्त्यट्यम्बुजाक्षकुलनन्दन, पक्षपातः ।

प्रभावती—(लज्जित होती है)

शुचिमुखी—प्रियसरि, मैंने तुम्हारे बिना जो कुमार के हाथ तक पहुँचाया, उसको तुम केवल अपना हीय मत समझो वह तो इतलिये भी आवश्यक था कि अनेक सहस्र कृष्ण की स्त्रियों के दुखारे प्रद्युम्न वा मनोरथ-जनित उन्माद से वेदनावस्त शरीर-सौकुमार्य अनुपेक्षणीय है ।

तरलिका—(आनन्द से) बड़ी सुखी, बड़ी सुखी ।

प्रभावती—(निःश्वास छोड़कर) यह आसवाद्यन भी कामरूप प्रणय-नल की ज्वाला से दग्ध मेरे अङ्गों को पीतलता प्रदान कर रहा है ॥

शुचिमुखी—यह आसवाद्यनमात्र है ऐसी आशङ्का क्यों ? तुमने सु-ऽदि, पहले वही प्रेम-प्रसङ्ग के उद्घाटन के पूर्व, तुम्हारे शृङ्खलित शीर्षक गुण को सुनने के कुतूहल से प्रद्युम्न पराधीन से ये, बाद में—

जब मैंने एतबार एतन्त में प्रद्युम्न से कहा कि हे स्वतन्त्र मन

इत्येकदा रहसि वाचि मयेरितायां
तस्याविरास मनसोऽतिरसो विकार ॥ १३ ॥

ततः प्रभृति—

नि श्वासान् बहुघो विमुञ्चति निशोन्निद्रारुणे लोचने
शून्ये कापि मुग्धा निधाय बहुधा संमीलयन् ध्यायति ।
म्लायन्मन्मथवाणविश्लथपरिक्षामालसैरङ्गकै—
रन्योपक्रम एव किञ्चिदनुपक्रान्ताभ्यं जल्पति ॥ १४ ॥

किञ्च प्रियसखि, यथा तमुन्माथिना मन्मथव्यथाव्यतिकरेण प्रिये-
यीकृतमपश्य तथाप्रधारयामि किञ्चिद्भिर्वासरैर्दनुजपुरान्त पुर प्राप्त एव
प्रद्युम्न इति ।

प्रभावती—(आत्मगतम्) अवि णाम एद हुविस्सदि । (अपि नाम एतत्
भविष्यति) ।

तरलिका—एदं भोटु, परतु पिअसहि, वज्जपुर क्तु एद असभायिदो
एत्थ परपत्तमनुयत्तमाणाण पवेसो । (एव भवतु परन्तु प्रियसखि, वज्जपुरं
खल्वेतत् , असभावितोऽत्र परपक्षमनुवर्त्तमानाना प्रवेश) ।

देखा है कि राजकुमारी प्रभावती गुप्तरूप में तुमपर स्नेह करती है तब उनके
मन की स्थिति विचित्र हो गई थी ॥ १३ ॥

उसके बाद से—

वह लम्बी साँसें लिया करते हैं, रात में जगे रहने से निद्रारुण नयनों को
व्यर्थ भाव से कहीं लगाकर या आँखें मूंदकर ध्यान किया करते हैं, कन्दर्प-
वाणकृत पराभव से म्लान अङ्गो से युक्त प्रद्युम्न अन्य प्रकरण में अथ कथा
असम्बद्ध रूप में कहने लगते हैं ॥ १४ ॥

प्रियसखि, मैंने जिसतरह की कामवेदना से वशीकृत प्रद्युम्न के दर्शन-
पाये थे, उससे तो मैं समझती हूँ कि कुछ ही दिनों में राजसराज के अन्तः-
पुर में प्रद्युम्न आये ही हुए हैं ॥

प्रभावती—(स्वगत) क्या यह भी होगा ?

तरलिका—ऐसा ही होवे । परन्तु—प्रियसखि, यह वज्जपुर है, इसमें
विपक्षवर्त्ती का प्रवेश असंभावित है ।

प्रभावती—(सोद्वेगम्) (आरमणतम्) सच्चं तरलिका वाहरदि ।
(सत्यं तरलिका व्याहरति) ।

शुचिमुखी—(सावलेपम्) यत् किञ्चिदेतत् ।

तरलिका—(साभ्यर्धनम्) अरिथ कोचि एत्थ वि नीतिमगो । (अरिथ कोप्यत्रापि नीतिमार्गं) ।

शुचिमुखी—श्रूयताम , कथिताहमेव दा भर्तृदारिकयैव येनचित् पुनू-
हलेन, महाराजयचनाभस्य पुरतः ।

प्रभावती—सच्चं, सहि, कदिहं ज्जेव मए तादस्स अग्गदो ज
जाणादि पण्डिअहंसी विअड्डमहुर देसंतरवुत्ताइं मतिदुं ति । (सत्तं
सखि, कपितमेव मया तातस्याप्रतो मत् जानाति पण्डितहंसी विदग्धःपुरं
देशान्तरवृत्तान्तं मन्त्रवितुनिति) ।

शुचिमुखी—तेनैव प्रत्ययेनैकदा क्रोडाफमलिनी-पण्डतीर-मण्डलशैवलं
स्वैरं चरन्तीमाहूयमामपृच्छन्महीपतिः ।

तरलिका—होन्ति उज्जेव कोतूहलपिआठं राअहिअआइ । (भवनयेद
कोतूहलप्रियाणि राजहृदयानि) ।

प्रभावती—(उद्विग्न भाव से) (स्वगत) तरलिका ठीक ही कह
रही है ।

शुचिमुखी—(सगर्वभाष से) यह कुछ कह रही है ।

तरलिका—(अभ्यर्धना से साप) क्या इसमें कुछ राजनीति है ?

शुचिमुखी— सुनो, राजकुमारी ने महाराज यचनाभ से सामने एकबार
मेरे प्रसन्न में कहा था—

प्रभावती—हाँ घति मैंने पिताजी से सामने से कहा था कि यह पण्डित-
हंसी चतुरवापुर्न एव मधुर देवान्तरवृत्त विवेदित करना आती है ।

शुचिमुखी—उसी परिधय से एक बार श्रीशायरोवर-रिषय रीवाण-
मण्डपपर यथेच्छभाव से भ्रमण करती हुई मुझसे पुरार कर महाराज ने
पूछा था ।

तरलिका—राजाओं का हृदय कोतूहलपूर्ण हुआ ही करते हैं ।

प्रभावती—सहि कीस पुद्धिदासि तादेण । (सखि कीदृश पृष्टासि तातेन ।)

शुचिमुखी—

द्वीपान्तरेषु रुचिराणि सरोवराणि

स्वच्छन्दचारमूलभानि चिरं चरन्त्या ।

यानि स्वयातिशयिनानि किलान्द्रुतानि

संवीक्षितानि यद् तानि विदग्धवाणि ॥ १५ ॥ इति ।

तरलिदा—एत्तिओ उज्जेव वज्जणाभपरिसत्ताण न्नेन्द्राण वीसामो ज विचित्ताओ वघाओ सुणीअन्ति । (एतावानव वज्जनाभपरिसत्ताना परेन्द्राणा विश्रामो यत् विचित्रा कथा. श्रूयन्ते ।)

प्रभावती—तदो तदो । (ततस्तत ।)

शुचिमुखी—ततश्चाहमवाप्तप्रसरा किमपरमद्भुत यन्न युष्मन्नगरे, परन्तु यत्किञ्चिदाख्याय पूरयामि प्रभूणां कुतूहलमित्यपक्रम्य तानि तान्यद्भुतान्यावेदितवती । तस्मिन्नेव प्रस्तावे स्तुतो मया महाद्भुतनिधि-भद्रो नाम नटः ।

प्रभावती—सखि, पिताजी ने क्या पूछा था ?

शुचिमुखी—महाराज ने पूछा था कि हे चतुरभाषणशीले, तुम द्वीपान्तर के मनोहर सरोवरो मे स्वच्छन्दगामी होने के कारण सदा धूमती रहती हो, अतः तुमने जो कुछ अल्पद्भुत देखा हो, वह बताओ ॥ १५ ॥

तरलिदा—वज्जनाभ द्वारा सताये गये राजगण के लिये इतना ही तो विश्रामस्थान है कि उन्हें विविध कथाएँ सुनने को मिल जाया करती हैं ॥

प्रभावती—इसके बाद क्या हुआ ?

शुचिमुखी—इसके बाद मुझे अबसर मिल गया और मैंने महाराज से कहा कि ऐसा कौनसा अद्भुत है जो आप के नगर मे नहीं है फिर भी मैं कुछ सुनाकर आप का कौतुक पूर्ण करती हूँ । इस प्रकार से भूमिका बनाकर मैंने कुछ अद्भुत वस्तुओं की चर्चा की । उसी प्रसङ्ग मे मैंने अद्भुतनिधि भद्रनामक नट की भी चर्चा की ।

प्रभावती—(सबहुमानादमुत्रम्) जो तए पञ्जनसिद्धिणो सहजरो ति आअक्किपदो आसि । (य तस्याः पर्याप्तस्तिग्धः सहजर इति बान्धित्वा षीत् ।)

शुचिमुखी—एवम्, ततस्तत्राट्यालोकनकुन्दलो महाराजस्तश-
नयनाय मामभ्यर्थितवान्, अहमपि तदङ्गीकृतवती ।

तरलिका—तदो किं । (ततः किम् ?)

शुचिमुखी—अयि किमद्यापि नागतो नोतिमार्गः पश्य—

विद्यासु क्रमशिक्षितासु भरतान्नाट्यागमाधीतिनः

स्वाधीनादथ नारक्षादपि मुनेः संगीतपारङ्गमाः ।

घाक्पीयूषपयोधयोऽतिमधुराकाराः कुमारा नट-

व्यापारव्यपदेशतः सुखमिदानेयाः पुरे वृषगयः ॥ १६ ॥

समधिगतसर्पमायासम्प्रदायापारपीठव्यापारे, च कुमारे शेष-
मीपत्करम् इति ।

प्रभावती—(घानन्दमारगतम्) अहो णोदिणिमुगत्तणं पण्डित्ठअ-

प्रभावती—(आदर तथा आश्चर्य के साथ) सिद्ध तुमने अपना भवगत
स्नेही तथा सहजर कहा था ? ।

शुचिमुखी—हाँ, इसके बाद उसके नाट्य की देखने की उरगुआ करने
वाले महाराज ने मुझे उसकी चुन्ना लाने की कहा, मैंने भी स्वीकार कर लिया ।

तरलिका—इससे क्या हुआ ?

शुचिमुखी—अरी, क्या अभी भी तुमने राजनीति नहीं समझी ? देखो—

प्रभुपूर्वक विद्याओं का अध्ययन करके भारत में नाट्यशास्त्र का अध्ययन
करने वाले, स्वतन्त्रविहारी नारद ने संज्ञोत्तशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने वाले
एवं मधुर भाषी मुन्दर-भूति यादव कुमारगण नटव्यारार के व्याज से बिना
चट के यहाँ लाये जा सकते हैं ॥ १६ ॥

सभी तरह की माया के ज्ञान तथा अन्तरीय प्रयोग कुमारों के विवे-
चेय वर्तमान बनायास साध्य है ।

प्रभावती—(घानन्द, स्वगत) आश्चर्य है इस पण्डित्ठों की नीति-

हंसीए । (प्रकाशम्) सरिस क्खु मन्तिद पिअसहीए किं उण जइ देव्व एत्थ अणुअल भवे । (अहो नीतिनिपुणत्वं पण्डितहस्या । सदृशं सत्तु मन्त्रित प्रियसख्या किं पुन यदि दैवमत्रानुकूलं भवत् ।)

शुचिमुखी—किमनन्धयसितासि ।

अनुकूलमेव दैवं जगति विचित्रस्वभावेऽपि ।

यूनोरभ्योन्यगुणानुरूपविन्यासमाचरति ॥ १७ ॥

एवञ्च—

कलानाथो राकामिव सहचरीं शम्बरहर*

प्रियामम्भोजालीमिव किरणमाली रमयतु ।

जन्मं क्षोणीरत्नं समुचितगुणे संघटयतो

यशो लब्धाद्वैतं त्रिजगति विधातुर्विलसतु ॥ १८ ॥

प्रभावती—(आत्मगतम्) अहो सवणसुह सुहासिअ सुइमुहीए । (प्रकाशम्) सहि कथ एअ सभायीअदि । (अहो श्रवणसुख सुभाषित शुचि मुख्या । सखि कथमेव सभाव्यते ।) ?

निपुणतापर । (प्रकट) प्रियसखी ने तो ठीक कहा है, यदि भाग्य इसमें साथ दे ।

शुचिमुखी—क्यों अधीर हो रही हो ?

भाग्य जब अनुकूल होता है तभी इस विचित्र विश्व में दो—युवक-युवति के हृदयों में अनुराग की सृष्टि करता है ॥ १७ ॥

इस प्रकार—

जैसे पद्मरा रात के साथ तथा सूर्य कमलिनी के साथ विहार करते हैं उसी तरह कामदेव हमारी प्रियसखी के साथ विहार करें और भूतलरत्न सुंदरी को उपयुक्त युवक से मिलाने वाले ब्रह्मा का अक्षण्ड यश तीनों भुवन में प्रख्यात हो ॥ १८ ॥

प्रभावती—(स्वगत) प्रभावती के वचन बड़े ही श्रवणप्रिय हैं । (प्रकट) किस प्रकार यह सभावना करती हो ?

शुचिमुखी—(सरोपम्) अपि कौटुम्भोऽप्यननाश्वानः

प्रभावती—(निन्दत्य) अणानंधो जैव अत्तणो माज्जेअस्स जेण अनादीणा पिअह दुल्लहज्जाणुराअनभोरहेहि अन्नादिअ एअरिने अकत्थतरं पाचिदा हि । (अनाश्व एव आत्मनो माग्घेअन्य येनाशाहेण इवाट् दुल्लंजनानुरागननोरहेस्समाद्य एताएअनवत्थान्तर प्रपिआन्नि ।)

तरन्निवा—अि अन्त एअ नपानि. नादीणा जैव तुमं दुल्लहो एण लणो उवाअण सुन्हो जैव करीअदि । (कि अत्तु एअन् नपानि स्वाधीना एव त्व दुल्लंजः पुनज्जेण उपायन सुल्लम एव त्रियते ।)

प्रभावती—(हर्षोपम्) अट् अट् अट् अट् चारिणि. बुल्लवण्णजाओ कन्तु माटापिट्ठे परिधीनाओ होन्ति । (अदि स्वच्छन्दचारिणि, बुल्लवण्णका अट्ठ माटापिट्ठो, परिधीना भवन्ति ।)

शुचिमुखी—अस्सेअ तथापि—

अयं लोकाचारः प्रभुरिति कुमारीजनयिता
गुणोपेक्षाकृतं क्वचिदपि जने संघटयति ।

शुचिमुखी—(क्रोधपूर्वक) यह अविश्वास कैसा ?

प्रभावती—(निन्दत्य छोड़कर) यह मेरे भाग्य का दोष है जिन्होंने मुझे पराधीन बन्धा को दुल्लंजन में अनुरक्त करके महोरथों से अन्नादिनी बनाकर इस स्थिति में पहुँचा दिया है ।

तरन्निवा—ऐसा क्यों कहती हो, तुम स्वाधीन हो हो, और दुल्लंजन को भी उपायों से सुदन किया जाता है ।

प्रभावती—(कोपपूर्वक) अरी स्वच्छन्दचारिणी, बुल्लवण्णाने माटापिता से पराधीन हुआ करती है ।

शुचिमुखी—बाउ तो ऐसी ही है कि उदल करने डाला कुमारी बन्धा का अभिभावक होता है, वह गुणों की उपेक्षा करके अपनी बन्धा को किसी के साथ जोड़ देता है । यदि सुवती बन्धा एव सुदक दर एव दूदरे के

अथान्यान्य यूनोरुचितगुणलोभाहनहृदो
प्रभुत्वेन प्रेम्ण परमरमणीय परिणय ॥ १९ ॥

प्रभावती—(वारवती) विरम विरम ण खु तुम्हाण साहसो
पण्यासाइ सुणिस्स । (विरम विरम न खडु युत्ताक साहसोपन्यासान्
श्रोण्यामि ।)

तरलिका—सहि सुद्धमुही, सच्च पहाउदा भणादि कि सुणाविदेण,
चइ फनेण जेव ण दसेसि । (सखि शुचिमुखि स य प्रभावती भणनि कि
श्रावितेन यदि फलेनैव न दणयसि ।)

शुचिमुखी—सत्य सोऽयमस्माकमत परमपराध ।

प्रभावती—(तरलिका साम्प्रमालोक्य) (हृषी प्रति) सहि पसीद
पसीद काए एत्तिओ मनोरहो, को उण ए थ तुम्हाण इव अवरारहो ।
(इति वाष्पोपरोध नाटयित्वा सोपालम्भ) एत्तिअ जेव तुम अवरज्जासि न
तस्स महामहग्घरुअलङ्घोमणहराइ अगाइ बीसभणिग्भर पलोअणी
वारवारमेक्खिआ लोअणाणन्मणुहए उण वि चित्तगदाइ पि ताइ
म ण दसेसि । (सखि प्रसीद प्रसीद कस्या एतावान् मनोरथ क पुनरथ
युत्ताकमप्यपराध ? एतावदेव त्वमपरादासि यत्तस्य महामहाघल्पलक्ष्मी
मनोहराणि अङ्गानि विस्रम्भनिभर प्रलोकमाना वारवारमेकाकिनी लोचनान्द
मनुभूयासि पुनरपि चित्रगतानि अपि तानि मे न दणयसि ।)

गुणो पर आकृष्ट होकर प्रेम के प्रभाव में परिणयसूत्र में बाबद्ध होने हैं तो
बहुत अच्छी बात होगी ॥ १९ ॥

प्रभावती—(रोकती हुई) चुप रहो चुप मैं तुम लोगों को ऐसी
साहस की बातें नहीं सुनती ।

तरलिका—सखी शुचिमुखी प्रभावती ठीक कहती है यदि फलत दान
नहीं करा सकती हो तो सुनाने से क्या लाभ ?

शुचिमुखी—सचमुच यह हम लोगों का अपराध है ।

प्रभावती—(तरलिका की ओर असूया की दृष्टि से देखकर) (हृषी के
प्रति) सखि क्षमा करो किसका इतना बड़ा मनोरथ होगा ? फिर तुम्हाण
इसमें क्या अपराध है ?

तरलिका—सहि उआलम्भणिज्जं ज्जेव उआलव्धासि भट्टिदारिआए,
ता दंसेहि मे पडिछ्छदअ । (सखि, उपालम्भनीयमेव उपालव्धासि भट्टिदारि-
कया, तद्दश्य मे प्रतिच्छन्दवम् ।)

शुचिमुखी—दर्शयामि, समाह्वियन्तां चित्रोपकरणानि ।

तरलिका—(निष्क्रम्य, गृहीतचित्रोपकरणा पुनः प्रविश्य), सहि. एदाहं
चित्तोवहरणाइं । (इति समपंयति) (सखि एतानि चित्रोपकरणानि) ।

शुचिमुखी—(गृहीत्वा नाट्येन चिरादभिलिख्य दर्शयति)

प्रभावती—(सान-दमवलोक्वयोत्कम्पते)

तरलिका—(विलोक्य) सहि, पिअसहीए दुव्वारहिअअवेअणुव्वेअ-
णिव्वारअं वल्लहं लिहन्तीए तए णिरन्तरोपकन्तणिक्कणसरणिअरप्प-
हारदारुणो मअरद्धओ एत्थ आलिहिदो । अदो ज्जेव पिअसही वि उक्क-
म्पिदा । (सखि, प्रियसख्या दुवारहृदयवेदनोद्देगनिवारकं बल्लभं लिखन्त्या

(रुलाई को रोक कर, उलाहने के स्वर में) तुम्हारा इतना ही अपराध है कि तुम स्वयं उस महानुभाव के अति महार्घ रूप-लक्ष्मी से युक्त अङ्गों को अकेली बार बार देखकर लोचनों को आनन्दित करके भी मुझे चित्र में भी उनके दर्शन नहीं कराती हो ।

तरलिका—सखि, भट्टिदारिका द्वारा उचित ही उलाहना दिया जा रहा है अच्छा, तो तुम वह चित्र दिखला दो ।

शुचिमुखी—दिखलाती हूँ, चित्र के साधन प्रस्तुत करो ।

तरलिका—(जाकर, चित्र के साधनों को लिये हुए पुनः प्रवेश करके)
सखि, ये लो चित्र के साधन । (चित्र के साधन देती है)

शुचिमुखी—(साधन लेकर, अभिनयपूर्वक चित्र बना कर दिख-
लाती है)

प्रभावती—(सानन्द देखकर कांप उठती है)

तरलिका—(देखकर) सखि, तुमने तो हमारी प्रियसखी राजकुमारी के हृदय में वर्तमान वेदना को निवारित करने वाले प्रियतम को चित्रित करने

रव्या निरन्तरोपना-तनिष्करणशरनिकरप्रहारदाहणो मकरध्वजोऽत्रालिखितः,
 अत एव प्रियसखी अपि अत्रोत्कम्पिता ।)

प्रभावती—सखि, त वस्तु विहावेमि, कुदो उक्कम्पिदह्नि । (सखि,
 उत्सृष्ट विभावयामि, कुत उत्कम्पितास्मि ।)

शुचिमुखी—(सस्मितम्)

उत्कम्पितानि करभोरु तथाङ्गकानि
 कान्तावलोकनकुतूहलविश्लथानि ।
 नोत्कम्पिनी भवति सागरदारिणीची
 राकानिशाकरविलोकनमन्तरेण ॥ २० ॥

(तरलिका प्रति) अयि तरलिपे, किं प्रमुग्धासि, प्रद्युम्नो मकरध्वज
 इत्यनर्थान्तरम् । तथाहि—

तस्मिंस्तपःपरिभये निजनेत्रभासा
 भस्मीकृतस्मरणजन्मकलेवरस्य ।
 तस्याधिरास करुणातरुणाभितापं
 तत्कालमेव परिदेधितमिन्दुमौले. ॥ २१ ॥

हुए निरन्तर निर्दयशरवर्षाकारी भयङ्कर कन्दर्प को चित्रित कर दिया है, इसीसे
 तो हमारी सखी काप भी गई है ।

प्रभावती—सखि, यही तो मैं भी सोच रही थी कि मैं काप क्यों
 उठी हूँ ।

शुचिमुखी—(हँसती, हुई) अपने प्रियतम को देखकर सात्त्विक
 भावालस तुम्हारे अङ्ग कम्पित हो उठे, पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखे बिना सागर
 की तरङ्ग कभी भी नहीं काप सकती है ॥ २० ॥

(तरलिका के प्रति) अरी तरलिके, क्यों भोली बन रही है, प्रद्युम्न
 मकरध्वज यह तो पर्याप्त है.

महादेव ने अपनी तपस्या में विघ्न पडते देखकर कन्दर्प के शरीर को
 भस्मसात् कर दिया, परन्तु उनके हृदय में अपने निर्मम कृत्य पर करुणा के
 घाप पश्चात्ताप उत्पन्न हुआ ॥ २१ ॥

ततश्च स भगवान्—भवानीपतिर्यदुक्नुजन्मनो जनार्दनादेतस्य जन्मान्तर प्रसादीकृतवान् । तमेनं पद्मनाभसद्मनि जातमात्रम चातसप्ताह-मात्मनो मृत्युभूत महामुनेर्नारदादुपश्रुत्यापजहार शम्बरासुर ।

तरलिका—अचरिअ अचरिअ, कुदो षण सर्वन्तरसखिदाए तक्खण विज्ञादतिहुअणववसिदेण णिग्गहाणुग्गहप्पहुणा हरिणा वि एद उवे-क्खिद् । (आश्चर्यम् , आश्चर्यम् , कुत पुन सर्वा-न्तरसाक्षितया तत्सग विज्ञातत्रिभुवनव्यवसितेन निग्रहानुग्रहप्रभुणा हरिणाप्येतदुपेक्षितम्) ।

शुचिमुखी—किमाश्चर्यम् , प्राकृतेषु प्रपञ्चेषु प्रविश्य क्रीडतो भगवतो मायामानसस्य किमपीषदपि क्रीडनम् । अपि च—

लोकत्रयप्रतिभय स्वयमेव सद्यो

यद्यात्मजन्महरणे हरिणा हत स्यात् ।

किन्द्वारतामपरमञ्चतु पञ्चशणे

कैशोरशोभिनि यशोऽभिनिवेशनस्य ॥ २२ ॥

इसके बाद महादेव ने यदुकुलजन्मा जनार्दन से कन्दर्प को जन्म ग्रहण करने का बरदान दिया, इस प्रकार कन्दर्प ने अभी भगवान् कृष्ण के घर जन्म लिया, तभी नारद ने शम्बरासुर को जाकर कह दिया कि तुम्हें मारने वाला कन्दर्प भगवान् के घर पैदा हुआ है मुनते ही शम्बर ने कन्दर्प का अपहरण कर लिया ।

तरलिका—आश्चर्य होता है कि सर्वान्तर्यामी होने के कारण त्रिभुवन के व्यवसायो से परिचित रहनेवाले निग्रहानुग्रहसमथ प्रभुनाथ कृष्ण ने भी इस बात की उपेक्षा कैसे कर दी ?

शुचिमुखी—इसमें क्या आश्चर्य है । प्राकृत प्रपञ्च में प्रवेश करके क्रीडा करनेवाले भगवान् के लिये यह एक माया का खेलमात्र है । और-लोकत्रय भयकारी भगवान् कृष्ण यदि पुत्रापहारी शम्बरासुर को स्वयं मार देते तो बालक पञ्चदाण को बाल्यावस्था में ही शम्बरासुरवधत्रय यश दिलाने का कौन सा मार्ग होता ॥ २२ ॥

तरलिका—तदो तदो । (ततस्तत) ।

शुचिमुखी—ततश्चायमतिदारुणोऽपि श्लथावयमो बाल इति स्व-
हस्तेन हन्तुमेनमपारयन् अम्बुराशौ चित्रेप ।

प्रभावती—(वशासम्) दारुणा क्खु महासुरा अइदुक्कराइ करन्ति,
सहि पसीद पसीद, कघेहि कध चीनिदो त्ति । (दारुणा खलु महासुराः
अतिदुक्कराणि कुर्वन्ति सखि प्रसीद प्रसीद कथय कथ जीवित इति ।)

तरलिका—(सकृष्णम्) पसारिअमुहकन्दरा महामच्छ्रुआ सोआस-
निलम्भि णिअलिआइ गिलन्ति त्ति सुणीअदि । (प्रसारितमुखकन्दरा महा-
भद्रस्यका श्वासानिले निपतितानि गिलन्तीनि श्रूयन्ते ।)

शुचिमुखी—तदेव सवृत्तम् ।

प्रभावती—(सभयोत्कम्पम्) सहि असमत्थम्हि सुणिदु पि तारिसस्स
महामहग्घनन्मणो एआरिसाइ अवथतराइ । (सखि असमर्थास्मि श्रोतु
मपि तादृशस्य महामहाघज मन एतादृशायवस्थान्तराणि) ।

तरलिका—तदो तदो । (ततस्तत) ।

तरलिका—इसके बाद क्या हुआ ?

शुचिमुखी—यद्यपि शम्बर वडा ही निदय था फिर भी कोमल शरीर
बालक को मारने में अक्षम होकर उसने कदप को समुद्र में फेंक दिया ।

प्रभावती—(डरकर) ये भयानक महासुर निताउ निमम कार्यं करते
हैं कृपा करो यह बताओ कि फिर वह जो कैसे गये ।

तरलिका—(करुणभाव से) सुना जाता है कि मुखकन्दरा फैलाये
हुए महाभद्रस्य उन वस्तुओं को निगल जाने हैं जो उनकी श्वाशवायु की सीमा
में आ जाती है ।

शुचिमुखी—वही तो हुआ ।

प्रभावती—(भयकृत कम्प के साथ) मैं सुनने में भी अक्षम हूँ । वैसे
अहार्थ जीवन पुरुष की ऐसी अवस्थायें ?

तरलिका—इसके बाद ?

शुचिमुखी—ततश्च केनापि सागरमत्स्याहारिणा घीवरेणाहृतस्य कस्यचिन्महापाठीनस्य पाट्यमाने जठरे जीवन्नासादितो वासुदेवसूनुः ।

प्रभावती—(सानन्दम्) दिठ्ठिआ पसण्णं भअवदीए भविदब्बदाए ।
(दिष्ट्या प्रसन्न भगवत्या भवितव्यतया ।)

शुचिमुखी—एवमेतत् ।

भवितव्यता भगवती गमयति पीतामृतानपि विनाशम् ।

क्वचिदशक्तभवनादपि जन्तूनानीय जीवयति ॥ २३ ॥

अपरं च—

निरालम्बामश्यामवनिमयतीर्णाल्लधिजा-

मसौभाग्यं भाग्यं यदुकुलविभूतेर्भगवतः ।

अधन्यं लावण्यं हतसमुद्र्यं हन्त विनयं

क्व निर्धारामुर्वीं विधिरपि विधातुं प्रभवतु ॥ २४ ॥

प्रभावती—(सप्रमोदम्) सहि जाणासि सच्चं रमणीअं च मन्तिदुं,
ता अग्गदो कधेहि । (सखि, जानासि सत्यं रमणीयं च मन्त्रयितुम्, तदप्रतः
कथय ।)

शुचिमुखी—इसके बाद समुद्र में मछली पकड़नेवाले किसी मलाह ने एक बड़ी सी मछली पकड़ी उसने उसका पेट चीरा तो उसमें उसे जीवित अवस्था में वासुदेवतनय मिले ।

प्रभावती—भगवती भवितव्यता ने कृपा की ।

शुचिमुखी—यही बात है ।

भगवती भवितव्यता अमृत पीने वालों को भी समाप्त कर देती है, और कभी प्राणियों को यमराज के घर से भी ले बाहर जिला देती है ॥ २३ ॥

और—ब्रह्मा भी किस प्रकार पृथ्वी पर अवतीर्ण माना लक्ष्मी को निरालम्ब, यदुकुलविभूति भगवान् कृष्ण के भाग्य को असीभाग्य, लावण्य को अधन्य, विनय को उदयरहित, एव पृथ्वी को निर्वाह बनाते ? ॥ २४ ॥

प्रभावती—सखि, सबमुझ तुम सत्य तया सुन्दर कथा कहना जानती हो । बाग्ये की कथा सुनाओ ।

शुचिमुखी—ततश्च तेनैव तीर्थेन स बाल कालान्तरे शम्बरान्त-
पुरमेव दैवतो गतवान्, तत्रैव च मत्स्योदरजात कुमार इति कुतूहलेन
पालितो लालित क्रमेण प्रादुर्भूतयौवनं प्राप्तापरिमेयमायासप्रदायोऽ-
धीतास्त्रशास्त्रश्चाभूत् ।

तरलिका—अच्चरिअ अच्चरिअ, ज तारिसस्स महावेरिणो घरम्मि
अजेअ सुहवडिडओ एआरिस अवत्थतर पत्तो । (आश्चर्यम्, आश्चर्यम्,
यत्तादृशस्य महावैरिणो गृह एव सुखवर्द्धित एतादृशमवस्थान्तरं प्राप्तं ।)

शुचिमुखी—अवस्थान्तरं कियदुच्यते, केषुचित्कालेषु स महावीर-
वासुदेवगृहे जातमा मान नारदान्मुनेविज्ञाय कुपितो योद्धुमाजुहाव
महासुरम्, कालशम्बरश्च स्वपोषितो बाल इत्यवहेलया हन्यतामित्यसुर-
सैन्यमादिदेश ।

प्रभावती—(स भ्रमम्) तदो तदो । (ततस्तव ।)

शुचिमुखी—ततश्च तेषु तेषु महासुरेषु कुमारक्रोधकालानलाहुती-

शुचिमुखी— इसके बाद वह बालक उसी उपाय से समय पर सयोगवश
शम्बरसुर के अन्त पुर में पहुँच गया, वहाँ पर मछली के पेट से निकला हुआ
लडका है इसी कुतूहल से पलता रहा, क्रमशः युवा हुआ और उसने माया-
सम्प्रदाय तथा शास्त्रों की शिक्षा पाई ।

तरलिका—आश्चर्य है कि उस प्रकार के महाशत्रु के घर में ही सुख से
पला और ऐसी अवस्था प्राप्त की ।

शुचिमुखी— अवस्थान्तर के विषय में क्या कहे कुछ दिन बीतने पर
उस वीर बालक ने नारद मुनि के मुख से सुना कि वह वासुदेव के घर पैदा
हुआ था, इस पर वह कुपित हो गया, और उसने शम्बरसुर को युद्ध के लिये
हलकारा । कालस्वरूप शम्बरसुर ने अपने द्वारा पोषित बालक है इसलिये
अवज्ञाभाव से असुर सैन्य को उसे मारने की आज्ञा दी ।

प्रभावती—(घबड़ाहट के साथ) तब क्या हुआ ?

शुचिमुखी—तब वे महासुर जब कुमार की क्रोधाग्नि की ज्वाला के

भूतेषु निपतितेषु स्वयमपि प्रद्युम्नद्युमणिव्यवसितविलीयमानमाया-
महान्धकारेण—

क्रोधान्धेन महासुरेण मुमुचे मायामयो मुद्गरः ।

प्रभावती—(सत्रासम्) हा महाभाअ, (हा महाभाग))

सद्यः सोऽपि गिरा स्मरेण गिरिजामाराभ्य मोघीकृतः ॥

प्रभावती—(सानन्दम्) दिठ्ठिआ पसण्णं भअन्नदीए गिरिणन्दि-
णीए, तदो तदो । (दिष्ट्या प्रसन्नं भगवत्या गिरिनन्दिन्या, ततस्मतः ।)

शुचिमुखी—ततश्च—

पतेनातिल्लघूत्प्लुतिप्रणयिना विद्यासनेनासिना

दूरादम्बरचारिशम्बरशिरश्छित्त्वा क्षितौ पातितम् ॥ २५ ॥

तरलिका—(सानन्दम्) दिठ्ठिआ हदो दुठ्ठदुब्जादो । तदो तदो ।
(दिष्ट्या हतो दुष्टदुर्जातः ततस्तत ।)

शुचिमुखी—अनन्तरञ्च शाम्बरमयं विमानमारुह्य द्वारवतीमुपगतः
सम्प्रति जगदाधिपत्ययीवराज्यलक्ष्मीमलं करोति ।

आहुति बन गये तब शाम्बरामुर ने स्वयं—प्रद्युम्नरूप सूर्य को किरणों से
मायारूप अन्धकार के विलीन हो जाने पर—क्रुपित होकर मायामय मुद्गर
से प्रहार किया ।

प्रभावती—(भय से) हा महाभाग, तत्काल प्रद्युम्न ने गिरिजा की
आराधना द्वारा शम्बर के मुद्गर को व्यर्थ कर दिया ।

प्रभावती—(सानन्द) भाग्यवश भगवती गिरिनन्दिनी ने प्रसन्नता
प्रकट की । इसके बाद ?

शुचिमुखी—इसके बाद प्रद्युम्न ने वेग से कूद कर विभासन नामक
खड्ग से आकाशचारी शम्बर का शिर काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ २५ ॥

तरलिका—(सानन्द) भाग्यवश दुष्ट असुर मारा गया, इसके बाद
क्या हुआ ?

शुचिमुखी—इसके बाद प्रद्युम्न शम्बरामुर के विमान पर चढ़कर द्वारका
आ गये, इन दिनों वह सवारस्वामी के पुत्रराज पद को अलङ्कृत कर रहे हैं ।

तरलिका—दिट्ठिआ महाकुलप्पहवे महामहग्घपुरिस्तथे मअत्ति-
कुसुमाउहे ज्जेव पिअसहीए परोक्खणुराओत्ति । (दिट्ठिआ महाकुलप्रभव
महामहापुरुषपायें भगवति कुसुमायुध एव प्रियसख्या परोक्षानुराग इति) ।

शुचिमुखी— किमधिकम्, हिमगिरिशिखरशिलोद्भवापि भागीरथी
सागरमेव चतरति ।

तरलिका—साहु सुहासिद, एत्तिअ उण सगणिञ्ज न असुराअन्कन्द
ठारुणा दे देवजन्माणो त्ति । (साधु सुभाषितम् एतावत्पुन शङ्कनीय यद-
सुरादस्त्र-ददारुणास्ते देवज-मान इति) ।

शुचिमुखी—अयि तरलिके, श्लाघनीयमेव पितृकुलादुन्नत पतिकुल
पुरन्तरीणाम् ।

प्रभावती—(आत्मगतम्) हिअअगम ज्जेव सुइमुही वाहरवि,
(प्रकाशम्) (निश्चय) पिअसहि, कि पुणो वि पहादम्मि तहिं ज्जेव
तुम गमिस्ससि । (हृदयङ्गममेव शुचिमुखी व्याहरति प्रियसखि कि पुनरपि
प्रभाव तत्रैव च गमिष्यसि ?)

तरलिका—भाग्यवश हमारी प्रिय सखी का परोक्षानुराग ऐसे ही पुरुष
पर है जो महाकुलप्रसूत महापौरुषशाली एव सद्यः कामदेव है ।

शुचिमुखी—अधिक क्या कहें, हिमालय से निकली गङ्गा सागर में ही
उतरती है ।

तरलिका—बहुत अच्छा कहा तुमने । इतनी ही शङ्का है कि वे देवीजन
असुरों पर आक्रमण करने में बहुत निर्दय हुआ करते हैं ।

शुचिमुखी—अरी तरलिका, स्त्रियों का पतिकुल पितृकुल से उन्नत हो,
यह तो चाहिये ही ।

प्रभावती—(स्वगत) शुचिमुखी दिल की बात ही बताती है । (प्रकट)
(साध छोड़कर) प्रिय सखी, क्या कल सवेरे तुम फिर वहाँ आओगी ?

शुचिमुखी—(विहस्य) किमबद्धपरिकरा तव शुचिमुखी प्रियसखी
निदेशेषु । (स्मयते)

प्रभावती—(व्रीडावैचित्र्य नाटयति)

(नेपथ्ये)

अस्तोर्धोर्धरमन्दिरं दिनमणौ प्राप्ते प्रिये दूरतो
रक्तं सस्वरमम्बर परिदधे स्मेरानना वारुणी ।
अन्यासां सदृसा दिशामथ मुघ्नान्यालम्बते नोक्तिमा
मीलन्नीरजलोचना किमधुना पायाजिनी मुह्यति ॥ २६ ॥

अपि च—

दैवादस्तमुपेयुषि प्रियतमे देवे दिवानायके
मीलद्वारिजलाचनाम्बुजवनी दीर्घामगाम्मूर्च्छं ताम् ।
तामुज्जीषयितुं विरौति विकृतं चक्रो विमुच्य प्रिय
शोचन्तो विरुनैवनाय विहृगा निर्यान्ति निर्वेदिन ॥ २७ ॥

शुचिमुखी—तुम्हारी शुचिमुखी ने क्या तुम्हारे आदेश को कभी उपक्षा
की है ? (मुस्कुराती है)

प्रभावती—(लज्जा का अभिनय करती है)

(नेपथ्य मे)

दूर देश से प्रियतम सूर्य के अस्ताचलरूप मन्दिर मे आते ही वारुणी
दिशाह्व नायिका ने मुस्कुरा कर रक्त अम्बर धारण कर लिया अन्य दिशाओं
के मुख एकाएक मलिन हो उठे और कमलिनो तत्काल कमलरूप नेत्र मूढ़
कर मूर्च्छित हो गई ॥ २६ ॥

और—भाग्यवश प्रियतम दिनकर के अस्त होते ही कमलवनी नायिका
कमलरूप नयन बंद करके दीर्घकालिक मूर्च्छा को प्राप्त हो गई, चक्रवाकी
उसे पुनर्जीवित करने के लिये अपने प्रिय का परित्याग करके दिल्ला रही है,
और चिन्तामग्न पक्षीगण विषण्ण होकर चिल्लाते हुए इधर उधर भटक
रहे हैं ॥ २७ ॥

तरलिका—(आकर्ष्यं) कथं परागतो ज्ञेय संभासमओ । (इति सर्वे समुत्तिष्ठन्ति) (कथं परागत एव सन्ध्यासमयः ।)

शुचिमुखी—तदादेशय तरलिके भर्तृदारिकायाः कन्यान्त'पुरमार्गम् ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

माधवीमण्डपो नाम द्वितीयोऽङ्कः ।

तरलिका—(मुनकर) क्यों, सन्ध्यासमय हो गया ।

(सभी उठ जाते हैं)

शुचिमुखी—तरलिके तुम राजकुमारी को कन्यान्त पुर का मार्ग दिखलाओ ।

(सभी का प्रस्थान)

माधवीमण्डप नामक द्वितीय अङ्क समाप्त



तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटो)

चेटी—(पुरोऽवलोक्य) सहि सालभञ्जिए, (सखि सालभञ्जिके ।)

(प्रविश्यापरं चेटो)

सहि वासन्तिए, वहि आगदासि ? (सखि वासन्तिके, कुत्रागतसि ?)

वासन्तिका—पेस्सिदाह्मि देवीए रुक्मिणीए इमेसु दिअहेसु कुदोवि
कारणादो सन्तत्तसरीरस्स कुमारपञ्जुणस्स पउत्तिणिमित्तं ।
(प्रेषितास्मि देव्या रुक्मिण्या एपु दिवसेपु कुतोपि कारणात् सन्तप्तशरीरस्य
कुमारप्रद्युम्नस्य प्रवृत्तिनिमित्तम् ।)

शालभञ्जिका—किञ्चापारा दाणीं देवी ! (विध्यापारेदानी देवी ।)

वासन्तिका—अज्जवि कुदो वि तं उजेव दिव्वहंसउणं अन्तेउर-
द्धीहिआपरिसरे परावदिदं अत्थि । (यद्यपि कुतोपि तदेव दिव्यहंसकुलम्
अन्तःपुरदीधिका परिषरेपरापतितम् अस्ति ।)

शालभञ्जिका—(सकौतुकम्) तदो तदो । (ततस्ततः ।)

(चेटो वा प्रवेश)

चेटी—(आगे की ओर देखकर) सखि शालभञ्जिके,

(प्रवेश करके, दूसरी चेटो)

सखि, वासन्तिके, वहाँ चलो हो ?

वासन्तिका—देवी रुक्मिणीने भेजा है कि इन दिनों किसी अज्ञात कारण-
वश सन्तप्त-शरीर कुमार प्रद्युम्न का समाचार श्रावण करो ।

शालभञ्जिका—देवी रुक्मिणी क्या कर रही हैं ?

वासन्तिका—आज भी वही दिव्यहंसकुल अन्तःपुरसरसीतट पर बहो से
थाकर उतरा है ।

शालभञ्जिका—(कौतुकपूर्वक) इसके बाद ?

वासन्तिका—तदो सा पण्डितहृषी सुइसुही भद्रेण भादुणा बलभ-
द्रेण सहोवासीणस्स भवदो वासुदेवस्स समीपमाणोता वाहारिदा अ
विवित्ते किपि किपि रहस्स तदो सा भवददा विसज्जिदा सच्चभामा-
पहुदीणं सवत्तीण मज्जे समासीणाए देवीए सआस समागटा । त वखु
दाणि देवी भवददीए इन्द्राणीए सोहग्गाइ पुच्छदि । तुम उण वहि
आगदा असि । (ततः सा पण्डितहृषी शुचिमुखी भद्रेण भ्रात्रा बलभद्रेण
सहोपासीनस्य भगवतो वासुदेवस्य समीपमानोता व्याहारिता च विवित्ते
किमपि किमपि रहस्य, तत सा भगवता विसजिता सरयभामाप्रभृतीना सपत्नीना
मध्ये समासीनाया देव्या सकाश समागता । सा खलु इदानी देवी भगवत्या
इन्द्राण्या. सौभाग्यानि पृच्छति । ख पुन कुत्रागतासि ? ।)

शालभञ्जिका—अह वखु जहि ज्जेय तुम पत्थिदासि तदो ज्जेय
वरावुत्ता ह्मि । (अह खलु यत्रैव रवं प्रस्थितासि ततएव परावृतास्मि ।)

वासन्तिका—ता कि घहूए माआरदीए तत्थ तुम अणुप्पेसिदा ।
(तद् कि वध्वा मायावत्या तत्र त्वमनुप्रेषिता ?)

शालभञ्जिका—अध इं । (अथ किम् ?)

वासन्तिका—किं त्ति । (किमिति ?)

वासन्तिका—इसके बाद वही पण्डितहृषी शुचिमुखी भद्र भाई
बलभद्र के साथ बैठे हुए वासुदेव के पास बुलाई गई, एकान्त में उसने कुछ
रहस्य बाते कहीं, भगवान् ने उसे जाने की अनुमति दी, फिर वह सरयभामा
आदि सपत्नियों के साथ बैठे हुई देवी रुक्मिणी के पास आई ।

इस समय देवी उससे इन्द्राणी के सौभाग्य के विषय में पूछ रही हैं । तुम
कहो कि किधर चली हो ?

शालभञ्जिका—मैं तो वही से आरही हूँ जहाँ से तुम जाती हो ।

वासन्तिका—तो क्या बहू मायावती ने तुम्हें वहाँ भेजा है ?

शालभञ्जिका—और क्या ?

वासन्तिका—क्या बात है ?

शालभञ्जिका—(निश्चय) सहि कि कहेमि, केत्तिआ अवि दिअहा कुमारमणवलोअन्तीए माआवदीए अट्टियाहिदा । अज्ज उण उत्तम्म-माणए ताए प्रिसआदभरिअम्पि हिअअ अट्टम्भिअ 'हब्बे साल-भञ्जिए मम कारणादो तुम पि गटुअ अज्जउत्त' त्ति भणिअ अणुपे सिट्ठहि । (सखि, कि कययामि किय-तोऽपि दिवसा कुमारमनवलोअन्त्या मायावत्या अतिवाहिता । अद्य पुनरुत्ताम्यन्त्या तथा विषादभरित्तमपि हृदयमवभूय 'हब्बे सालभञ्जिके मम कारणात् त्वमपि गत्वा आर्यपुत्रम्' इति भणित्वानुप्रेषितास्मि ।

वासन्तिका—ता किं तए पलोइद् । (तत् किं स्वया प्रलोकितम् ?)

शालभञ्जिका—किं पलोएमि काए वि महामहग्घभागघेआए कए शरीरसन्तापेण पराधीनो विअ पलोइत्ते । अह उण ऋत्ति ससभम पडिहारपडिसिद्धा तक्कण उणेवोत्थिअ प्पासादादो णिकन्तहि । (किं प्रलोकयामि, कस्या अपि महामहार्घभागघेयाया कृते शरीरसन्तापेन पराधीन इव प्रलोकित । अह पुनरुत्तिति ससभम प्रतिहारप्रतिविद्धा तत्क्षणमेवोत्थाय प्रसादानिष्कातास्मि ।)

वासन्तिका—ता तहिं कह् अम्हाण पवेसो तदो इदो ज्जेव पडिणि उत्ता एत्तिअ गटुअ णिवदेमि देघीए, तुमम्पि सम्पन्न दाहग्गत्वम्मारिअ माआवदिं गटुअ समासासिद् करेहि त्ति । [निष्काते] (ततत्र कथ

शालभञ्जिका—(निश्वास छोडकर) सखि क्या कहूँ ?

मायावती ने कितन दिन कुमार को बिना देखे बिता दिय, अपने विषाद-पूण हृदय को कड़ा कर के उठोने आज मुझ से कहा है कि सखि शालभञ्जिके, मेरी ओर से आर्यपुत्र के पास जाकर तुम कहो ।

वासन्तिका—तो तुमने वहाँ क्या देखा ?

शालभञ्जिका—क्या देखतो ? मैंने देखा कि किसी भाग्यशालिनी लला के लिये कुमार सन्तप्त शरीर तथा पराधीन हो रहे हैं । मैं शीघ्र घबडाए हुए प्रतीहार से रोकती जाकर उस प्रासाद से निकल गई । यहाँ जाकर देवी से

मस्माकं प्रवेशः, तत इत एव प्रतिनिवृत्ता एतावद् गत्वा निवेदयामि देव्यै, त्वमपि साम्प्रत दुर्भगत्वमारिता मायावती गत्वा समाश्वसिता कुह-इति ।)

(प्रवेशकः)

(तत प्रविशति विरहावस्थः कुमारः)

कुमारः—अहो निरवलम्बनो मनोरथः, तथाहि—

प्रतिनवरसोत्सिकाप्यन्तर्मनोरथकन्दली
कथमपि कृतैर्द्वित्रैः पत्रैः परं परिशुष्यति ।
मदनदहनज्वालाजालावृतोऽपि रतोद्गमनः
सुखमिदं शत शाखाः सूते विषादविषाङ्कुरः ॥ १ ॥

यतः—

विश्वोपश्रुतवैरधारिणि महावीरो यदूनां कुले
जीवन् दास्यति दानयः स्वतनयां सम्भावनेयं कुनः ।

निवेदन करती हूँ । तुम भी इस समय दुर्भाग्य से पीड़ित मायावती के पास जाकर उन्हें आश्वस्त करो ।

(दोनों का प्रस्थान)

(प्रवेशक)

(विरहावस्था में कुमार का प्रवेश)

कुमार—आश्चर्य है, मनोरथ कितना निरवलम्ब हुआ करता है ?
क्यों कि—

मनोरथ की जड़ में नये रस का सेक करते रहने पर भी उसके जब दो-
तीन पत्ते निकलते हैं तभी वह शुष्क हो जाती है, और विषादरूप विष का
अङ्कुर कामाग्नि की ज्वाला से घिरे रहने पर भी रति में उत्पन्न होने के कारण
अनन्त शाखायें उत्पन्न किया करता है ॥ १ ॥

जगत् प्रसिद्ध वैर धारण करनेवाले यदुवश में महावीर दानवराज अपनी
जीवनावस्था में अपनी कन्या देगा, यह सभावना कैसे की जाय और ब्रह्मा द्वारा
दिये गये बरदान से जिसका द्वार बन्द कर दिया गया है उस नगरी में प्रवेश

किञ्च ब्रह्मचराचरुद्धगमनद्वारे पुरे प्रेयसी
नास्मि द्रष्टुमपि क्षमस्तदिह मे चेतो मुधा मुह्यति ॥ २ ॥

तत्र क प्रकार ?

(प्रविश्य)

दौवारिक — एष भद्रो । (एष भद्र ।)

कुमार — प्रवेशय ।

दौवारिक — ज कुमारो आणवेदि त्ति । (यत् कुमार आजापयति ।
(तत् प्रविशति भद्र)

भद्र — (सान्दम्) अहो भवितव्यता देवकार्यस्य, यत् —

हंस्याहं समुदाहृत स्मयजुषामिन्द्रद्विषामग्रत-
स्तेषामर्थनयाऽनया निपुणया तत्राय नेया वयम् ।
प्राप्तेयं सुखमासुरे यदि पुरे प्रावेशिकी पद्धति
स्तत्कालैरमरावती कतिपयैर्द्रष्टास्मि नष्टापदम् ॥ ३ ॥

करके मैं अपनी प्रेयसी को देखने में भी अक्षम ही हूँ हे मेरे हृदय तम व्यर्थ
उतावलापन दिखला रहे हो ॥ २ ॥

इसमें उपाय ही क्या है ?

(प्रवेश करके)

दौवारिक—यह भद्र उपस्थित है ।

कुमार—बुला लाओ ।

दौवारिक—कुमार की जैसी आज्ञा । (जाता है)

(भद्र का प्रवेश)

भद्र—(सान्दम्) देवकाय की भवितव्यता पर आश्चर्य होता है ।

व्यक्ति —

हृषी ने मुझ से कहा है कि गर्बलि राक्षसों के सामने—उनके आग्रह पर—
वह चतर हृषी हम लोगों को ले जायगी इस प्रकार जब असुरपुर में आसानी
से प्रवेश का माग मिल जाता है तब मुझ आशा है कि मैं कुछ ही समय में
स्वर्ग को निरापद रूप में देख सकूँगा ॥ ३ ॥

किञ्च—

देवा यत्र दिवानिशं व्यवसिता विश्वं यदाशंसते
यस्मै शम्बरवंशदावदहनो वीरः समुत्कण्ठते ।
यत्रार्थं भगवाननादिनिधनः साक्षो सरोजेक्षण-
स्तत्कृत्यं कथमन्यथा घटयितुं धातापि धत्तां मनः ॥ ४ ॥

तदयं कुमारः । यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य) जयति जयति
कुमारः ।

कुमार.—वयस्य, इत आस्यतां भद्र !

भद्रः—(उपविश्यावलोक्य च) कुमार, निर्भर प्रहरता पराभूतोऽसि
मन्मथेन ! तथाहि तव—

परिक्षस्तं हस्तात्कनकवलयं म्लायति पुरः
परिक्षितं चक्षुः क्वचिदपि च शूय्ये निवसति ।
धुनीते निःश्वासः सततमतिदीर्घं समुदयन्
परिक्षुब्धं वक्षस्तरिमिष तत्कृत्यतिकर ॥ ५ ॥

और—जिस कार्य के सबन्ध में देवगण अहर्निश प्रयत्नशील हैं, जिसे संसार
चाहता है, जिसके लिये शम्बरकुलसंहारक वीर प्रद्युम्न उत्कण्ठित है, जिसमें
अनादि निधन भगवान् कृष्ण साक्षी हैं—उस कार्य के प्रसङ्ग में अग्यथा करने
का विचार ब्रह्मा भी कैसे करें ॥ ४ ॥

यही तो कुमार हैं, जब तक उनके पास बल ।

(समीप जाकर)

जय हो, कुमार की जय हो ।

कुमार—मित्र भद्र, इधर बैठो ।

भद्र—(बैठकर तथा देखकर) कुमार जबर्दस्त प्रहार करनेवाले
कामदेव ने आपको पराधीन कर दिया है । आपके—

हाथ से गिरा सोने का बलय म्लान हो रहा है, आर्सें शून्य भाव से देख
रही हैं, जैसे तरङ्ग-समुदाय नौका को बलायमान कर देता है उसी तरह
आपका दीर्घनिश्वास घटत निगंत होकर आपको छाती को बलायमान कर
रहा है ॥ ५ ॥

कुमार—(नि श्वस्य) एवमेतत्—

जनयति जडिमानं मन्मथोन्माधजन्मा

चिरमधिरतदेहोद्वाहवाही विकारः ।

हतहृदयमपीदं हन्त चिन्तादुरन्त

ज्वरपरिचयजातज्वालमूर्च्छालमास्ते ॥ ६ ॥

भद्र—दुस्सहमपि युक्तमेवैतदनु रूपजनप्रणयाभिनिवेशिनो वैदग्ध्य-
निधे कुमारस्य ।

कुमार—किमुच्यते—

विधुरविधिविधेयीभूतमस्यामकस्मा-

दगणितपरितापप्रासमासक्तमन्तः ।

अशरणमिदमुद्यन्माहदीर्घामिदानी

मनुभवति विषादव्याधिबाधामगाधाम् ॥ ७ ॥

(सहेदञ्च)

मलयजरसोत्सिक्तं सद्य स्मरज्वरजर्जरं

ज्वलयति विषोद्गारी गात्रं सरोजसमीरण ।

कुमार—(नि श्वास छोडकर) ऐसी ही बात है, कामपीडा जनित सतत देह को दग्ध करनेवाला विकार जडता उत्पन्न करता है, यह हृदय भी दुरन्त चिन्ता से घटाप ज्वर कृत मूर्च्छा में पडा रहा करता है ॥ ६ ॥

भद्र—यद्यपि यह दु सह है तथापि कुमार ने युक्त पात्र में प्रणय किया है तब तो ठीक ही है ।

कुमार—क्या कहा जाय ?

कष्टप्रद भाग्य के बशीभूत होकर हमारे हृदय ने अकस्मात् परिताप कष्ट को बिना सोचे इस नायिका में आसक्ति कर ली, अब वह मोह दीर्घ तथा अनन्त विषाद व्याधि को अशरण होकर भोग रहा है ॥ ७ ॥

(छेद युक्त स्वर में)

चन्दनलिप्त होने पर भी घन्टाप जर्जर हमारे शरीर को विषवमन करने वाली कमल वन से आनेवाली वायु दग्ध किया करती है, सयोगवश यदि

यत् निपतितं दैवादेतन्सुधाकरमण्डले
सपदि नयनं तस्माद्धारस्थतीप्तु निलीयते ॥ ८ ॥

धिक् प्रमादो यद्देवादिभिरपि यामता सम्प्रतिपद्यते, अथवा—
अकरुणरसोद्दामो घामो विधिर्न कृतानिधि
र्न किल पवनोऽप्यम्भोजालीपरागभरालसः ।
विधिरपि न वा वाच्यो वाच्यो वयं यद्यं जरा-
न्मणिरिव निरालम्बे सिन्धौ ममज्ज मनोरथः ॥ ९ ॥

भद्र—(साश्चर्ममात्मगतम्) किमेतन्मन्मथोऽपि मान्मथेन प्रहारेण परामूयते । अथवा—

जगदशरणमेतत्केवलं मोहमूलं
हरति हरिणनेत्रा कारणं कुत्र काम ।
यद्यमुद्यदन्तःसन्ततोन्माद्वेदः
सपदि विपदमेतामेति देवः स एव ॥ १० ॥

हमारी आँखें चन्द्रमण्डल पर पड़ जाती हैं तो एसा लगता है मानो वे तप्त
बज्जार से छू गई हों ॥ ८ ॥

शेद है कि देवगण भी प्रतिवृत्त हो रहे हैं । अथवा—

कमल परागवाही पवन हमारा विरोधी नहीं है और न चन्द्रमा हमारा
विरोधी है, हमारा विरोधी तो है निर्दयता से भरा ब्रह्मा । अथवा ब्रह्मा भी
निन्दनीय नहीं है, निन्दनीय हम ही हैं, क्यों कि हमने समुद्र में मणि की तरह
इस निरालम्ब-वप में मनोरथ डाल दिया है ॥ ९ ॥

भद्र—(साश्चर्म, स्वगत) यह क्या बात है कि कामदेव भी कामकृत
प्रहार से पराभव में पड़ा हुआ है । अथवा इस मोहमूल अशरण जगद की
मृगासी ही आकृष्ट किया करती है, इसमें बन्दवें कहां कारण है । यदि यह
बात नहीं होती तो सतत उन्माद तथा शेद से व्यथित यह कुमार क्यों
विपन्न होते ? ॥ १० ॥

कुमार —(सो-मादम्) अयि राजपुत्रि, इयमियमालोक्यसे ।
(सोपालम्भञ्च)

भ्रमसि नयनालोके लग्ना निपीदसि सन्निधौ
स्वपिषि शयनोपान्ते स्वान्ते विलासिनि । लीयसे ।
तदिति यदि मां सान्द्रस्नेहा जहासि न हा प्रिये ।
किर्मिति न मनागालापोपि प्रसादरसादरः ॥ ११ ॥

भद्र —कुमार, कतमोऽय तमोमयो भाव , न खलु दुष्प्रापस्तवाय
प्रियालाप ।

कुमार —(सानन्दम्) किमुक्तवानसि ?

भद्र —ननु कथयामि, अचिरेण पाणौ गृहीतेयमालपिष्यति ।

कुमार —(सोच्छ्वासम्)

अपीयमाश्वत्सनवागुदारा मनोविकारान् विरलीकरोति ।

कुमार—(उ-माद की अवस्था मे) हे राजपुत्रि, मैं तुम्हे देख रहा हूँ ।
(उलाहने के स्वर मे)

तुम आँख की परिधि मे घूमा करती हो, मेरे पास बैठनी हो, मेरे बगल मे
सोती हो, हे विलासिनि, तुम मेरे हृदय मे लीन हो जाती हो । हे प्रिये, मेरे
ऊपर प्रगाढ़ प्रेम रखती हुई तुम यदि इस प्रकार मेरा सामोप्य नहीं छोडनी हो,
तो फिर थोडा ही सही, वार्तालाप का रस क्यों नही अनुभव कराती हो ॥११॥

भद्र—कुमार, आपका यह कैसा मनोभाव है ? आपके लिये प्रिया का
वार्तालाप दुर्लभ नही है ।

कुमार—(सानन्द) तुमने क्या कहा ?

भद्र—यही तो कह रहा हूँ क्षीघ्र ही परिणीत होकर आपकी प्रेयसी आप
से वार्तालाप करेगी ।

कुमार—(उच्छ्वासके साथ) यह वाणो आश्वत्सनवचन होकर भी मेरे
मनोविकारों को न्यून कर रही है ।

अथवा—

न धान्धकारो नयनपट्टार्त्ता प्रदीपवार्त्ता विनिवर्त्तनीयः ॥ १२ ॥

भद्रः—केन पुननिवर्त्तते ?

कुमारः—प्रदीपेन ।

भद्रः—(बिहस्य) तर्हि प्रदीपमुपकल्पयामि । प्रतिष्ठस्व प्रभावती-
पाणिग्रहाय ।

कुमारः—एष प्रस्थितोऽस्मि, कतरः पुनर्वज्रपुरप्रवेशप्रकारः ।

भद्रः—नटवेपः ।

कुमारः—सविशेषमभिधीयताम् ।

भद्रः—श्रूयताम्, प्रागेव प्रसङ्गतो वज्रनाभस्याग्रतः शुचिमुख्याऽहमा-
रयातः । ततश्च कुतूहलिना दैत्याधिपतिना मदानयनार्थमभ्यर्धितया पूर्व-
नेव निमन्त्रितोऽहमासम् । सम्प्रति समागता एव देवहस्ता मदपदेशेन
कुमारमानेतुमिति ।

अथवा—नयन के तेज को परास्त करनेवाला अन्धकार प्रदीप की वार्त्ता
से नहीं हटाया जा सकता है ॥ १२ ॥

भद्र—फिर वह अन्धकार हटता किससे है ?

कुमार—प्रदीप से ।

भद्र—(हँसकर) अच्छा तो मैं प्रदीप प्रस्तुत करना हूँ । प्रभावती से
विवाह करने के लिये प्रस्थान कीजिये ।

कुमार—यह मैं खला, परन्तु यह तो बताओ कि वज्रपुर-प्रवेश का क्या
उपाय होगा ?

भद्र—नटवेप ।

कुमार—घाफ करके बताओ ।

भद्र—सुनिये, वज्रनाभ के आगे शुचिमुखी ने पहले ही मेरी प्रावृत्तिक चर्चा
की थी उसपर कौतुकी दैत्यराज ने शुचिमुखी से मुझे लाने की इच्छा प्रकट
की थी, तदनुसार शुचिमुखी ने मुझे निमन्त्रित किया उस क्रम में मेरे छल से
आपको लेने देवहंस आधुके हैं ।

कुमारः—अपि नाम वृत्तमेतत्तातयोरपि ज्ञातं स्यात् ।

भद्रः—किमन्यत्, आज्ञापितोऽस्मि बलदेववासुदेवाभ्यां यथा गद-
शाम्बप्रमुखै कियद्भिर्नाट्यवेदवेदिभिर्यदुभिः परिवारितं कुमारं नटोप-
करणेन प्रापयोदीचीपन्थानम् इत्याकर्ष्य कुमारः प्रमाणम् ।

कुमारः—तहि जातमवलम्बन मनोरथस्य (सविचिकित्सञ्च) कथं
नटवेपेण परपुर प्रवेष्टव्यम् ।

भद्र —न किञ्चिदेतत् । यतः—

कार्यापेक्षी जनः साक्षात् प्रतिरुद्धपराक्रमः ।

उपायेनाभिसन्धाय प्रवर्त्तयति पौरुषम् ॥ १३ ॥

कुमार —(घाटोपम्) भवतु वा,

आरादस्त्राभ्रधारानिकरनिपतनैर्दानवोद्दीप्तदावान्
सर्वान्निर्घाप्य तेषामपचयभसितैः सम्भृतैर्भृष्टभृष्टम् ।

कुमार—तब तो यह समाचार पिताजी तथा चाचाजी को भी ज्ञात हो
गया होगा ।

भद्र—और क्या ? बलदेव तथा वासुदेव ने मुझे आज्ञा दी है कि गद,
शाम्ब आदि कुछ नाट्यवेदज्ञ यदुकुमारो के साथ कुमार प्रद्युम्न को नटोरकरण के
साथ उत्तर के मार्ग से ले चलो । इसे सुनकर आप जैसा कहे ।

कुमार—तब तो मनोरथ को अवलम्बन मिल गया । (सद्य के साथ)
नटवेष में दूसरे की नगरी में कैसे प्रवेश करेंगे ? ।

भद्र—यह कोई बात नहीं है । क्योंकि—

कार्यार्थी जन जब देखता है कि उसकी साक्षात् शक्ति प्रतिरुद्ध हो रही है
तो वह उपाय लगाकर नाना छलो के बल पर पराक्रम प्रकट करता है ॥१३॥

कुमार—(गर्व के साथ) अथवा—

१) धीग्र अस्त्ररूप मेघ की धारा से दानवरूप दावामि शमित होगी, उनके
भस्म से मैं अपने नटवेषग्रहणकृत कलङ्क को मलमलुकर छुड़ाऊंगा, नवीन

नव्याद् वैधव्यस्त्रेदव्यसनसमुदयाद् सुरीणां वधूनां
वाष्पाग्भोभिः पतद्भिर्नटकपटकृतं लाञ्छनं क्षालयिष्ये ॥१४॥

भद्र — कथ प्रतिज्ञात एवासुरसक्षय्य कुमारेण ।

कुमार — प्रागेव प्रतिज्ञातमेतत् प्रभावती प्रार्थयमानेनान्तरात्मना ।

पर्य—

नास्मासु जन्माघधिवद्भवैरोधीरोऽनुमन्ता दनुजस्तनूजाम् ।

तरसर्वथा दुषिषद्दामिमानः क्षन्ता न मे क्रोधघनः कृपाणः ॥ १५ ॥

(षक्रोधम्) तदेप —

तत्पैतामहमोहजल्पितबलव्यामूढदुर्दान्त-

व्यूहत्रासितगोत्रभृत्पुरपरित्राणाय संजायताम् ।

द्वस्तः अस्तसमस्तघेरिषल्यव्यालोलमूर्द्धावलि-

व्यावत्स्यग्मणिक्वण्डलात्तसदसिन्ध्यापारपारङ्गनः ॥ १६ ॥

(नेपथ्ये)

वैधव्यरूप हुई असुर स्त्रियो के नेत्रत्रल उस कलङ्क प्रक्षालन-कार्य में उपयोगी
बिद्य होंगे ॥ १४ ॥

भद्र—क्यों कुमार ने असुर वध की प्रतिज्ञा भी करली ।

कुमार—प्रभावती की कामना करनेवाले मेरे हृदय ने पहले ही यह
प्रतिज्ञा करली थी, देखो—

हम लोगो पर अन्म से ही बैर भाव रखनेवाला दानवघोर अपनी कन्या को
हमारे साथ विवाह करने की अनुमति नहीं देगा, और इस अपमान को
हमारा कोपन कृपाण-त्रिसका अभिमान असह्य है—किसी प्रकार सहन नहीं
करेगा ॥ १५ ॥

(क्रोध से) यह मेरा-वैरीमण्डल के चञ्चल मूर्द्धसमुदाय में नाचने हुए
मणिक्वण्डलों को प्रेरित करनेवाले अस्त्रि की चलाते में पारङ्गम हाथ पितामह
के मोहवश दिये गये वरदान से बहित दानवों के भय से अस्त इन्द्रपुर का
परित्राणकारी होवे ॥ १६ ॥

(नेपथ्य में)

भो भो द्वारवतीवासिन. शोख्पाः, अथ खलु दूरदेशात्तरपर्यटन-
कुतूहली तत्र भवान् भद्रः सर्वानपि युष्मान् प्रास्थानिकापकरणेषु नियो-
जयति, तत् त्वर्यताम् त्वर्यताम् ।

भद्रः—(वाक्यम्) कथमस्मत्पारिपाश्विकोऽस्मदादिष्टमनुतिष्ठति ।

(पुनर्नेपथ्ये)

जं अञ्जो आणवेदि त उजेव अम्हेहि अणुचिट्टीअदि । जदो एदे
णवणिविलजलहरामन्दगम्भीरसदसन्दर्भसुन्दरा मिअङ्गा पडिसावी-
अन्ति । इमे अ अणदिचिरसमव्वुदुजोव्वणा णिवारिजन्त-चञ्चलत्तण-
सञ्चरन्त-सुन्दरीचरणभणभणन्तमञ्जु-मञ्जोरमुहरा सावीअन्ति कंस-
ताला । इमासु अ समुच्चलन्त-मुञ्जणामसिण-सरस-सरल-सञ्चार-धुरी-
णासु बीणासु णिवेसिअन्ति तन्तिआओ । इमाइं अ वुट्ट-वग्गच्छमिद्धु-
हंसमहिसगिद्धलुद्धअचक्कमक्कड्डाण पडिसीसआइ सब्जीअन्ति । एदे
असिअपीअहरिअणीतरत्त चित्तङ्गराअ-समुग्गा सम्भाविअन्ति एदाइं अ
मञ्जीर-वेयूर-कङ्कण-किङ्किणी-मडल-कुण्डलप्पमुहाइ विहूसणाइ समाहरी-
अन्ति । इमाइं अ विविहवण्ण-विण्णासाइ वसण-समुच्चआइं समुच्ची-
अन्ति । (यदायं आज्ञापयति तदेवास्माभिरनुष्ठीयते । यत एते नवनिविडजल-
धरामन्दगम्भीरशब्दसन्दर्भसुन्दरा मृदङ्गा प्रतिश्रूयन्ते । इमे च अनतिचिर-सव्युड-
यीवन-निवार्यमाण-चञ्चलत्व-सञ्चरत्सुन्दरीचरणक्षणशयायमानमञ्जुमञ्जोर-

हे द्वारकावासी नटगण, आज दूरदेश-पर्यटन के लिये उद्यत भद्र वार सभी
को यात्रोचित तैयारी करने का आदेश दे रहे हैं वे, अतः आप शीघ्रता करें ।

भद्र—(सुनकर) क्या, मेरा पारिपाश्विक भेरे आदेश का पालन कर
रहा है ?

(फिर नेपथ्य में)

आर्य का आदेश ही हमारा कर्तव्य है । वही हम कर रहे हैं । नव जन
धर की तरह मन्द गम्भीर शब्दकारी मृदङ्ग प्रस्तुत किये जा रहे हैं । अभी
अभी यौवनावस्था में पद-यास करनेवाली चञ्चल-चरण सुन्दरियों के चरणों
में बंधे हुए मञ्जोर की तरह शब्द करनेवाले खाल बनाकर देखे जा रहे हैं ।

मुसुरा श्रूयन्ते कास्यतालाः । आसु च समुच्छलन्मूच्छन्ता मसृण-सरससरलसञ्चार-धुरीणासु बीणासु निवेश्यन्ते तन्त्रिकाः । इमानि च वृत्त-वर्ण-ऋक्ष-भिषु हस महिष-गृद्ध-भ्रुम्भक चक्र मकराणि प्रतिषोषकानि सज्ज्यन्ते । एते अखिनपीतहरिननील रक्तचित्राङ्गरागसमुद्गका सभाव्यन्ते । एतानि च मञ्जीरवेयूर कङ्कणकिङ्किणी-मुकुट कुण्डलप्रमुलानि विभूषणानि समाह्रियन्ते । इमे च विविध वर्णवि-यास-यसनसमुच्चया समुच्चयन्ते ।)

कुमार — (आकर्ष्य—सकौतुकस्मितम्) वयस्य, सम्पन्ना तरेय सम-प्रापि सामग्री, तन्न किमपि कालक्षेपकारणम् ।

भद्र—एवमेतत् ।

चिरं विचारेण विलम्बयन्ति कर्माणि कालेन लघूभवन्ति ।

तदुद्यमं नीतिविनीतशीलाः शुभस्य शीघ्रं समुदाहरन्ति ॥ १७ ॥

कुमार.—एवमेतत्, विशेषतस्तु—

स्फीतस्फारित-शीतदीधितिकरे दुर्दर्शनीयेऽम्बरे

मूच्छन्ता से भरे सरसवादिनी बीणाओं पर तन्त्री बटाई जा रही है । वृत्ताकार, वर्णाकार तथा भिषु, ऋक्ष, हस, महिष, गृद्ध, चक्र, मकर, आदि आकारवाला सीसे सजाये जा रहे हैं । काले, पीले, हरे, नीले रक्त, तथा चित्रवर्ण के अङ्गराग से पूर्ण डिन्वे सभालकर रखे जा रहे हैं । मञ्जीर, वेयूर, कङ्कण, करधनी, मुकुट, कुण्डल आदि गहने इकट्ठे हो रहे हैं । वर्ण में नाना तरह के वस्त्र जमा किये जा रहे हैं ।

कुमार—(सुनकर, कौतुकपूर्ण हँसी के साथ) मित्र, तुम्हारी सारी सामग्री प्रस्तुत हो गई अतः विलम्ब का कोई कारण नहीं है ।

भद्र—यही बात है ।

चिरकाल तक विचारते रहने से विलम्बित कार्य हलके हो जाते हैं अतः नीतिवेत्ताजन उद्यम के सम्बन्ध में 'शुभस्य शीघ्रम्' कहते हैं ॥ १७ ॥

कुमार—यही बात है, खास करके—

शीत किरण की चादनी से आकाश दुर्दर्शनीय हो रहा है जाती पुष्पो पर

जातीजालङ्कसञ्चरन्मधुकरधेणीघने कानने ।

विश्लेषञ्चर विश्लथैरवयवैर्दुर्नो मनोजन्मना

को नाम क्षमते क्षणं कलयितुं कालातिपातं जनः ॥ १८ ॥

अथ कथय वयस्य, किङ्किमाख्यातवती शुचिमुखी ।

भद्र—शृणु श्रोतव्यम् ,

सहचरीनिवह्नेन सरोजिनी-

दलमृणालसरोरुहशैबलै ।

सपदि शून्यतराणि सरोवरा-

प्यपि कृतानि कृते हरिणीदृशः ॥ १९ ॥

(सकलम्) अथवा—

कस्तां तां कथयेद्दीर्णहृदयो युष्मत्कृते यादृशीं

हृसी शंसति मान्मयीमुदयिनीमेणीदृशो दुर्दृशम् ।

एतत् किन्नु निवेदये यदुकुलालङ्कार, शङ्काकुलो

जीवन्ती तव लाचनातिथिरपि प्रायेण जायेत सा ॥ २० ॥

सञ्चरण परामर्श अनर्से के समुदाय से बन-शान्त पूण हो रहा है ऐसे समय में वियोगजनित सताप से काम पीडित जन क्षम भर का भी विश्वास किस प्रकार से सहन कर सकता है ॥ १८ ॥

मित्र यह तो बताओ कि शुचिमुखी और क्या कहती थी ।

भद्र—सुनन योग्य बात सुन लीजिये ।

हरिण नयना प्रभावती की सखियों ने सारे कमलिनो के पत्ते, मृणाल तथा शैबल को लेकर प्रभावती के विरहकृत सताप को दूर करने में लगा दिया है जिससे वहाँ के सरोवर सूख लगते हैं ॥ १९ ॥

(कठनापूण स्वर मे) अथवा—

हृसी ने आपके वियोग में होनेवाली प्रभावती की जैसी दशाओं का वर्णन किया, उसे अपनी छाती को बिना फाटे कौन कह सकता है ? हे यदुकुलभूषण मुझे इतना ही कहना है कि वह सु दृष्टी बोधित ब्रह्मस्था में आपके द्वारा देखी जा सकेगी, मुझे इसमें भी सन्देह है ॥ २० ॥

कुमारः—(वैचित्र्य नाटयन्) विरम विरम, नैताप्रदाकर्णयितुमप्युत्सहे,
तत्किमतः परं क्षणमपि त्रिलम्बेन प्रियायाः सापराधमात्मान करोमि ।
कः कोऽत्र ?

(प्रविश्य)

दौवारिकः—कुमार, एसो न्हि । (कुमार, एषोऽस्मि ।)

कुमारः—मञ्जीरक, आहूयतामार्यगदः शाम्बश्च ।

दौवारिकः—ज कुमारो आणवेदिति (निष्क्रान्तः) (यत् कुमार आज्ञा-
पयति ।)

कुमार —वयस्य, अस्मासु नटसु कस्य का भूमिका ?

भद्र —सुघटित इह नाट्यनायकम्वं

तव गुणवान् गद् एत्र पीठमर्दः ।

हसनरसनिवेशपेशलोऽय

विशतु विदूषकतामुपेत्य शाम्बः ॥ २१ ॥

कुमार.—(सरोडम्) कथमस्मदर्थमेतयोरप्येतादृशो व्यापारः ।

कुमार—(मोह का अभिनय करते हुए) सको सको, मैं इन बातों को सुनने का भी साहस नहीं रखता हूँ। क्या इतना सुनने के बाद भी क्षण भर का भी विचित्र करके प्रियतमा के प्रति अपने को अपराधी बनाऊँ ? कौन है यहाँ जो ?
(प्रवेश करके)

दौवारिक—कुमार, यही मैं उपस्थित हूँ ।

कुमार—मञ्जीरक, आर्यं गद तथा शाम्ब को बुलाओ ।

दौवारिक—कुमार की आज्ञा । (जाता है)

कुमार—मित्र, हम लोग जो नाटक करेंगे, उसमें किस को क्या बनना है ?

भद्र—आप उस नाट्य के नायक होंगे, गद् आपके गुणवान् पीठमर्द सहायक होंगे, शाम्ब हस्त्य कला में अधिक प्रवीण हैं अतः वह विदूषक बनकर प्रवेश करेंगे ॥ २१ ॥

कुमार—(लज्जित भाव से) क्यों, हमारे लिये इन लोगों को भी ऐसा व्यापार करना पड़ रहा है ।

भद्रः—अस्त्यत्रापि कौतुकम्,
तयोः कृते भूतलरत्नभूते
सुते सुनाभस्य महासुरस्य ।

प्रभावतीवागनतीतकृत्ये
निःशङ्कमङ्गीकुरुते विहङ्गी ॥ २२ ॥

कुमारः—(सस्मितम्) अहो सविधानवैदग्ध्य विहङ्गमाया ।
(प्रविश्य)

दौवारिकः—कुमार, एदे गदसम्बप्पमुहा जदुकुमारा दुआरदेसो-
पत्थिटा कुमारस्स विजयपत्थानमवेक्खन्ति । (एते गदसाम्बप्रमुखा यदु-
कुमारा द्वारदेशोपस्थिता कुमारस्य विजयप्रस्थानमपेक्षन्ते ।)

कुमार — (सोल्लासम्) एष प्रस्थितोऽस्मि । (इत्युत्तिष्ठति)
(नेपथ्ये वैतालिक)

जयति जयति कुमारः ।

त्रैलोक्यप्राणलक्ष्मी, शतमखकुलिशं श्रीपतेश्चापि चक्र
काले काले श्रयन्ती कश्चिदपि न पदं कुर्वती निर्वृताऽभूत् ।

भद्र—इसमें भी रहस्यमय कौतुक छिपा है, गद तथा साम्ब के लिये भी भूतलरत्नभूता दो कन्यायें शुचिमुखी द्वारा ठीक कर ली गई हैं, वे दोनों सुनाभ की लक्ष्मिया हैं, उन्हें प्रभावती की आज्ञा नहीं टालनी है ॥ २२ ॥

कुमार—(हँसकर) शुचिमुखी की गोटी बैठाने की कला पर आश्चर्य होता है ।

(प्रवेश करके)

दौवारिक—कुमार, गद, साम्ब आदि यदुकुमार द्वार देश में उपस्थित होकर कुमार की विजय यात्रा की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

कुमार—(प्रसन्नता से) यह मैं बला । (उठते हैं)
(नेपथ्य में वैतालिक)

कुमार की जय हो ।

त्रैलोक्य प्राणलक्ष्मी कभी इन्द्र के वज्र में तथा कभी कृष्ण के चक्र में रहकर कहीं एक जगह नहीं रह पाने के कारण शान्ति से नहीं रह सकी थी,

एषा शेषाहिभोगोद्भटभुजभजनश्रीभरखाजमाने
 म्याने युष्मत्कृपाणे स्थितरवसतिर्वीनहृद्वैतमास्ते ॥ २२ ॥
 अपि च—

श्रुत्वा मन्मथजन्मनस्तव नवं लावण्यमुत्कम्पिनी
 पौलोमी पुलकाङ्कुरेण कुर्वते गण्डस्थलीमण्डनम् ।
 प्रस्तुर्याथ भयानकाद्भुतमिदं युष्मद्भुजोष्मायितं
 व्याजात्तत्पुरतस्तथा सुरपतेरह्वय निह्वयते ॥ २३ ॥

भद्रः—(आकर्ष्यं) अभिनन्दनीयमेतत्, तथाहि :—

यत्राद्भुते कर्मणि साहसैक-
 चित्ताः प्रवृत्ताः पुरुषा भवन्ति ।
 पुराविदो निर्भरतैकमूलं
 तत्रानुकूलं शकुनं स्मरन्ति ॥ २४ ॥
 (इति निष्क्रान्ता' सर्वे)

प्रद्युम्नप्रयाणं नाम तृतीयोऽङ्कः



वह अब शेषनाग के सहस्र आपके विशाल बाहु में ।थय पाने के कारण
 घोभाशाली आपके कृपाण में निवास पाकर हादिक दुविधे से रहित हो
 रही है ॥ २२ ॥

और—काम ने आपके रूप में जन्म लिया, आपके रूप को सुनकर उगने-
 वाले रोमाञ्च से इन्द्राणी के कपोल भर उठने हैं, तब इन्द्राणी किसी भयानक
 या अद्भुत बात का प्रसङ्ग छेड़ देती हैं और उसी वहाने से अपने रोमाञ्चित
 कपोल को इन्द्र की दृष्टि से छुपा लेती हैं ॥ २३ ॥

भद्र—(सुनकर) यह खुशी का विषय है । क्योंकि—

साहसी पुरुष जिस अद्भुत कार्य में प्रवृत्त होते हैं उसमें आत्म-निर्भरता
 को शकुन माना जाता है ।

(सभी जाते हैं)

प्रद्युम्नप्रयाण नामक तृतीय अङ्क समाप्त



चतुर्थोऽङ्कः

[ततः प्रविशति दौवारिकः]

दौवारिकः— (समन्तादवलोक्य) कथं मिलाअन्नदीविआ पहादा विहा-
वरी विअ रङ्गभूमी ? कथं अन्तरिदो ज्जेव विमुक्कभूमिएहि लोअलोअण-
मणहरेहि चन्दकरेहि विअ नडेहि ? कथं विमुक्कं ज्जेव सदोमण्डलं गअणं
विअ तारआणिअरेहि अज्जविअड्ढमिस्सेहि । हीणामहे महाराअ-वज्ज-
णाहस्स कौदूहलपूरणुम्मुहीए सुइमुहीए दूरदीवन्तरादो आणीदा रङ्गो-
वजीविणो साहाअणवेपु अछवी आणे अवसाणुबन्धाइं पबन्धाइं अहिण-
अन्तित्ति सुणिअ कोदूहलाकट्टिएहि पोरजाणपदेहि तत्थ तत्थ ज्जेव गदुअ
णच्चणालोअणुम्माएण केत्तिआओ रत्तिआओ उण्णिदूदेण गमअन्तेहि
अप्पिदाइं अत्तणो णिरवसेसाइ धणवसणविहूसणाइ । संपदं उण कोदू-
हलपरव्वसेण राइणा वज्जणाहेण सबहुमाणमाहूदेहि तेहि णडेहि
एत्थ एककं ज्जेव संकरसरासणारोवणं नाम पबन्ध अहिणीअ तहा
सहावओ परवसीकदो जधा तेण मोहमुद्धिअहिअएण गअतुरअभूसण-

(दौवारिक का प्रवेश)

दौवारिक—(चारो ओर देखकर) बयो, जब दीव म्लान होने लगते हैं
ऐसी प्रभात रात्रि की समता को रङ्गभूमि प्राप्त कर रही है ? लोगो के नयनों
को धाकृष्ट करनेवाले चन्द्रकिरण के सदृश नटगण छिप गये क्या ? जैसे आकाश
के तारे प्रातः काल में दूर चले जाते हैं उसी तरह यह सभासद गण दूर चले गये ।
हाय ! धिक्कार है, महाराज बच्चनाभ के कौतूहल को पूर्ण करने में तत्पर शुवि-
मुखी द्वारा दूरवर्ती द्वीपान्तरो से लाये गये अभिनयजीवी नटगण साधारण वेप
में भी समस्त प्रबन्ध का अभिनय करते हैं इस बात को सुनकर कुतूहलपरवरा
नगरवासियों ने वहाँ जाकर कुछ रात्रि जागरण द्वारा विता दीं, इस समय
उन लोगो ने अपने सारे धन-वस्त्र आभूषण (नटों को देकर) खाली कर दिये हैं ।
अब द्वितीय बार उत्पन्न कौतुक से पराधीन होकर महाराज बच्चनाभ ने उन नटो
को सादर बुलाया है । बुलाने पर आये हुए उन नटों ने 'गद्धर-शारारोपण' नामक

वसणाइ पारितोसिआइ पसादीकरन्नेण ताण पडिवादिआ विरलावसेसा-
रउजलञ्जी, अग्गदो उण जाणांमि रम्भाहिसरणादीनि पबन्धाइ दसअन्तेहिं
णिरवसेस समाहरिदा दानवलञ्जी। (कथ म्हायद्दीपिका प्रभाता विभावरीव
रङ्गभूमि । कथमन्तरितमेव विमुक्तभूमिकैर्जोकलोचनमनोहरै चन्द्रकरैरिव
नटै । कथ विमुक्तमेव सदोमण्डल गगनमिव तारकानिकरै आर्यविदग्धमिश्रै ।
हा धिक्, महाराजवज्जनाभस्य कौतूहलपूरणो-मुख्या शुचिमुख्या दूरद्वीपान्त-
राशानीता रङ्गोपजीविन साधारणवेपा अपि सानुबन्धान् प्रबन्धान् अभिनयन्तीति
ध्रुत्वा कौतूहलाकृष्टै पौरजानपदैस्तत्र तत्रैव गत्वा नसंतालोकनो-मादेव कियती
राश्रीरुन्निद्रेण गमयद्भिरपीदानीम् आत्मनो निरवशेषाणि धनवसन विभूष-
णानि । साम्प्रत पुन कौतूहलपरवशेन राज्ञा वज्जनाभेन सबहुमानमाहूत्रैस्त्वै
नटैरत्रैकमेव शङ्करशरासनारोपण नाम प्रबन्धमभिनीय तथा स्वभावतः पर-
वशीकृतो यथा तेन मोहमुद्रितहृदयेन गत्रतुरगभूषणवसनानि पारितोषिकाणि
प्रसादीकुर्वता तेभ्य प्रतिपादिता विरलावशेषा राज्यलक्ष्मी, अग्रतः पुनर्जानामि
रम्भाभिसरणादीन् प्रबन्धान् दशयद्भि निरवशेष समाहृता दानवलक्ष्मी ।)

(प्रविश्य)

सुवदना — आहरन्तु आहरन्तु ।

दौवारिक — (साशङ्क स्वगतम्) किं एत प्रिरद्धो विअ सवादो, अहद्या-
पडिहदममङ्गलम् । (प्रकाशम्) सुवदने किं प्रिअ । (किम् एष विरद्ध इव
सवाद । अपवा प्रतिहनममङ्गलम् । सुवदने, किमिव ? ।)

एक ही प्रबन्ध का अभिनय किया है उतन ही से महाराज वज्जनाभ इस प्रकार
वशीभूत हो गये हैं कि उनका हृदय मोहपरवश हो गया है, उन्होंने इतना
हाथी, घोडा भूषण वस्त्र, उन लोगों को पारितोषिक में प्रदान किया है कि
राजलक्ष्मी अल्पशेष हो रही है । आगे चलकर रम्भाभिसरण आदि प्रबन्धों का
अभिनय दिखाकर उन नटों न सारी राजलक्ष्मी पा ली है अब शेष कुछ नहीं
रहा है ।

(प्रवेश करके)

सुवदना — ले आवें ले आवें ।

दौवारिक — (साशङ्क भाव से, स्वगत) यह विपरीत सा लगनवाला
कैसा सवाद है ? अपवा — अमङ्गल शान्त हो । (प्रकाश) सुवदने क्या है ?

सुवदना—आहरन्तु पडीहारा एदाइ अन्तेवराहरणाइ । (आहरन्तु प्रतीहारा एतान्यन्त पुराभरणानि ।)

दौवारिक—कस्स ? (कस्य ?)

सुवदना—नडस्स । (नटस्य) ।

दौवारिक—कह अन्तेउरेहिं पि नञ्चण एलोइइ । (कपमन्तपुरैरपि नत्तं प्रलोकितम् ।)

सुवदना—अह इ, आप्सेण भट्टिणो वादाअणगदाहिं वसुमदीप्पमुहाहिं महिस्सीहिं पहावदीसणाहाहिं च भट्टिदारिआहिं सव्व समालोइइ । तदो उण सुइमुहीवअणुन्लासिदाहिं ताहिं ताण कुसिलवाण पसादीवआइ एदाइ तत्कालधरिआइ आहरणाइ । (इत्थाभरणभूत पेट्टलकमपंपति) (वष किम्, आदेशेन भट्टिन्या वातायनगताभिर्वसुमतीप्रमुखाभिमहिषीभिः प्रभावतीसनापाभिश्च भर्तृदारिकाभिः सर्वे समालोकितम् । तत पुन घुचिमुखी वचनोल्लासिताभिस्ताभिस्तेषां कुशीलवाना प्रसादीकृतान्येतानि तत्कालधृतायाभरणानि ।)

दौवारिक—(परितोऽवलोक्य) कह उज्जगरणीसहा सुवन्ति सअला वि पडीहारा, एक्को ज्जेव अह जग्गेमि, ता कह सुण्णं राअदुआर परिट्टइ

सुवदना—प्रतीहारगण अन्ते पुर के आभरण ले आवें ।

दौवारिक—किसके लिये ?

सुवदना—नटो के लिये ।

दौवारिक—क्यों, अन्त पुर के लोगों ने भी नाचना देखा है ?

सुवदना—और क्या ? महारानी के आदेश से वसुमती आदि द्रवियों ने और प्रभावती आदि राजकुमारियों ने सारा नर्तन देखा है । अनन्तर घुचिमुखी के वचन से उत्साहित होकर उन लोगों ने तत्काल पहने गये अपने सारे आभरण उन नटों को इनाम में दे दिया है । (आभरण का वक्सा दिखलाता है)

दौवारिक—(चारों ओर देखकर) क्यों, रात्रि जागरण से थान्त सारे प्रतीहार सो रहे हैं, मैं ही अकेला जाग रहा हूँ । फिर किस प्रकार से मैं राजद्वार की

गमिस्सं, मा कोवि एत्थ वारणिज्जो पवेसं लहेदित्ति । (कथमुज्जागर-
नि सहा स्वपन्ति सकला भवि प्रतीहाराः, एक एवाह जागमि । तत्कथं शुभ्य
राजद्वार परित्यज्य गमिष्यामि मा कोपि वारणीयोज्ञ प्रवेश लभेतेति ।)

सुवदना—गच्छ, ण किम्पि एदं एत्थ अणिवारिदो सच्चन्दभमरो जइ
पविसइ को अण्णो दुब्बिणीदो वज्जणाहस्स घर पविसदु । अहम्पि-
डान्नुदिआ गदुअ सुवामि । (गच्छ न किमप्येतत् अत्र अनिवारित स्वच्छन्द-
भ्रमरो यदि प्रविशति कोऽप्यो दुर्विनीतो वज्जनाभस्य गृह प्रविशतु । अहमपि ..
गत्वा स्वपिमि ।)

दौवारिक — एव भोइ । (इति निष्क्रान्तौ) (एव भवतु ।)

(प्रवेशक)

[ततः प्रविशति कुसुममालाकरण्डहस्ता तरलिका]

तरलिका—सहि परहूदिए, स्सलिद रहस्स । (सखि, परभृतिके,
स्खलित रहस्यम् ।)

परभृतिका—सहि कि पमुद्धि । (सखि, कि प्रमुग्धासि ?)

तरलिका—ता किम्पि अगतो पसाहिद पओअण । (तरिकमप्यप्रतः
प्रसाधित प्रयोजनम् ।)

सू.य छोड कर चला जाल ? कही ऐसा न हो कि कोई अनभिप्रेत पुरुष प्रवेश
कर जाय ।

सुवदना—जाओ, ऐसी कोई बात नहीं है । यहाँ कोई अनभिप्रेत
स्वच्छन्द भ्रमर भी नहीं प्रवेश कर सकता है, दूसरा कौन अविनीतो वज्जनाभ के
घर में प्रवेश करने का साहस करेगा ? मैं भी जाकर .. सीती हूँ ।

दौवारिक—ऐसा ही हो । (दोनों जाने हैं)

(प्रवेशक)

(इसके बाद फूलमाला की टोकरी लिये तरलिका
तथा एक दूसरी दासी का प्रवेश)

तरलिका—सखि परभृतिके, रहस्य छुल गया क्या ?

परभृतिका—सखि तुम क्यों पगली हो रही हो ?

तरलिका—तो क्या कुछ आगे का बाम हुआ है ?

परभृतिका— किम्पि स्ति किं कहेसि। तुम्हाण णिओएण मए तहा तहा ताण गदसवाण गुणा चन्दवदी-गुणवदीण समकरे आअक्खित्त जहा दुल्लहाणुराअ मणीहवुम्माअ-मोहदाण एदाण, रणम्पि सम्पट मअणु ळ्वेअवअण विणेदु ण पारेन्ह । ता कघेहि अत्थि कोवि एत्थ ताण पवेसा वाओत्ति । (किमपीति कि कथमसि । युत्माव नियोगेन मया तथा तथा तयोर्द साम्बयोर्गुणाश्च द्वावतीगुणवत्यो समजे आख्याता यथा दुर्लभानुरागमनोभवो मादमोहिताभ्यामेताभ्या क्षणमपि साम्प्रत मदनोद्देगव्यसन विननु न पादति । तत्कथय अस्ति कोपि अत्र तयो प्रवेशोपाय इति ।)

तरलिका — (स्मिन्वा) अह जइ सो सवुत्तो जनेव होद । (अब यदि स सवृत्त एव भवति ।)

परभृतिका— (चिर विचिन्त्य) हू, अग्रगद एद । अहो सुसर्घाड्ढा पीदी । सहि ममापि एस वित्तको जनेव आसि णहु एआरिसी लावण-लक्ष्मीसणाहा महानुभावता नडाण सभावीअदि । ता विसेसिअ कघेहि को काए । (हू अवगतमेतत्, अहो सुसङ्घटिता नीति । सखि, ममापि एष वित्तकं एवासीत् । न खलु एतादृशी लावण्यलक्ष्मीसनाया महानुभावता नताना सम्भाव्यते । तत् विशिष्यं कथय क कस्या ?)

परभृतिका— कुछ क्यों कहती हो ? तुम लोगों के आदेश से हमने गद तथा शाम्ब के आगे चन्द्रावती और गुणवती के गुणों का इस रूप में वर्णन किया कि वे दोनों गद शाम्ब दुर्लभ प्रेम एवं कामदेव के उन्माद के वशीभूत हो उठ, इस समय वे कामदेव को रोकने में असमर्थ हो रहे हैं । अब बताओ कि उनके यहाँ प्रवेश का कोई उपाय है ?

तरलिका— (हँसकर) और यदि वैसा हो ही गया हो ?

परभृतिका— (दरतक सोचकर) हाँ, समझ गईं । अहा नीति सफल हो गई । सखि मैं भी ऐसा ही तर्क करती थी । इतनी मुश्किल तथा ऐसी महानुभावता नरों में नहीं हो सकती है । साफ करके बताओ कि कौन किसका हुआ ?

तरलिका—सो सकर सरासणारोवओ सिरिपञ्जुणो पहावदीए, सोमिति भूमिआवट्टिदो सवो अ गुणवदीए । (स चङ्करशरासनारोवकः श्रीप्रद्युम्न प्रभावत्या, सौमित्रिभूमिकावस्तिप साम्बश्च गुणवत्या ।)

परभृतिका—अहो कज्जपरवसाण सप्पुरिसाण पि महाणुभात्तण-विसयादी वेसपरिग्गहो, सहि क्हिं उण सा सुरलोअहसी । (अहो कार्य-परवसानामपि सत्पुरुषाणा महानुभावत्वविषवादी वेसपरिग्रह, सखि, कपय क्व पुन सा सुरलोकहसी ।)

तरलिका—सा क्खु सपट उजेव पहावदी-मुद्दिआसणाह मअणलेहं सिरिपञ्जुणसआसादो घेत्तण भट्टिदारिआसआस गच्छन्ती अम्ह-मिलिदा आसि । (सा सल्लु साम्प्रतमेव प्रभावनीमुद्रिकासनाय मदनलेख श्री-प्रद्युम्नसकाशाद् गृहीत्वा भर्तृदारिकासकाश गच्छन्ती मया मिलिता आसीत् ।)

परभृतिका—ता जाणेमि मुद्दिआए उजेव कदो सुइसुहीए अन्तेउरेसु आहरणदानुउनोओ । (तत् जानामि मुद्रिकयैव कृत शुचिमुख्या अन्तपुरेषु आहरणदानोद्योग ।)

तरलिका—अह इ । (अय किम् ?)

तरलिका—वह महादेव के धनुष का रोपण करने वाला प्रद्युम्न प्रभावती का, और लक्ष्मण की भूमिका करने वाला शम्ब गुणवती का हुआ ।

परभृतिका—अहा, कार्यपरवश होने के कारण वैसे सत्पुरुषों को भी अपनी महानुभावता के विषय वेप को अपनाना पडा । सखि, यह तो कहो कि वह देवजोकहसी शुचिमुखी कहाँ गई ?

तरलिका—वह तो अभी अभी प्रभावती की अङ्गुलीयमुद्रा से अद्वित मदनलेख प्रद्युम्न के पास से लेकर राजकुमारी के पास जाती हुई मृते मिली थी ।

परभृतिका—तो मैं समझती हूँ कि उस अङ्गुलीयमुद्रा ने ही शुचिमुखी के लिये अन्तपुर मे ले जाने तथा वहाँ ले जाने का उपाय कर दिया है ।

तरलिका—और क्या ?

परभृतिका—सहि, अस्थि कोवि से समकखदंसणेण पहावदीए सरीर-सन्तावम्मि विसेसो । (सखि, अस्ति कोपि तत्समकषदशनेन प्रभावत्याः शरीर-सन्तापे विशेषः ?)

तरलिका—(निःश्वस्य) अस्थि विवरीदो विसेसो जइ पिअसहिं जीआ-विट्ठुं पारेम्ह दुक्करं खणान्तराईं नही अन्ति । (अस्ति विपरीतो विशेषो यदि प्रियसखीं जीवयितुं पारयामि दुष्करं क्षणान्तरे नास्ति ।)

परभृतिका—(सचिन्तम्) ता तुरिअं से समीवं गच्छध । (तत्त्वरिधं तत्समीपं गच्छत ।)

(इति परिक्रामतः)

परभृतिका—(विलोक्य) सहि एस कुसुमपरिमलहरिज्जन्तहिअओ तुमं अणुसरदि महुअरो । (सखि, एष कुसुमपरिमलह्रियमाणहृदयस्त्वामनु-सरति मधुकरः ।)

तरलिका—(विलोक्य सकौतुकस्मितम्) कधं एस णिलीणो उजेव मालदी-मालामव्वम्मि । ता एदिणा सणाहं उजेव मालदीमालिकां उवणीअ भट्टिदारिआए कोतूहलमुप्पादेमि । तुमं उण परहुदिए गदुअ समीहिदं साहेहि । (कथमेव निलीन एव मालतीमालामध्ये । तद्वैतेन सनायामेव मालती-

परतिभृका—सखि, इस प्रत्यक्ष दर्शन से प्रभावती के शरीर सन्ताप में कुछ अन्तर पड़ा है ?

तरलिका—(दीर्घ निःश्वास लेकर) विपरीत अन्तर हुआ है, यदि मैं प्रिय सखी को जीवित रख सकूँ, मेरे लिये तत्काल बड़ा दुष्कर कार्य उपस्थित है ।

परभृतिका—(चिन्तित भाव से) तुम शीघ्र उसके पास जाओ ।

(दोनों का प्रस्थान)

परभृतिका—(देखकर) फूल की सुगन्ध से आकृष्ट हृदय यह भ्रमर तुम्हारा अनुसरण कर रहा है ।

तरलिका—(देखकर, कौतुकपूर्ण हसी के साथ) क्यों, यह भ्रमर मालती-माला के भीतर छिप ही गया या ? अस्तु, इस भ्रमर से मुक्त रूप में

मालिकामुपनीय भर्तृदारिकाया कौतूहलमुत्पादयामि । त्वं पुन परभृतिके गत्वा समीहित साधय ।)

परभृतिका—(निष्क्रान्ता) ज पिशसही आणवेदि त्ति । (यत् प्रियसखी आज्ञापयति ।)

तरलिका—(परिश्रम्यावलोक्य च) वध एसा चित्तसालि अन्तर-विष्णासिआणेअवण्णमणिसिलाविचित्तवेदिआ-रित्थारिअसेवालसअणी-अम्मि तन्दाणिमीलिद-त्तोअणा भट्टिदारिआ चञ्चूपुडोग्गाहिअ पत्तिआ सपद जेव संपत्ता पडिअहसी अ पलोइअदि । (कथमेवा चित्रशालि-कान्तरविग्यासितानेकवर्णमणिसिलाविचित्रवेदिकाविस्तारितशैवालशयनीये तन्द्रा-निमोलितलोचना भर्तृदारिका चञ्चूपुरोद्गाहितपत्रिका साम्प्रतमेव सम्प्राप्ता पण्डितहसी च प्रलोकयते ।)

(तत प्रविशति ययानिदिशा प्रभावती शुचिमुखी च)

शुचिमुखी—(विलोक्य सकृदणम्) अहो चरमोऽयमस्या विरहवेदना-रिपाक , तथाहि —

तापस्त्रिद्यत्सरसविसिनीपत्रसंसक्तगात्रा

विधास्रेव घुमणिकिरणम्नायमाना मृणाली ।

ही इस मालती को राजकुमारी के पास ले जाकर उनका कौतुक उत्पन्न करूगी । परभृतिके, तुम जाकर अपना काम करो ।

परभृतिका—प्रियसखी की जैसी आज्ञा । (जाती है)

तरलिका—(चलकर, आगे देखकर) बयो, यह चित्रशाला के भीतर अनेकवर्ण मणिसिला पर फैलाये गये शैवाल की शय्या पर तन्द्रितनयना राजकुमारी, और बीच में पत्रिका लिये तत्काल आगता पण्डित हसी दीख रही है ।

(ययानिदिष्ट रूप मे प्रभावती तथा शुचिमुखी का प्रवेश)

शुचिमुखी—(देखकर करुणभाव से) अहा, इसकी विरह वेदना की यह आखिरी स्थिति है । क्योंकि—ताप से म्लायमान कमलिनीपत्र पर इसकी देह सट गई है, इस समय यह सूपविरणों से म्लान रूप मे वित्रित मृणाली के

वारंवारोच्छलित विषमोन्मूर्च्छनामीलिताक्षी
साक्षीकृत्य स्फुरितमुरसो जीविते ताम्यतीयम् ॥ १ ॥

यत्सत्य जीवितमेतस्या निश्वास एव निवेदयति, किञ्च—

न केवलं जीवितमेतदीयं

निवेद्यते निश्वासितानिलेन ।

विनामुना सन्निहितासु कस्याद्

वक्ता मृणालीषु विशेषमस्या ॥ २ ॥

(चिर निरूप्य) अहो नि स्पन्दता ! अथवा—

उरसि विसिनीपत्रं कण्ठे सरोजदलावली

घल्लययुगली पाणिद्वन्द्वे मृणालविनिर्मिता ।

अयमयमियान् भारस्तन्वी मृदुर्मदनालसै-

रियमतिकृशैरङ्गस्पन्दे कथं प्रभविष्यति ॥ ३ ॥

याददिमा बोधयामि (इति पक्षाब्धलेन बीजयति) ।

सदृश प्रतीत हो रही है। बार बार उमड़नेवाली मूर्च्छा से इसकी आँखें मीलित हो रही हैं। हृदय के स्फुरण की साक्षी बनाकर यह अपने जीवन पर कुपित हो रही है ॥ १ ॥

यह सत्य है कि इसके निश्वास ही इसकी जीवितावस्था के प्रमाणस्वरूप हैं। और—

इसका निश्वास केवल इसके जीवित होने की सूचना ही नहीं देता है, यदि निश्वास नहीं रहे तो इस राजकुमारी तथा सन्निहित मृणाली में विशेष को कौन कह सकेगा ? ॥ २ ॥

(देर तक देखकर) अहा, कैसी निस्पन्दता है ! थपका, छाती पर कमल के पत्ते निहित हैं, कण्ठ में भी कमलपुष्प को पल्लुरियाँ रखी गई हैं, दोनों हाथों में मृणाल-निर्मित घल्ल डाल दिये गये हैं। इतने भार के रहने हुए यह कुशाङ्गी अपने कृश तथा कामालस शरीरावयवों के द्वारा सञ्चार करने में किस प्रकार समर्थ हो सकती है ॥ ३ ॥

सब तक मैं इसे जगाती हूँ। (पल से हवा करती है)

प्रभावती—(समुल्लसन्) सहि तरलिके, मुञ्च मुञ्च, न कखु वीइदं सुहावेदि । (सखि तरलिके, मुञ्च मुञ्च, न कखु वीजितं सुखपति ।)

तरलिका—(उपसृत्य) एसा कखु अह मालइमालिअं घेत्तुण संपदं उजेय संपत्तुमिह, तुम उण पक्खञ्जलेण सुइमुही वीअदि । (एसा सत्वहं मालतीमालिकां गृहीत्वा साम्प्रतमेव सम्प्राप्तास्मि, त्वा पुनः पक्षाञ्जलेन शुचिमुखी वीजयति ।)

शुचिमुखी—(जनान्दिकम्) तरलिके, अस्ति किमपि कुसुममालिकायाम् ?

तरलिका—सहि अरिथि भमरो । (सखि, अस्ति भ्रमरः ।)

शुचिमुखी—(सस्मितम्) तर्हि समक्ष एव कुमारस्य प्रभावतीं व्याहारयामि ।

तरलिका—(आश्चर्यम्) कथं सो उजेव एसो । (कथं स एव एयः ।)

शुचिमुखी—किमन्यत् । (प्रकाशम्) अयि भर्तृदारिके, किमिदम् ? वन्मीलय लोचने ।

प्रभावती—(निश्चयम्) किं वन्मीलिअअङ्गीए पेच्छिदव्वं । (किमुन्मीलिताद्या प्रेषितव्यम् ।)

प्रभावती—(मुंह घुमाकर) सखि तरलिके छोडो मुझे—छोडो, हवा मुझे सुख नहीं दे रही है ।

तरलिका—(समीप जाकर) मैं मालतीमाला लेकर अभी आई हूँ, तुझे तो शुचिमुखी अपने पंख से हवा कर रही है ।

शुचिमुखी—(डिपाकर) तरलिके, क्या मालतीमाला मे कुछ है ?

तरलिका—हाँ सखी, भ्रमर है ।

शुचिमुखी—(मुस्कुरा कर) तब तो कुमार के सामने ही प्रभावती से कहवा देती हूँ ।

तरलिका—(आश्चर्य के साथ) क्यों, यह भ्रमर वही है ।

शुचिमुखी—और क्या ? (प्रकट) हे राजकुमारी, यह क्या ? देखो तो आखें खोलो ।

प्रभावती—(लंबी सास लेकर) आख खोल कर मैं क्या देखूँ ?

शुचिमुखी—पश्य, प्रेक्षणीयमुपदर्शयामि ।

प्रभावती—सहि, दुल्लहाहिणिवेसमोहिदाए कि मे पेच्छणिञ्ज ।
(सखि, दुर्लभाभिनवेशमोहितायाः कि मे प्रेक्षणीयम्)

शुचिमुखी—

पुरश्चिरमनोरथप्रणयिना तव प्रेषितं

सखि प्रणयभूषितं मदनलेखमालोकय ।

क्षणाद्विरहवेदनापनयनैकसिद्धौषधे

निघेहि गुणपौरुषप्रणयिनि प्रिये लोचनम् ॥ ४ ॥

प्रभावती—(सानन्दप्रुत्पाय चक्षुःमूलयन्ती) सहि, मा खु मा खु विष्पलभमेत्तकेण जीवायिअ पुणो पुणो दूसहाइ सन्तापाइ अणुभावइ-स्ससि । (सखि, मा खलु मा खलु विप्रलम्भमृग्युक्तेन जीवयित्वा पुन पुन दु सहान् सन्तापान् अनुभावयिष्यसि ।)

शुचिमुखी—अयि असवरणशीले, यस्य जन्मन्येकमउलोकनं प्रार्थयन्ती वमासी, तस्मिन्नेवमनिवारितमवलोकितेऽपि किमेवमवसीदसि ?

शुचिमुखी—देखो देखने लायक वस्तु दिखला रही हैं ।

प्रभावती—सखि, मैंने दुर्लभ वस्तु को लालच करके अपने को मोहित बना लिया है, अब क्या देखना है ?

शुचिमुखी—पहले तो तुम तुम्हारे चिरकाल प्रेमी के द्वारा भेजा गया स्नेहभूषित कामलेख देखो, इस के बाद ही है सखि, विरहवाधा को दूर करने में त्रिद्वैषधस्वरूप, गुण तथा पराक्रम से युक्त अपने प्रियवचन को देखो ॥ ४ ॥

प्रभावती—(सानन्द उठती हुई आखें खोल कर) सखि, नहीं नहीं, क्यों तुम मुझे विप्रलम्भ की मीत से जिला कर बार बार दुःसह सन्ताप देती रहती है ?

शुचिमुखी—हे असवरणशील, जिसे तुम जीवन में एकबार देखने के लिये प्रार्थना किया करती थी, वही इस समय अनिवारित रूप में तुम्हें दीख रहा है, फिर क्यों उदास हो ?

प्रभावती—सखि, एदिना तस्स महामहग्घजन्मणो समक्षदंसणेण
उजेव परव्वसा एरिसं अत्थन्तर पाविद्वहि । पेक्ख—(सखि, एतेन तस्य
महामहार्घज-मनः समक्षदर्शनेन एव परवशा एतादृशमवस्थान्तर प्रापितास्मि ।
पश्य—)

अम अम्भसे चुलुइदं यद्वेच्छिअं लोअणेहिं लावणं ।

एण्ह विसम्भपीअं तस्सिअजीअं पराहवइ ॥ ५ ॥

(अयि अवशे चुलुकित मयेच्छ लोचनैर्लावण्यम् ।

अधुना विसम्भपीत त चिरजीव पराभवति ॥ ५ ॥)

(इति हस्त प्रसारयति)

शुचिमुखी—(पत्रिकामपंपति)

प्रभावती—(वाचयति)

त्यक्त्वा त्वद्विरहेण येन जलधिं जन्मस्थलीमिन्दुना

सन्तीर्णा. परितो द्विरण्मयगिरिं ताः प्रान्तरक्षोणय ।

प्राचीनाचलमेखलामपि मनागुल्लङ्घय तेनामुना

सायं कैरविणि प्रतीहि विरहव्यामोहमुन्मीलितम् ॥ ६ ॥

प्रभावती—सखि, उस महानुभाव के इस प्रत्यक्ष दर्शन से ही मैं इस तरह
की अवस्था को प्राप्त हो गई हूँ, देखो ।

पराधीनभाव से मैंने अपनी आँखों से यथेच्छ रूप में प्रियतम के लावण्य
का पान किया, वही लावण्य अधिक मात्रा में पी लेने के कारण मेरे प्राणों को
पराभूत कर रहा है ॥ ५ ॥

(हाथ फैलाती है)

शुचिमुखी—(चिट्ठी देती है)

प्रभावती—(पढ़ती है)

हे कैरविणि, जिस चन्द्रमा ने तुम्हारे वियोग में जन्मस्थान समुद्र का
त्याग करके सुमेष के चारों ओर अवस्थित प्रान्तर भूमियाँ पार कीं, उदयाचल
की लम्हटों का भी उल्लङ्घन किया, वही चन्द्रमा इस समय तुम्हारे विरह-
कृत व्यामोह को दूर कर रहा है, विश्वास करो ॥ ६ ॥

अहो एस महाभाअस्स भट्टुरो वअणोवण्णासो असम्भाविअत्थोवि सुहावेदि । (अहो एष महाभागस्य मधुरो वचनोपन्यासोऽसंभावितापोऽपि सुखयति ।)

शुचिमुखी—(आत्मगतम्) क्षणमभिसन्धाय प्रभावतीमवतारयामि किमपि कुतूहलम् । (प्रकाशम्)

सखि, सत्यसम्भावितमिवैतत् ।

तरलिका—(सोवालम्भमिव) ता तुमं पढमं पच्चइआ विअ कोस भणन्ती आसि । (तत्त्व प्रथमं प्रत्यपितेव कथं भणन्ती आसीः)

शुचिमुखी—अहं कदाचिदप्रत्येयमपि तिर्यक्त्तया प्रत्येयि ।

तरलिका—(हस्तं तिर्यंगावजंयन्ती) उज्जुअं उजेव किण्णु भणीअदि मठ्य क्खु एद विप्पलम्भो त्ति । (ऋजुमेव किन्तु भण्यते सर्वं खल्विदं विप्रलम्भ इति ।)

प्रभावती—(सवैषित्यम्) सहि कहिदं उजेव मए मा क्खु विप्पलभमेत्तुयेण । (इत्यादि पठित्वा रोदिति) (सखि कथितमेव मया 'मा खलु विप्रलम्भमृत्युकेन')

अहा, महानुभाव का यह मधुर वाक्य अर्थ के असंभव होने पर भी आनन्दित कर रहा है ।

शुचिमुखी—(स्वगत) क्षणभर वञ्चना करके प्रभावती को कुछ कुतूहल में डाल देता हूँ । (प्रकट) सखि, वस्तुतः यह असंभव है ।

तरलिका—(उलाहने के स्वर में) तो तुम पहले विश्वस्त की तरह क्यों कहती रही ? ।

शुचिमुखी—मैं पक्षी जाति की होने के कारण कभी अविश्वनीय बात पर भी विश्वास कर बैठती हूँ ।

तरलिका—(हाथ चमकाकर) सीधे बयो नहीं कहती हो कि यह सब वञ्चना है ।

प्रभावती—(मोह में पडकर) सखि, मैंने तो कहा कि मुझे विप्रलम्भ मृत्यु से जिला... (इत्यादि पूर्वोक्त दुहराकर रोती है) ।

तरालका—(विज्ञेय) (सकौतुकम्) अहो मालदीमालामज्जादो
निस्सरिअ एको बहुअरो भट्टिदारिआए समीय उअसप्पइ । (अहो
मालदीमालामध्यतो नि सुट्ठ एको मधुकरो भर्तृदारिकासमीयमुपसपति ।)

शुचिमुखी—(विलोचय सचमत्कारम्) भर्तृदारिके,

कलय कुतुकमेतरयम्मुञ्जाम्भोजभाजा
मिलद्धत्तरन्देनाहृत सौरभेण ।
सुमुखि कलुपमसैर्लोचनं कस्य हेता
रिदमनुनयति त्वां भौंऊनैरेप भृङ्ग

प्रभावती—(सदृष्टिक्षेप भ्रमरबाधा रूपयति)

शुचिमुखी—(आत्मगतम्) अहह ।

ऊनकमधुकरे मरे सलीले
भ्रमणपरे परिता मुखारविन्दम् ।
प्रणयपरिचयादिवोत्पलाक्ष्या
प्रसरति कापि रसालस कटाक्ष ॥ ८ ॥

तरालिका—(देखकर) (कुतूहल से) अहा मालनीमाला मे से निकल
कर एक भ्रमर राजकुमारी के पास जा रहा है ।

शुचिमुखी—(देख कर—चम कार से) राजकुमारीजी तुम्हारे मुख
कमल में वर्तमान अधररस सौरभ पर आकृष्ट यह भ्रमर अपने चकार स तुमको
अनुनीत कर रहा है हे सुमुखि, फिर तुम्हारी आँखों मे अँसू का क्या
कारण है ? ॥ ७ ॥

प्रभावती—(आँख से देख कर भ्रमरबाधा का अनुभव करती है)

शुचिमुखी—(स्वगत) अहा ।

भ्रमररूपधारी इस कामधेय के द्वारा इस सुन्दरी के मुखकमल के चारो
ओर भ्रमण किये जाने पर यह सुन्दरी रसालस-सा कटाक्ष निभेय कर रही है,
ऐसा लगता है मानो इसको प्रणय प्रकट करने का अयास हो ॥ ८ ॥

प्रभावती—(मुखमावृण्वती) अम्महे, दुब्बिणीदो विअ एस महुअरो वअण उजेव परिहवइ । (दुब्बिनीत इवैय मधुकरो वदनमेव परिभवति ।)

शुचिमुखी—(स्मित्वा) अयि दुब्बिनीतैवैया रसिकनाति । यत —
कम्पयति चिठपमङ्गं प्रसूनमास्थं परामघति ।

दशति प्रवालमघरं सखि रसभाजा स्वभाव एवायम् ॥ ९ ॥

प्रभावती—(भूयोऽपि भ्रमरबाधा रूपयित्वा, सकोपम्)

चोरककुसुमरसाणं विरमसु रे मा करेसु दुब्बिणअं ।

गरुआयराहवन्धं कण्णूपलम्मि पाविहसि ॥ १० ॥

(चोरककुसुमरसाना विरम रे मा कुरु दुब्बिनयम् ।

गुरुकापराधबन्ध कर्णोत्पले प्राप्स्यसि ॥ १० ॥)

शुचिमुखी—अहो महानय निग्रहनिदेश ।

तरलिका—(विलोक्य) अल्लरिअ अल्लरिअ अम्महे, परव्वसो विअ भट्टिदारिआए भमरो जदो एद निग्गहणिदेस पमाणीकरन्तो पइट्टो उजेव से कण्णूपल । (आश्चर्यम्, आश्चर्यम् अहो परवश इव भट्टिदारिकाया भ्रमरो यत एत निग्रहनिदेश प्रमाणीकुर्वन् प्रविष्ट एवास्था कर्णोत्पलम् ।)

प्रभावती—(मुह डकती हुई) अहो यह दुब्बिनीत भ्रमर तो मुख पर ही धावा बोल रहा है ।

शुचिमुखी—(मुस्कुराकर) अरी, यह रसिको की जाति सदा ही दुब्बिनीत हुआ करती है क्योंकि—हे सखि, रसिको का ऐसा स्वभाव ही हुआ करता है वे लतारूप अङ्ग को कम्पित करते हैं, पुष्परूप मुख पर धावा बोलते हैं, और प्रवालरूप अधर का चुम्बन करते हैं ॥ ९ ॥

प्रभावती—(पुन भ्रमरबाधा का अनुभव करके कोप से) रे कुसुम-रसचौर भ्रमर, रुक जाओ ज्यादाती मत करो, यदि तुम नहीं मानोगे तो तुम्हारे अपराध के दण्ड में तुम्हें मैं कर्णोत्पल में बांध दूगी ॥ १० ॥

शुचिमुखी—अरे, यह तो बहुत बड़े दण्ड की घोषणा है ।

तरलिका—(देखकर) आश्चर्य है आश्चर्य, जैसे वह राजकुमारी के वय मे हो, उस प्रकार से यह भ्रमर दण्डाज्ञा सुनकर उसे मानता हुआ कर्णोत्पल में प्रवेश कर रहा है ।

प्रभावती—(सासूयमिव) अइ का एत्थ परवसदा, पसिद्धं व्जेव कुसुमाणुबन्धलोहित्तणं महुअराणं । (अयि, कात्र परवसता, प्रसिद्धमेवं कुसुमानुबन्धलोभित्वं भ्रमराणाम् ।)

शुचिमुखी—(सोपालम्भमिव) मामैवम्—

कोपेऽपि जल्वित्तमलं धयति स्वदीयं

तन्वि ब्रवीपि परुषाणि रुधा किमस्मिन् ।

प्रातत्वदाननसरोरुहसौरभोऽय-

मस्याधुनापि किमसौ कुसुमानुबन्धः ॥ ११ ॥

तरलिका—कथ परिच्छइअ कण्णूपल वाहिराहिमुहं पत्थिदो व्जेव महुअरो । (कथं परित्यज्य कर्णोत्पलं बहिरभिमुखं प्रस्वित एव मधुकरः ।)

शुचिमुखी—कथ नामानभिज्ञतापवादेनावज्ञातो नापयास्यति ।

प्रभावती—(सकौतुकानुतापम्) कथं अन्तरिदो व्जेव चित्तसालिआ-दुआरोवक्खित्तसीअलोसीरतिरक्करणीए भमरो । (कथमन्तरित एव चित्रशालिकाद्वारोपक्षिप्तशीतलोशीरतिरक्करिष्या भ्रमरः ।)

प्रभावती—(असूया के स्वर में) इसमें परवसता की क्या बात है ? यह तो प्रसिद्ध ही है कि भ्रमरगण पुष्पसंबन्ध के लोभी हुआ करते हैं ।

शुचिमुखी—(उलाहने के स्वर में) नहीं नहीं, ऐसी बात नहीं है, तुम्हारी कुपित उक्ति को भी यह पीता सा रहता है, हे कृशाञ्जि, शोधवश तुम इसको कठोर शब्द क्यों कहती हो ? इसे जब तुम्हारे मुख की सुगन्ध के आस्वादन का अवसर मिल चुका है तो क्या इसे अब भी फूलों पर आदर रह ही गया है ॥ ११ ॥

तरलिका—क्यों कर्णोत्पल का त्याग करके यह भ्रमर बाहर की ओर चल पड़ा ?

शुचिमुखी—अनभिज्ञ होने का कलङ्क लगाकर इसे अपमानित किया गया, फिर यह कैसे न भागेगा ?

प्रभावती—(कूनुहल तथा अनुनाप के साथ) क्यों, चित्रशाला के द्वार पर लटकने वाले पर्दे के भीतर छिप गया वह भ्रमर ।

शुचिमुखी—(सस्मिन्वम्) सखि, सुचिरमेकसरोधिवासेन सुपरिचितोऽयमस्माक भ्रमरः, ततो यदि भवति भवत्याः कुतूहल तदा कियदिदम्, इदानीमेव विनिमीलत्कमलमधुपानोत्कलिकातरलमपि परारत्तयाम्येनम् ।

तरलिका—(साभ्यर्थनम्) पिअसहि, परावट्टेसु भट्टिट्टदारिआए विरहविणोदनत्थं महुअरं । (प्रियसखि, परावत्तंय भत्तदारिकाया विरह विनोदनाय मधुकरम् ।)

प्रभावती—अइ दुब्बिणीद हअं परिचचइअ णिवत्तदि । (यदि दुबिनीत हत परिश्यज्य निवर्तते ।)

शुचिमुखी—(अपवार्यं सानन्दम्) अद्यैताम्—

रतिमतिचिरचीर्णानैरुपुण्यावतीर्णा

मिलतु ललितजन्मा मन्मथो रौक्मिण्येयः ।

भवतु भवनमेतद्दम्भ्यमन्योन्यशोभा-

सुभगमिथुनरत्नालङ्कृतिश्लाघनीयम् ॥ १२ ॥

शुचिमुखी—(मुस्कुरावर) सखि, चिरकाल तक एक साथ एक सरोवरे मे वास करने के कारण यह 'भ्रमर' हमारा परिचित है, यदि आपको कौतुक है, तो कहिये विकसित होते हुए कमल के रस को पीने के लिये चञ्चल इस भ्रमर को मैं अभी लौटा देती हूँ यह कौन बड़ी बात है ?

तरलिका—(प्रार्थना के स्वर मे) प्रियसखि, राजकुमारी के विरह विनोदनार्थं इस भ्रमर को लौटाओ ।

प्रभावती—यदि यह अपने दुबिनीत व्यवहार का त्याग कर के लौटे तब तो ।

शुचिमुखी—(छिपाकर, सानन्द) दीर्घकाल तक किये गये पुण्यो के बल पर रति ने प्रभावती के रूप में अवतार ग्रहण किया, इस रति के अवतार रूप में वर्तमान प्रभावती को दिव्य रूप मे अवतीर्ण वन्दन स्वरूप प्रद्युम्न मिल जाय, और अन्योन्य शोभा से रमणीय युगल रत्न के मिलन से यह भवन धन्य होवे ॥ १२ ॥

(प्रकाशम्) (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) भो महाभागधेयचन्मन्,
अभिनवकमलामोदमधुरमधुमान्मथानन्द कन्दलाभिराम कामभ्रमर
स्वरूपमिदमपास्य तिरस्करण्यन्तरालेन परावर्त्तमान प्रवर्त्तय भर्त्सुदारि-
काया विरहनिनोदेन विलक्षण पक्षपातम् इति ।

(ततः प्रविशत्येकान्ते मा मथ रूपमास्थाय कुमार)

कुमार — (सोच्छवासम्) सेपेय सुपदना—

पन्था पाथोधिप्रेतानिधिलनगनदीकाननैर्दूरेकीर्ण
सन्तीर्णं स्वर्णभूमीधरपरिसरभूर्दुर्गमापि व्यलङ्घि ।
आक्रान्तं वज्रनाभासुरनगरमुपक्रम्य शैलूरवेपं
नि शेषं दानवाना कुन्तमपि यदुभिर्यत्कृते कार्यमेतत् ॥ १३ ॥

आश्चर्यम्—

दूरादाकुलमक्षिणी प्रणिहिते पीनस्तनीमीक्षितुं
कुम्भाभ्यां फलिता व्यलोकित ललिता काञ्चिद्वनता काञ्चनो ।

(प्रकट) (नेपथ्य की ओर देखकर) हे महाभाग, नवीन कमलसुगन्ध से
मधुर पुष्परसरूप कायकअप्रभव आनन्द के लोभी कामभ्रमर आप अपना
यह रूप छोड़कर पदों के अन्दर जाकर राजकुमारी की विरहवेदना को दूर
करके विलक्षण पक्षपात का परिचय दीजिये ।

(इसके बाद एकान्त में कन्दर्परूपधारी कुमार का प्रवेश)

कुमार—(उच्छ्वसित होकर) यही है वह सुन्दरी—जिसके लिये हम
यदुवसियो ने समुद्रमट, पवत, नदी तथा काननो से भरे मार्ग तय किये, दुर्गम
सुमेरु प्रांत की पृथ्वी का लङ्घन किया, मटवेप धारण करके वज्रनाभामुर की
नगरी ब्याप्त की, और दानववश को समाप्त करने की ठानी है ॥ १३ ॥

आश्चर्यं है

मैंने दूरसे आकुलभाव धारण करके पीनकुचा प्रेयसी के दर्शनार्थ आँसू दौड़ाई
और मुझे देखने को मिलगई एक ऐसी सीने की लतिका जिसमें घटरूप फल

आसीत् कौतुकमास्यमुत्पलदृश संवीक्षितुं धीक्षित.
खेलतश्चजनकेलिपञ्जरपदं प्रातः कलानायक ॥ १४ ॥

ततश्च—

अधिगतमियच्चित्रं मित्रं मनोजमृगीदृशो
मरकतशिलातल्पे तप्ता तलित्परिवर्त्तते ।
तलिति चलति व्योम व्योमाश्रयं च गिरिद्वयं
गिरिपरिसरे वञ्जु. कन्धौ कनानिधिमण्डलम् ॥ १५ ॥
निर्माय जग्माश्चिकायमभ्या

श्चिराय तस्यापितसौकुमार्यं ।

अथात्र एवण्यगुणोपघने

स्थाने बभूव स्यविरो विधाता ॥ १६ ॥

अपि च—

एतस्या कलभाषितेन कलुषा काष्ठायिता चल्लकी
दोर्बल्लो विफलोत्ता विसलता पङ्के निलीय स्थिता ।
आस्येनापि निराकृतोऽमृतनिधिर्निविद्य पधंण्यं
स्वीयं देहमहो जुहोति दहनोद्देशेन तिग्मत्वपि ॥ १७ ॥

लटक रहे हैं उरकण्ठा की प्रिया के मुख को देखने की ओर देखने को मिले
मुझे चन्द्रमा त्रिसपर खञ्जन खेल रहे हैं ॥ १४ ॥

इसके बाद रति के रूप से मिलता हुआ इतना सा चित्र मुझे मिला त्रिसने
स तप्तशी विद्युल्लता मरकत शिला के घन पर करवटें ले रही है । उस
विद्युल्लता में आकाश मिलित है उस आकाश में दो पक्ष हैं, उन पक्षों के
पास ही शङ्ख है और उस शङ्ख पर चन्द्रमण्डल अवस्थित है ॥ १५ ॥

जीवन भर परिश्रम करके ब्रह्मा ने इसके शरीर का निर्माण किया, फिर
बिना परिश्रम द्वारा उसमें सुकुमारता पैदा की । फिर जब इसमें ही श्रम गुण
पैदा करने का समय आया तो वही करते करते ब्रह्मा बुढ़ हो गया ॥ १६ ॥

इसके मधुर भाषण के आगे बीणा कठोर-कण्ठ की लगनी है, बाहुल्य
द्वारा पराजित मृगाली जल में छिपी रहती है, मुख स पराजित चन्द्रमा तिन
होकर पथ में अग्नि सदृश सूर्य में अपनी देह की आहुति डालने हैं ॥ १७ ॥

अने रमणीयता विलसितस्य,

अस्त्रैराकुलिते मया विलुलिते पक्षाञ्चलैरक्षिणी

मा रोदीरिति नैकधा निगदितं झंकारकाकूक्तिभिः ।

चारंधारमकारि कातरदृशः स्निग्धालकालम्बनं

मायामाधुकरीं तनुं कृतवता किन्नाम यन्नाजितम् ॥ १८ ॥

अपि च मयि मायामधुव्रते,

कुतुकादरदन्तुरं विदूरात्

सविधं सर्पनि संधमेण भुग्नम् ।

अथ कातरतारमाविरासी-

चचकिताकुञ्चिनमीक्षितं प्रियायाः ॥ १९ ॥

तदानीञ्च—

विसर्पत्कालिन्दीलहरिपरिपाटीपरिमृशा

दृशा दीर्घापाङ्गकमणरमणीयं चलितया ।

निदग्नीलो नीलोत्पलदलकलापैर्न कतिधा

सुधास्निग्धासारस्नपित इव सद्यः समभवम् ॥ २० ॥

अहा, किस तरह की रमणीयता है बिनासो मे ?

मैंने अपने पक्षप्रायो से इसके अश्रुपूर्ण नयनों को सहलाया । झंकाररूप वक्त्रोक्ति से मैंने बारबार कहा कि रोओ मत । इस कानरनयना के धिकने वालों का मैंने आलम्बन किया, इस प्रकार मायाभ्रमर बनकर मैंने क्या नहीं किया ? ॥ १८ ॥

मुझ मायामधुकर पर—

प्रिया ने दूर रहने पर कौतुक तथा आदर से पूर्ण, समीप आने पर घबडा-हट मे वक्र अनन्तर कातर, चकित एवं मुद्रित नयन-निक्षेप किये हैं ॥ १९ ॥

उस समय—

घडचल यमुना-तरङ्ग की तरह लगनेवाली एवं शीघ्र अनाङ्ग प्रदेश पार करने से वक्त्रभूत दृष्टि द्वारा मैं कई बार लमून-स्नात सा कर दिया गया, मुझे उस समय ऐसा लगता था कि मेरे ऊपर नीलकमल गिर रहे हों ॥ २० ॥

किञ्च मया प्रियतमाया —

सुकृतैः श्रुतिगोचरीकृता गुरुनिःश्यासनिरोधवन्धुरा ।

विरहज्वरखेदमन्तरा मधुरक्षामतराक्षरा गिरः ॥ २१ ॥

यावदितोऽनया तिरस्करिण्या माययापचारितशरीर. प्रविश्य चित्र-
शालिका प्रियाया विप्रलम्भविलम्बितानि विलोकयामि ।

(इति परित्रामति)

प्रभावती—सहि अज्जम्पि ण परावुत्तो महुअरो । (सखि, अद्यापि न
परावृत्तो मधुकर) ।

शुचिमुखी—(सस्मितम्)

कथमसि तरला मनागिदानीं

मधुकर मान्तरयत्नभ्रं त्वदीयम् ।

हरति परवशं त्वया तवायं

वदनसरोरुहसोरभानुभाव. ॥ २२ ॥

और मैंने—

पूर्व पुण्यवश प्रिया द्वारा विरहज्वरकृत खेद के बीच बीच में उच्चारित
गुरुनि श्वास को रोकते रहने से स्पष्ट श्रवणीय मधुर तथा मन्द कुछ शब्द भी
सुन लिये थे ॥ २१ ॥

तब तक इस पदों से माया द्वारा अपनी देह को छिपाकर चित्रशाला में
प्रवेश करके प्रिया के विभोग विलसितों को तो देख लू ।

(चलता है)

प्रभावती—सखि अब तक भी वह भ्रमर नहीं लौटा है ।

शुचिमुखी—(हँसकर)

बगुल क्यों हो रही हो, तुम्हारे मनोवत्सल भ्रमर को तुम्हारे वदन
कमल का सौरभ परवश बनाकर अभी लेता आ रहा है ॥ २२ ॥

प्रभावती—(सासूयम्) अइ काए बल्लहो भमरो का उण एत्थ एत्तिआ अढ्मत्थणा भएण तुम्हाणं मुहा पच्चअसीलत्तणप्पमादो उआलहीअदि । (आप, कस्या बल्लभो भ्रमरः, का पुनरत्रैतावत्यभ्यर्थना, मया तव मुखात् प्रत्ययशीलत्वप्रमाद उपालभ्यते) ।

तरलिका—अवगदं, सुइमुद्दीए ज सहीए वाहरिदं एसोवि संम्मा-संद्धदधुणी सुणीअदि । ता कि त्ति पतिआइअ दे हिअअं । (अवगतं, शुचिमुख्या यत्सख्यै ग्राह्यम्, एषोऽपि सन्ध्याशङ्खध्वनिः श्रूयते, तत् किमिति प्रत्यायितं ते हृदयम्) ।

शुचिमुखी—श्रूयताम्—

पापाणरेखाक्षरनिर्विशेषा

वाचः सतां प्रत्ययमाघदन्ति ।

व्यलोकिके लोकत्रितयेऽपि तत्त्वं

जनैः पुरा कस्य मनः प्रविश्य ॥ २३ ॥

अयञ्चास्मत्पक्षसाक्षी प्रत्यक्ष एव कुमारहस्तलेखः ।

प्रभावती—(पुनः करतलगतं पत्रिकामीक्षते) ।

कुमारः—(चित्रशालिकाप्रवेशं नाटयित्वा विलोक्य सानन्दम्) ।

प्रभावती—(असूयापूर्वक) बरो, भ्रमर किसका बल्लभ है और इसमे खुशामद क्या करना है ? मैंने तो तुम्हारे विश्वास पर उलाहना दिया था ।

तरलिका—मैं समझ गई । शुचिमुखी ने तो तुमसे कहा था कि यह शङ्खध्वनि सुनी जा रही है, फिर तुमने उसपर विश्वास ही क्यों किया ?

शुचिमुखी—सुनिये—

पत्थर पर की लकीर की तरह सज्जनो की वाणी विश्वास उत्पन्न करती है । कौन किसके हृदय में प्रवेश करके तत्त्व की जानकारी प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

हमारे पक्ष में कुमार का यह स्वहस्तलेख ही प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

प्रभावती—(हाथ में पढी चिट्ठी को फिर देखती है)

कुमार—(चित्रशालिका में प्रवेश का अभिनय करके देखकर सानन्द)

अद्यानवद्यजनुपा मकरध्वजेन
 प्राप्तासि पत्रि जगतीजयवैजयन्ती ।
 एणीदृशो यदि कराम्बुजकोपमाजि
 त्वय्यापतन्ति रसवन्ति विलोकितानि ॥ २४ ॥

तरलिका—अचचरिअं अचचरिअं, एत्थ भट्टिदारिआणामाङ्किआ मुद्दिआ मअणजेहो पलोइअदि । (आश्चर्यम्, आश्चर्यम्, अत्रभर्तृदारि-
 षणामाङ्किता मुद्रिका मदनलेखः प्रलोभयते) ।

प्रभायती—सहि सच्चं कुदो एत्थ एसा । (सखि सख्यं कुतोऽत्रैषा ?) ।

शुचिमुष्ठी—चिरन्तनस्य विरहवेदना विकारस्यापसरणमहौषधिरिय-
 मधिगतान्तःपुराभरणेषु भर्तृदारिकानामाक्षरसन्नाया मुद्रिका महाभागेन
 तदनेन तीर्थेनैयमत्र पत्रिकायाम् ।

कुमारः—एवमेतत् ।

हृदि विरहनिदाघदूयमाने
 करतलदुर्ललितेघमम्बुजाक्षयाः ।

हे पत्रिके, आज तुम को अनिन्दनीयजन्मा कामदेव ने पा लिया है, तुम
 जगद्विजय-पताका हो, इस मृगनयना ने अपने हाथ में लेकर तुम्हारे ऊपर
 अपनी सरस दृष्टि-क्षेप जो किया है ॥ २४ ॥

तरलिका—आश्चर्य है, आश्चर्य, यहाँ पर राजकुमारी की नामाङ्कित
 मुद्रा से युक्त मदन-लेख दीख रहा है ।

प्रभायती—सखि, सचमुच यह यहाँ कहीं से आया ?

शुचिमुष्ठी—चिरकालिक विरह वेदना को दूर करनेवाली औषधि की
 सदृश यह राजकुमारी की मुद्रिका अन्तःपुर द्वारा दिये गये भूषणों में मिली है ।
 आप इस तरह इस पत्रिका पर इधरे—

कुमार—यही बात है ।

मेरे विरह-सन्ताप से पीड़ित हृदय पर—प्रियतमा के हाथ में निवास से

विसकिसलयशीतलाङ्गुलीना

मपि मिलनादनुकम्प्रतामुपेता ॥ २१ ॥

प्रभावती—(सबहुमानम्)

अत्र सलाहालज्जं तिलोअजअणीयज्जम्मफलं ।

पाणिग्रहेण गरुअं साफलाइं से वहइ ॥ २६ ॥

(अद्य सलाहालज्जं त्रिलोकजननीयज्जम्मफलम् ।

पाणिग्रहेण मुष्टकं यत्साफल्यं सा वहति ॥ २६ ॥)

तरलिका—(सस्मिउम्) तुम पि स्रणन्तरे एआरिसी पलोइदव्यासि ।
(त्वमपि क्षणांतरे एतादृशी प्रतीक्यितव्यासि ।)

प्रभावती—(साम्पम्) अइ असमद्वप्पलावपरव्वसे अवेहि । (हसीं प्रति) सम्मुअन्दि सपद पञ्जुण्णसिरिणो अगुलिसणाह मुन्दिअ पलो-
इदु । ता तस्सि पडिन्धन्दए आलिहिद करेहि । (अपि असवदप्रला-
परवसे, अवेहि । सम्मुअन्दि साम्प्रत प्रद्युम्नश्रिय अङ्गुलिघनाया मुद्रिका प्रलो-
कितुम् । तत् तस्मिन् प्रविन्धन्दके आलिखिता कुष ।)

दुलारी गई तथा कमलनाभ की तरह शीतल अङ्गुली में रहनेवाली यह मुद्रिका मिलकर दयालुता दिखा रही है ॥ २५ ॥

प्रभावती—(आदर भाव से)

आज इस मुद्रिका का जन्म सकल हुआ, उसके जन्म का लाभ उसे मिल गया, कि कुमार ने उसे अपने हाथ में धारण करके आदर प्रदान किया ॥ २६ ॥

तरलिका—(मुस्फुराकर) क्षणभर बाद तुम भी एसी देखने में आओगी ।

प्रभावती—(असूया से) अरी, तुमको वे छिर पैर की बातें करन की आदत हो गई है, दूर हटो । (हसी के प्रति) अब मैं श्री प्रद्युम्न की अङ्गुली में पडने से सनाय मुद्रिका को देखन में सम्मुख हूँ । उसी चित्र में इस मुद्रिका को भी चित्रित कर दो ।

शुचिमुखी—उपनय तरलिके सचित्रोपकरण चित्रफलकम् । [तरलिकानाट्येन तदाहत्य प्रभावत्याः पुरतो धारयति । प्रभावती विस्फार्य विलोचनं विलोकयति ।]

कुमार—यावद्दहमपि प्रियाया पार्श्ववर्ती भूत्वा विलोकयामि । चित्रफलकम् । (इति तथाकृत्वा) अहह ॥

मट्याल्लेख्यगते मनोरथशतेनोन्मादमासाविता
संसर्पन्ति सरोजसुन्दरदृशो दुरोग्रमद्भ्रूलताः ।
अध्रीडाविधुरा प्रमोदमधुराकूनेन विस्फारिताः
स्फीतस्फायद्वाहुरिङ्गणकृतौ यद्वादरा दृष्टय ॥ २७ ॥

तरलिका—(विलोक्य, आश्चर्यं, जनान्तिकम्) सहि सुइमुहि, पलोएसि किपि अच्छेरं । एत्थ फलिहसिलारेदिआए दिविअ मिअ पडिन्दन्दअं एक्को पडिबिम्बो पलोइअदि । (सखि शुचिमुखि, प्रलोकयति किमप्याश्चर्यम् । अत्र स्फटिकशिलावेदिकायां द्वितीयमिव प्रतिच्छन्दकम् एक प्रतिबिम्ब प्रलीनयते ।)

शुचिमुखी—अरी तरलिके, चित्रफलक तथा चित्र निर्माण की सामग्री लाओ ।

(तरलिका अभिनय मुद्रा में सारी चीजें लाकर प्रभावती के आगे रख देती है और प्रभावती उसे खोलकर सामग्री से देखती है)

कुमार—तब तक मैं भी प्रियतमा की बगल में बैठकर चित्र देखू । (वैसा करके)

अहह !! मेरे चित्र को मेरी प्रियतमा अपने मनोरथों से उन्मादित, दूर तक उठी भ्रूलता से युक्त लज्जाकृत सकोच से रहित, आनन्द से फैली हुई तथा स्फीत अपाङ्ग में सञ्चरण करनेवाली दृष्टियों से देख रही है ॥ २७ ॥

तरलिका—(देखकर, आश्चर्यं औरों से छिपाकर) सखि शुचिमुखी कुछ देख रही हो ? आश्चर्यं है ! यहाँ इस स्फटिक शिलावेदिका पर द्वितीय चित्र की तरह एक छाया दीप्त रही है ।

शुचिमुखी—(सवितकम् , स्वगतम्) सोऽयं समीपतरवर्तिनः कुमारस्य प्रतिबिम्ब , तत्किमत्र समाधेयम् ?

प्रभावती—अञ्जरिअ अञ्जरिअ, कुदो एद दिविअं पडिद्धन्दअं । (आश्चर्यम् , आश्चर्यम् , कुत एतत् द्वितीयं प्रतिच्छन्दकम् ।)

शुचिमुखी—कुतो द्वितीयम् , दुर्वलदृशामतिशयाभिनिवेशविस्तारितं चक्षुरेकमेवात्रलोकनीय द्वयमिदं दर्शयति ।

प्रभावती—सहि सच्च आत्थ चन्दिआचमङ्कारसवलनदुम्मारिआ दुब्बन्ना मे दिट्ठी, तथा पि कहां एद विजाणीअदि । (सखि, सत्यमात्रं चन्द्रिकाचमत्कारसवलनदुम्मारिता दुर्वला मे दृष्टिः, तथापि कथमेतत् विज्ञायते ।)

शुचिमुखी—निमीलय क्षणमश्रिणी ।

तरलिका—तद्यो पद्मा लहुलहु पलोअन्ती एक्क पलोदस्ससि । (ततः पश्चात्कालं प्रलोकयन्ती एकं प्रलोकयिष्यसि ।)

प्रभावती—एवं भोदु । (एव भवतु ।) (इति चक्षुषी निमोलयति ।)

तरलिका—(चित्रं प्रच्छादयति ।)

शुचिमुखी—(सोचती हुई स्वगत) यह तो समीपवर्ती कुमार का प्रतिबिम्ब है अब इस क्या समाधान करें ।

प्रभावती—आश्चर्य है आश्चर्य, यह दूसरा चित्र कहां से आ गया ?

शुचिमुखी—दूसरा चित्र कहां से आवेगा । जिनकी आंखें दुर्बल होती हैं, उनकी आग्रह विस्फारित दुर्बल दृष्टि एक ही वस्तु को दो दिखताती है ।

प्रभावती—सखि, तुम ठीक कहती हो, चन्द्रिका की चकाचौंध से मारी जाने के कारण हमारी आंखें दुर्बल हो गई हैं, फिर भी यह कैसे जाना जायगा कि एक ही चित्र है ।

शुचिमुखी—घोड़ी देर आखें बन्द रहो ।

तरलिका—फिर पीछे धीरे-धीरे देखने पर एक ही देखोगी ।

प्रभावती—एवमस्तु । (आंखें बन्द करती है)

तरलिका—(चित्र को छिपा देती है)

दुचिमुखी—(क्षण स्पष्टवा ।) समुन्मीलय लोचने ।

प्रभावती—(वसुधैव कुटुम्बकम् प्रतिबिम्बवलोत्पन्ती ।) सच्च एव
ज्वेव पडिद्धन्दअ । (सत्यम् एकमेव प्रतिच्छन्दकम् ।)

कुमार —अहो विप्रलम्भवेदग्धी पुरन्धीणान् । सोऽय प्रत्यआपलाप ।

वचोभिरभिसन्धाय सचेतसमपि स्त्रिय ।

तथ्यमदाय निहूय दर्शयन्त्यन्यथा स्थितम् ॥ २८ ॥

प्रभावती—(साश्चर्यम् ।) कथ एतथ कृत्ति कराङ्गुलीए मुद्दिआ वि
आलिहिदा । (कथ मठिति कराङ्गुल्यामत्र मुद्रिकापि आलिहिता ।)

तरलिका—को विलम्बो एत्तिअम्भि चित्तकम्मपण्डिआए हसीए ।
(को विलम्ब एतावति चित्रकर्मपण्डिताया हस्या ।)

दुचिमुखी—(आत्मगतम्) अतिललितमिदमभिसन्धानम् ।

प्रभावती—(विरहातिरैक नाटयती सासूय मुद्रिकां निर्दिश्य) अइ णिदए
मुद्दिए अज्जवि उण ससत्तमाणदुसहारम्भदाएणाए विरहवअणाए

दुचिमुखी—(घोडा ठहरकर) आखें खोलो ।

प्रभावती—(आखें खोलकर प्रतिबिम्ब को देखती हुई) सचमुच
बब एक ही चित्र देखती हूँ ।

कुमार—आश्चर्यजनक होती है छिपों की चञ्चल चातुरी । यह तो प्रत्यय
अपलाप है ।

पानवाले जनको भी छिपों बातों से चञ्चल करके सत्य को तुरन्त छिपा
दतो हैं और दूसरी तरह से समझा देती हैं ॥ २८ ॥

प्रभावती—(साश्चर्य) इतनी घोषिता मे इस चित्र में हाथ में अँगूठी
किस प्रकार चित्रित कर दी गई ?

तरलिका—चित्र निर्माण पण्डिता हसी को इतने से काम में क्या
दर लगती ?

दुचिमुखी—(स्वगत) यह प्रवृत्तता बहुत ठीक रही ।

प्रभावती—(विरह के आधिपत्या अभिनय करती हुई असूया से),
(अँगूठी को लक्ष्य करके) मरो निर्दये मुद्रिके आज भी तुम पुन संघट्ट तपा

परिच्यन्तजीविअं म परिच्यइअ एक्काल्लिआ-णिरन्तरोपकन्तप-
रक्कमवलक्कार-परिगहिद-तिल्लोक्क-विजयलद्धी विच्छुरिआणण-साम-
ण्णलावण्णस्स पज्जुण्णसिरिणो करग्गहेण सोहग्गसुहकांखणीअ
तुम्ह आत्तम्भरोभूतासि । अहवा—**३** एआरिसी जा अण्णाणकारणादो
अत्तणो जम्मलाहफल परिच्चइस्सदि । एक्क तुम सहवासपच्चएण
पत्येमि । जइ तस्स तिहुअणविहूसणस्स दसणासाए पडिओह परिहरिअ
णीभरविअम्भमाण विरह्वेअणाजज्जर जीविअ विपरिच्चइहु पारेमि तदा
सो जह्व इस्स त्रि सम्हरणसम्भावणाए उररदं पिमं जीविदफलभाइणिं करे
दि तहा करेसित्ति । (अपि निदंये मुद्धिके, अद्यापि पुन ससज्यमान दुसहा-
रम्भदावण्या विरहवेदनया परित्यज्यमानजीविता मा परित्यज्य एकाकिनी
निरन्तरोपकान्त-पराक्रमबलात्कार-परिगृहीत-त्रिलोक विजयलक्ष्मी विच्छुरितानन्व-
सामान्यलावण्यस्य प्रद्युम्नश्रिय करग्रहेण सौभाग्यमुख काङ्क्षन्ती त्वम्
आत्मम्भरोभूतासि । अथवा का एतादृशी या अन्यासा कारणात् आत्मनः जन्म-
लाभफल परित्यक्षयति । एका त्वां सहवासप्रत्ययेन प्रत्येमि । यदि तस्य त्रिभुवन-
विभूषणस्य दर्शनासाया पतिताह परिहाय निर्भरविजृम्भमाणविरहवेदनाजंर
जीवितमपि परित्यक्नु पारधामि तदा स यथाऽस्या अपि स्मरणसभावनाया
उपरतामपि मा जीवितफलभागिनी करोति तथा करिष्यसीति ।)

शुचिमुखी—प्रतिहतममङ्गलम् अयि किमेवमनध्यवसाय विधुरतया
पराभूयसे ।

दावण विरह वेदना से त्रिषमाण मुक्त विरसिनी का परित्याग करके अकेली
सतत पराक्रमी, बलपूर्वक बशीकृत त्रैलोक्य लक्ष्मी से युक्त अनन्य सदृश
लावण्यशाली श्रीप्रद्युम्न के हाथ में निवास की इच्छा रखती हुई स्थापिनी ही
रही है, अथवा—ऐसी कौन होगी जो दूसरो के कारण अपने जीवन की सफ-
लता का परित्याग करेगी । सहवास के कारण एक तुझी पर मुझे विश्वास
है । त्रिभुवन भूषण उस प्रद्युम्न की आशा में पढी मैं अतिप्रचुर विरह-वेदना
के कारण जंर जीवन का परित्याग करने में समर्थ हो जाती हूँ, तब जिस
तरह वह मुन मृग को भी जीवनफलभागिनी बनावे तुम वैसा प्रयत्न करना ।

शुचिमुखी—अमङ्गल दूर हो । हे राजकुमारी, इस तरह निश्चेष्ट भाव
से क्यों उदास हो रही हो ?

प्रभावती—(अनादृत्य) हृदासजीविद, एत्तिअं उण पत्यादुकामं तुमं पत्थेमि, तारिसं जम्मन्तर-परिग्गह करिस्ससि जहिं तस्स तिहुअण-विहूसणस्स सिरिरुप्पिणीसमुप्पण्णस्स मम्महजम्मणो घअणचन्दचन्दि-उज्जोअगोअरत्तणरमणोअजम्मलाह-सलाहणिउज्जो होसि त्ति (रोदिति) (हताशजीवित, एतावत्पुनः प्रस्थानुकामं त्वां प्रत्याययामि, तादृशं जन्मान्तरपरिग्रहं करिष्यसि यत्र तस्य त्रिभुवन-विभूयणस्य श्रीशिवमणिसमुत्पन्नस्य मन्मथजन्मनो बदनचन्द्रचन्द्रिकोद्द्योतगोचररवरमणोपजन्मलाभ-श्लाघनीयं भविष्यतीति ।)

कुमारः—अहो प्ररोहः प्रणयकातरतायाः, अहह !!

एतानि मत्प्रणयकातरभाषितानि

सगतायजर्जरनजीवितनिःस्पृहाणि ।

भारोहयन्ति बहुमानमहार्घनायां

निर्मज्जयन्ति च मनः करुणासमुद्रे ॥ २९ ॥

प्रभावती—अहवा, किं त्ति असरणा विरज्जामि, तं उज्जेय मणोरह-सुलहं सलाहाविऊण उअलहामि, महाभाग, (इति श्यायन्ती) (अथवा, किमिति अशरणा विरज्यामि । तमेव मनोरथमुलभं श्लाघयित्वा उपालभे, महाभाग ।)

इद्य सण्णिहिदोसि तुमं मह सुहभ मणोरहेहि आहरिदो ।

प्रभावती—(शुचिमुखी को उक्ति का अनादर करके) हे अभागे मेरे जीवन, जाने को उद्यत तुममे मुझे दाना ही कहना है कि मैं तुम पर भरोसा करती हूँ, ऐसा जन्मान्तर ग्रहण करना, जिसमें त्रिभुवन भूयण कामावतार दशमनी-पुत्र के मुखचन्द्र के प्रकाश में रहने का अवसर पाकर अपना जीवन ध्वंस कर सकी । (रोती है)

कुमार—अहो, प्रणयकातरता पैदा हो रही है अहह ! इसके यह प्रणय-कातरता-भाषण सन्तप्त जीवन के प्रति विनृष्णा व्यक्त कर रहे हैं । यह भाषण सुन कर मैं अपने को आदराहूँ एवं करुणासागर में निमग्न हो अनुभव कर रहा हूँ ॥ २९ ॥

प्रभावती—अथवा—मैं अशरणा होकर क्यों विरक्त होऊँ ? मनोरथमुलभ अपने प्रियतम को ही क्यों न प्रशंसापूर्ण उलाहना दू ? (सोचती हुई)

हे मुन्दर, मेरे मनोरथों द्वारा उपस्थित किये गये तुम यहाँ मेरे पास मैं वसंतमान

अह जह पडिवअणअिम वि परम्मुहो होसि किम्मणिमो ॥ ३० ॥

(इह सन्निहितोऽसि त्व मम सुभय मनोरथैराहृत ।

अथ यदि प्रतिवचनेऽपि परमुक्तो भवसि कि भणामि ॥ ३० ॥)

कुमार—अहो विरहोन्मादमेदुरेण प्रियतमाया प्रलापोपालम्भे
नापि समीपतरर्त्ता सापराधतया क्षेत्रीकृतोऽस्मि, तत्कृतो न प्रत्यक्षीभूय-
सम्भावयामि सुन्दरनाम् । (इत्युपसपति)

तरलिका—(विलोचय, ससभ्रममुत्थाय सत्रीदस्मितम्) भट्टिदारिए पलो-
एसि परावुत्तो एस महुअरो । (भर्तृशरिके प्रलोकपसि परावृत्त एष
मधुकर ।)

प्रभावती—(सचमत्कारमोक्षते)

कुम र—(अपवार्यं)

चकिनचकिनमुद्यत्कौतुकोत्तानमस्या

मधुप इति वयस्याद्याचि साधिस्मितायाम् ।

समुदयति समन्तार्कौतुकोन्मज्जदञ्चत्

कुवलयदलदामश्यामया लोचनध्री ॥ ३१ ॥

हो फिर भी यदि तुम उत्तर देने से भी विमुख हो तो मैं तुम्ह वया कह
सकती हूँ ॥ ३० ॥

कुमार—अहा, विरहजन उमाद स भरे हुए प्रेयसी के इन प्रलापोपालम्भ
से समीपवर्त्ती मैं अपराध का पात्र बनाया जा रहा हूँ फिर वयो न मैं प्रत्यक्ष
होकर सुन्दरी को आश्वासन प्रदान करूँ ? (समीप जाता है)

तरलिका—(देखकर धबडाहट से उठकर लज्जा तथा मुस्कराहट के
साथ) राजकुमारी, देखो यह भ्रमर लौट आया है ।

प्रभावती—(चमत्कृत होकर देखती है)

कुमार—(छिगकर) चकिन, कौतुक से उत्तान, इसकी दृष्टि सखी के
वचन पर चारो ओर कुवलय की मात्ता की तरह चर रही है ॥ ३१ ॥

(प्रभासती) अयि प्रियतमे, किमपीदमपरिकलितपरानस्याविधुर-
मुपालन्धोऽस्मि ।

कतिधा न मनोरघोपनीता

प्रणिपातैर्गमितानुकूलताम् ।

विधृताऽथ विधृतशङ्कमङ्के

मधुराभाषिणि भाषिता त्वमासीः ॥ ३२ ॥

प्रभावती—(सचम्रमोत्कम्पमुत्तिष्ठती) अहो अच्छाहिद् अन्ते-
सरन्मि । (अहो अरवाहितमतपुरे ।)

कुमार—(सप्रतिपेधम्)

तन्धीं तनुं शुरुपयोधरभारभुग्ना

मायासितामथ वियोगपरामयेन ।

उरयाय खेदकलुपीकुरुपे यदेव-

मर्यादितं सुतनु क्रेयल मेतदेव ॥ ३३ ॥

प्रभावती—(मोरकम्पकातरम्) हा ताद, को उयाओ । (हा ताउ, क
उपाय ।)

शुचिमुखी—भर्तृदारिके, किमेतत् ?

(प्रकट) हे प्रियतमे, तुम दूसरे की अवस्था की कल्पना किये बिना ही यह
उलाहना दे रही हो,

मैंने अनेक बार तुमकी मनोरथ द्वारा समीप बुलाकर, और परणों पर
गिर कर अनुकूल बनाकर, निराश्रु भाव से गोद में बैठाकर, तुमसे बातें की हैं ॥

प्रभावती—(घबडाहट से उठती हुई तथा बापती हुई) अहा, अतपुर मे
महाभय उपस्थित हुआ है ।

कुमार—(रोक्ते हुए)

रतन के भार से तुम्ही एव वियोग-व्यथा से आयाचित दुर्बल देह को उठने
से जो तुम तिन कर रही हो, हे सुन्दरि, केवल यही महाभय है ॥ ३३ ॥

प्रभावती—(बापती हुई वातर भाव से) हाय रितात्री क्या उपाय है ?

शुचिमुखी—राजकुमारी, यह क्या ?

यस्मिन् दूरदिगन्तवर्त्तिनि मनोवृत्तिस्तवामूचया
 तस्मै दुःसहमन्मथाकुलतया नीतास्त्वया वासराः ।
 निर्मोक्तुं बहुधावधारितवती त्वं परकृते जीवितं
 सोऽयं साहसिकः स्वयं सखि तव स्नेहादिदाभ्यागतः ॥ ३४ ॥

अपि च—

भूत्वा पीयूषांशुवंशैकधीरः
 कृत्वा कुरसाकारिशैतूपवेपम् ।
 सूनुः साक्षात्पुण्डरीकाक्षलक्ष्म्योः
 किञ्च प्राप्तस्त्वामयं पञ्चबाणः ॥ ३५ ॥

तरलिका—सखि, सचच सुइमुहीए उआहरीअदि । ता किंत्ति
 सम्पत्तजन्मलाहफलं अत्ताणं णाहिणन्दसि । (सखि, त्वयं सुचिमुख्या
 उदाहियते तत् किमिति सम्प्राप्तजन्मलाभकञ्च आत्मानं नाभिनन्दसि ?)

प्रभावती—(छात्रम्) किं करेमि अत्तणो असाहीणा । (किं करोमि
 आत्मनोऽस्वाधीना ।)

जिसके दूरस्थित रहने पर तुम्हारी बेसी मनोदशा थी, जिसके लिये कामा-
 तुर होकर तुम दिन बिताया करती थी, जिसके बिना तुमने कई बार जीवन
 त्यागने का निश्चय कर लिया था वही यह छाहसी वीर तुम्हारे स्नेहवश यहाँ
 स्वयं उपस्थित हुए हैं ॥ ३४ ॥

और—चन्द्रवशी वीर होकर भी निन्दनीय नरवेष धारण करके यह
 लक्ष्मी तथा नारायण के पुत्र साक्षात् कामदेव तुम्हारे पास उपस्थित
 हुए हैं ॥ ३५ ॥

तरलिका—सखि सुचिमुखी ठीक ही कह रही है, तुमको जीवनधारण
 करने का फल प्राप्त हो गया है, तुम क्यों नहीं अपने को बटभागी
 मानती हो ।

प्रभावती—(रोकर) मैं पराधीना कन्या कर्हं क्या ?

शुचिमुखी—अपि, स्वाधीना एव स्वयंवरः कुलकुमार्यैः ।

किञ्चात्र—

पुरा पराधीनतया स्थिताया

मनोऽनुरागं मुनिकन्यकायाः ।

निदर्शनत्वेन शकुन्तलाया

दुष्पन्तपाणिप्रहणं गृहाण ॥ ३६ ॥

प्रभावती—(निःस्वस्य परावृत्य तरलिकामोक्षते)

तरलिका—महाभाग, भट्टिदारिका विष्णवेदि एवं विचित्रमणिसिलावेदि-अकदेसमलकरेदु कुमारो । (महाभाग, भट्टिदारिका विष्णवेदि एवं विचित्रमणिसिलावेदिकैरुदेसम् बलह्वरोतु कुमारः ।)

कुमार—(प्रभावतीं प्रति) अयि प्रियतमे,

मयि चेन्मदनफलमालसे त्वं

सुकृतैः स्नेहयति प्रसीदसि ।

इह शैबलशीतले निवेशं

शयनीयेऽप्यनुमन्तुमर्हसि ॥ ३७ ॥

(इति प्रभावत्या मुखमवलोकयंस्तिष्ठति)

शुचिमुखी—बरो, कुलकन्यार्यै स्वयंवरा होने से सदा स्वाधीना ही होती हैं । इस विषय में—

पराधीनभाव से अवस्थित मुनिकन्या शकुन्तला के मनोनुत्पन्न तथा दुष्प्रसन्न के साथ विवाह को ही दृष्टान्त समझ लो ॥ ३६ ॥

प्रभावती—(निःस्वस्य लेकर उठ कर तरलिका की ओर देखती है)

तरलिका—महाभाग, राजकुमारी कह रही हैं कि आप इस विचित्र मणिसिला-वेदिशा के एक भाग में बैठें ।

कुमार—(प्रभावती के प्रति) हे प्रियतमे,

काम-बोधित मुख पर यदि तुम मेरे पुष्पी में प्रसन्नता प्रकट करना चाहती हो तो इस शैबल-शीतल घटन पर भी बैठने की अनुमति-प्रदान कर सकती हो ॥ ३७ ॥

(ऐसा कहकर प्रभावती का मुख देखता रहता है)

शुचिमुखी—(विलोक्य, आरम्भतम्)

प्रियेक्षितायाः प्रतिनेत्रपात-

स्त्रपाभरैर्दूरमपाकृतोऽस्याः ।

रोमाङ्कुरोऽम्भोजविलोचनायाः

कपोलयोः केन निवारणीयः ॥ ३८

(प्रकाशम् । सस्मितम्) महाभाग,

हृदये सुचिरं मृगीदृशोऽस्या

ननु कस्यानुमते स्वमासितोऽभूः ।

अधुना शयनान्तमासितुं त्वा-

मनुमन्तुं कतमा प्रभावती स्यात् ॥ ३९ ॥

प्रभावती—(सासृष्य शुचिमुखीमीक्षते)

कुमारः—(सप्रश्रयम्) तद्दहमस्मिन् परिजनोचिते शैबलशयनोपान्ते
स्समुपविशामि । (इत्युपविशति)

तरलिका—(प्रभावतीं हस्ते गृहीत्वोपवेशयति)

शुचिमुखी—(देखकर, स्वगत)

प्रियतम द्वारा देखे जाने पर इसने लज्जावश उसकी तरफ देखना तो छोड़ दिया है, परन्तु इसके कपोल पर जो रोमाञ्च छडे हो रहे हैं उन्हें कौन दूर करे ॥ ३८ ॥

(प्रकट) (हँसकर) महाभाग,

इस मृगनयनी के हृदय में चिरकाल से तुम किस की अनुमति लेकर बैठे रहे हो, फिर इस समय शयन के एक भाग में बैठने की अनुमति देने में प्रभावती कौन होती है ॥ ३९ ॥

प्रभावती—(असूया से शुचिमुखी की ओर देखती है)

कुमार—(नम्रतापूर्वक) तो मैं इस परिजन के बैठने योग्य शैबल शयन के समीप में बैठना हूँ । (बैठ जाते हैं)

तरलिका—(प्रभावती का हाथ पकड़ कर उसे बैठाती है)

प्रभावती—(किञ्चित्तिर्यंगुपविश्य शृङ्गारलज्जां नाटयन्ती आत्मगतम्)

पाँहो हि दीहदीहं णमणणि मोसांइं दाणि वीसपसु ।

लज्जाइ मा खु मीज्जसु हरिज्जभ्तमप्पाणं ॥ ४० ॥

(पापो हि दीर्घदीघ नयनानि मोपविरवा इदानीं दृश्यते ।

लज्जया मा खलु मौलय हरन्तमात्मानम् ॥ ४० ॥)

(इति तिर्यंगवलोकते)

कुमार—(अपवार्यं)

नैवोपैति प्रणयवचनं साध्वसादास्यमस्या

स्निग्धाकृतप्रसरमधुरा नाधरान्ते स्मितधी ।

किञ्चिन्व्यञ्जत् कुचलयदलध्रेणिसम्शोदवादी

मीढावक्त्र परमुदयति स्नेहसाक्षी कटाक्ष ॥ ४१ ॥

(नेपथ्ये)

भो भो रङ्गसन्निधानाधिकारिण पुरुषा, स्वयमय महाराज समा
ज्ञापयति सम्पाद्यन्ता रङ्गसन्निधानानि, समावृण्यन्ता शैलूपा ।

प्रभावती—(घोडा सा बक होकर बैठकर काम लज्जा वा अभिनय
करती हुई स्वगत)

पाप्य चिरकाल तक नयन चुराते रहे, आज दीक्ष पड़े हो, अब लज्जा से
जपने को छिपाओ मत ॥ ४० ॥

(ऐसा कहकर कनली से देखती है)

कुमार—(छिगाकर)

इसका मुख प्रीतिवचन नहीं कह रहा है, न इसके चेहरे पर स्निग्ध
अभिप्राय से भरो मुस्तुराहट देखने को मिल रही है, परन्तु कुछ-कुछ बक
मीलकमल श्रेणी का बहन करनेवाली लज्जा से बक तथा प्रणयसूचक कटाक्ष
उदित हुमा करता है ॥ ४१ ॥

(नेपथ्य में)

हे रङ्ग की सैयारी करने में निपुक्तजन, स्वयं महाराज आप लोगों को
आदेश दे रहे हैं, कि आप रङ्ग को बसा दें और नटी को बुला दें ।

प्रभावती—(आकथं सविपादम्) कथं क्वान्ति एदम्पि उअत्थिद ।
(कथं क्षणित्ति एतदप्युपस्थितम् ।)

कुमार.—अयि प्रियतमे, किमसम्भावितविप्रलम्भनातरासि ?

मया मायामवस्थाय कयापिच्छाययात्मनः ।

वञ्चितेषु चिरत्नेषु विप्रयोगः प्रिये कुतः ? ॥ ४२ ॥

शुचिमुखी—(पक्ष्मी वितत्य) किमियमागतैवास्माकं विद्वद्भ्रमाना
चाग्न्यापारानभ्यायो विभाजरी, तदनुजानातु मा कुलायनोपाय कुमारो
भर्तृदारिका च ।

तरलिका—महाभागोधि सम्पद सुसण्णिहिदसअलपाणिग्गहमङ्गलो-
वधाररमणीअ पल्लङ्किआमन्दिरं गदुअ अलङ्करोदु । (महाभागोऽपि साम्प्रत
सुसन्निहितसकलपाणिग्रहोपचाररमणीय पर्यङ्किआमन्दिर गत्वाऽङ्कुरोतु ।)

कुमार —यदादेदयति भवती । (इति सर्वे समुत्तिष्ठन्ति)

कुमार —(प्रभावतीं पाणी गृह्णाति)

प्रभावती—(सविपाद, स्वगत) क्यों, शीत्र ही यह भी उपस्थित
हो गया ?

कुमार—हे प्रियतमे, असम्भावित विमोग से तुम क्यों कातर हो
रही हो ?

मैं माया का विस्तार कर के अपनी किसी छाया से उन्हें चिरकाल तक
ढगा रहा, प्रिय, विमोग कैसे होगा ? ॥ ४२ ॥

शुचिमुखी—(पक्ष फैलाकर) हम पक्षियों को चुप्पी धारण करवाने
वाली रात उपस्थित हो गई, अब कुमार मुझे अपने घोसले में जाने की
अनुमति प्रदान करें ।

तरलिका—महाभाग भी इस समय वैवाहिक उपकरणों से रमणीय
पर्यङ्किआ मन्दिर में चल कर अलङ्कृत करें ।

कुमार—आप को जैसी आज्ञा । (सभी उठते हैं)

कुमार—(प्रभावती का हाथ पकड़ते हैं)

प्रभायती—(सत्रोऽमुत्कम्पते)

कुमार—(सानन्दम्) अहह !!

मया लब्धं लोके फलमखिलमद्यैव जनुपः

किमन्यत्पुण्यानामियमजनि घन्या परिणतिः ।

नकारभ्याहारप्रतिनिधिरिषाकणिं मुनतो-

र्घनोत्कम्पान्दोलैर्यदि कलरवः कङ्कणमघः ॥ ४३ ॥

अहो स्पर्श !

किं कर्पूरपटीरपङ्कतटिनीस्रोतोविहारश्रमैः

किं सद्यः श्रवच्छसीकरकलानाघोपलालिङ्गनैः ।

चेदालम्ब्य चिराद्यं घरतनोर्वातावधूतापतश्च

पीयूषद्रवसिञ्जरककमलशोडानुकारः करः ॥ ४४ ॥

तरलिका—इदो इदो एतु कुमारो भट्टिदारिका च । (इत इत एतु
कुमारो भर्तृदारिका च ।)

(इति सर्वे परिक्रामन्ति)

प्रभायती—(लज्जा स वाप उठती है)

कुमार—(सानन्द) अहह ! !

मैंने अपने जन्म ग्रहण करने का समस्त फल आज ही पा लिया, और क्या कहूँ मेरे समस्त पुण्यों की यह परिणति धन्य है कि इस सुन्दरी के कङ्कण का कलरव कम्पन से आन्दोलित हो कर नकार के प्रतिनिधि रूप में मुनते को मिल गया ॥ ४३ ॥

अहो, कैसा यह स्पर्श है !

कर्पूर तथा चन्दन की नदी में बिहार करने के परिश्रम का क्या फल है ? खाने वाले श्वच्छ चन्द्रकांत सख के आलिङ्गन से क्या लाभ है, यदि इस सुन्दरी के हवा से चलित अमृतसिक्त रत्नकमलानुस्य हाथ का आलम्बन कर लिया ॥ ४४ ॥

तरलिका—कुमार, भर्तृदारिका, वार इधर चलें ।

(सभी चलते हैं)

कुमारः—अहो दुस्तरेयमस्तव्यस्तता, तथा हि—

स्वेदेनोच्छलतातिपिच्छिलतरा भूयः करादङ्गुली

स्रस्ताप्रस्तकुरङ्गशावकदशः कष्टाद्वप्यम्यते ।

पश्चान्मन्यरसश्चरत्सुधदनासम्पर्कलुब्धात्मना

गन्तुं हन्त पदात्पदान्तरमपि क्व प्राप्यते पौरुषम् ॥ ४५ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति मायामधुरतो नाम चतुर्थोऽङ्कः



कुमार—अहो, यह अस्तव्यस्तता दुस्तर है, क्योंकि-बहते हुए पसीने के कारण फिसलती हुई कुरङ्गनमना वी यह अङ्गुली कठिनाई से अबलम्बित हो रही है, पीछे पीछे चलती हुई इस सुन्दरी के सम्पर्क के लिये लुब्ध होने के कारण मुझ में वह पौरुष कहां है कि मैं एक पग भी चलों ॥ ४५ ॥

(सभी चले जाते हैं)

मायामधुरतनामक चतुर्थं अङ्क समाप्त



पञ्चमोऽङ्कः

(सप्तः प्रविशति नगः)

भद्र—(सबहूनानन्) अहो गुणानुरागो दनुवरात्रस्य, तथाहि तेषु तेषु गङ्गावतरणाद्युद्गीयमानगान्धारादिप्रानभेदेषु घनसुपिरतवानद्ध-
वादित्र-प्रितायमानलयतालनिरोपेषु शङ्करशारासनारोपण-रम्भाभिनय-
दिनाटकभिनयभूमिकादिषु च प्रमादीकृत्रैश्च क्रमेणात्मानु तेनानुरज्यतां
राज्यलक्ष्मीः । अथवा—

पुरतः पुरमेष सावरोधं
विधुरेभ्यो मधुरं समर्पदनया ।
भवितभ्यतया कयाधिदेपा
मस्युपणामपद्धारिता गृहक्षीः ॥ १ ॥

(सायंषष्ठ) अपि नाम लघूकरिष्यत्यस्माकं व्यापारं भावः
अथवा—

प्रथमः परिणीय दानवसुतामम्यःपुराग्तक्षिप-
दास्ते वज्रपुत्रवरोधमिता लक्ष्मिस्तलक्षिताः ।

(भद्र का प्रवेश)

भद्र—(आदरपूर्वक) दनुवरात्र का गूळानुपम आरचनंभद्र है ।
देखिये—गङ्गावतरण आदि मीठ के स्वरजान, पन, सुपिर आदि ठाण्णेर, एवं
शङ्कर-शारासन, रम्भाभिनय आदि नाटकों के अभिनय पर उम्होंने प्रशंसा
हो कर सारी रात्रलक्ष्मी हम लोगों को उपहार में देरी है । अथवा—एहले
से ही अन्तःपुर सहित समस्त नगर को मधुर भाव से हृमाये को कर्तव्य
करने वाली भवितभ्यता ने अमुरों की समस्त सम्पत्ति छीन ली है ॥ १ ॥

(आजा भरे स्वर में) क्या मानिक हमारे वार्द को आछान करे ?
अथवा—

प्रथम दानवरात्रदुनारी के साथ विवाह कर के वज्रपुर के अन्तःपुर
में वही की लक्ष्मी-लाक्ष लक्ष्मी से कलशित हो कर बाह्य कर रहे हैं, अब

प्रकान्तः पुनरेव शाम्भुगद्रयोः पाणिग्रहश्चेद् भवेद्
दैत्योन्मूलतमूलभूतमितररुहृत्यं किमात्यन्तिकम् ॥ २ ॥

तत्सम्प्रत्येव सज्ञापितोऽस्मि शुचिमुख्या यदिदमेव दक्षिणोद्यान-
भागता तरलिकेति तद्गत्वाऽवगच्छामि वृत्तानामद्यतनमन्त पुरस्य ।
(इति परिक्रम्य उद्यानप्रवेश नाटयित्वा) किमियमत्र तरलिकैव रसाल-
मञ्जरीपल्लवानुच्चिनोति । (प्रविश्य । यथानिर्दिष्टा)

तरलिका—(पुरोऽवलोक्य) कथं एस भद्रो । (कपमेष भद्र ।)

भद्र—(उपसृत्य नीचैः) सखि तरलिके, कुनः किलाय मञ्जरी-
पल्लवाद्युच्चय ?

तरलिका—अज्ज वसन्दूसवो त्ति पिअसहीए मम्महाराहणोवभरणाइं
उअहुरीअन्ति । (अद्य वसन्तोत्सव इति प्रियसख्या मन्मपाराधनोपकरणानि
उपह्वयन्ते ।)

भद्र—(विहस्य)

उपहरास रसालमञ्जरीं किं

किमवचितैरथवा तव प्रवालैः ।

यदि गद तथा शाम्भु का यह प्रकान्त विवाह भी सम्पन्न हो जाता है, तो
फिर राक्षसों के विनाश का मूलभूत कार्य ही क्या शेष रहेगा ॥ २ ॥

अभी अभी शुचिमुखी ने सूचना दी है कि तरलिका इसी दक्षिणोद्यान में
आई हुई है, अतः जाकर पता लगाता हूँ कि अन्त पुर का क्या समाचार है ?
(चलकर उद्यानप्रवेश का अनुभव करता हुआ) वयो, यही पर तरलिका
आम की मञ्जरी तथा पत्ते चुन रही है । (प्रवेश करके पूर्वोक्त रूप में)

तरलिका—(आगे की ओर देख कर) वयो, यह भद्र है ?

भद्र—(समीप जाकर मन्द स्वर में) सखि तरलिके, यह
आममञ्जरी तथा पल्लवों का बदन क्या किया जा रहा है ?

तरलिका—आज वसन्तोत्सव है, प्रियसखी के लिये मन्मपाराधन के
उपकरण जुटा रही हूँ ।

भद्र—(हँसकर) आममञ्जरी वयो ले जा रही हो, और प्रवाल के

भद्रः—(घानन्दम्) कथय कथय कथमेतत् ?

तरलिका—अञ्ज कुमारेण परहुदिअं वाराविअ दुए विगदसम्बा अन्तेउरम्मि णेअब्बा । तहिं तण चन्द्रवदीए गदो गुणवदीए सम्बो संजोजइदब्बो । (अद्य कुमारेण परभृतिका द्वारीकृत्य द्वावपि गदशाम्बी अन्तपुर नेतव्यौ । तदा तत्र चन्द्रवत्या गदगुणवत्या साम्बः संयोजयितव्यः ।)

भद्रः—(सोपालम्भमिष स्मिन्वा) सोऽयं भवतीनामारण्यगज-
ग्रह-न्यायः—

एकः पुरः प्रयत्नात् परिचयमुपनीयते करी कुशलः ।

करिणस्तेनारण्याद्भ्येपि निवध्य नीयन्ते ॥ ५ ॥

तरलिका—(नासिकायामञ्जलिं न्यस्यती) अम्महे बिबरिदो एस पञ्जणुओओ । (अहो, विपरीत एष पर्यनुयोगः ।)

भद्र—(विहस्य) उभयथापि जितमस्माभिः । तत्कथय कथमयं परिणतो दूतीकल्पः ।

तरलिका—आअक्खिज्जेव केत्तिअपि कुमाराणं परहुदिआए ।
(आह्वातमेव कतिधा कुमाराणां परभृतिकया ।)

भद्र—(घानन्द) कहो कहो, क्या बात है ?

तरलिका—आज कुमार परभृतिका के द्वारा गद तथा शाम्ब दोनों कुमारों को अन्तःपुर में बुला लेंगे, फिर वहाँ पर चन्द्रवती के साथ गद को और गुणवती के साथ शाम्ब को संयुक्त करावेंगे ।

भद्र—(उलाहने के से स्वर मे) यह रहा आप लोगों का वन्य हाथियों को पँसाने का तरीका ।

पहले एक हाथी को सिध कर के परिचित कर लिया जाता है, फिर उसी के द्वारा अन्य हाथियों को भी जंगल से लाकर दाध लिया जाता है ॥ ५ ॥

तरलिका—(नाक पर अंगुली रखती हुई)

अहा, यह तो उलटा ही प्रश्न है ।

भद्र—(हसकर) दोनों ही स्थिति मे जीव हमारी ही है, अच्छा, यह बताओ कि यह दूतीकल्प सिद्ध कैसे हुआ ?

तरलिका—परभृतिका ने तो कई बार कुमारो से कहा ही था ।

भद्र.—हुं, आख्यातमेकदा गदशाम्बयोः समीपमुपेतया निभृत-
मेतया—

विमलं युवयोः कुलं वयो वा

विनयो वाऽथ पराक्रमकपो वा ।

सुदृशोः श्रुतिमेत्य नित्यशो यद्-

घडिशोःरिक्षतमिवाचरन्ति चेतः ॥ ६ ॥

तरलिका—किं एत्तिअ पहावदीए तहाविहविरहवेअणकमं अदिक-
मिअ बहन्ति भट्टिदारिआओ चन्द्रवदीगुणवदीओ । (किमेतत् प्रभाव-
र्यास्तपाविधविरहवेदनाकलममतिक्रम्य बहतो भट्टिदारिके चन्द्रवतीगुणवत्यौ ।)

भद्रः—तत्तस्ततः ।

तरलिका—अहं अब्ज पहादसमअग्नि सुहसऊणववदेसेण विर-
होवआरे सुबहन्तीणं ताण समीवं गदा आसि तत्थ उण पढमोरजता
ज्जेव परहुदिआए वीसम्भणिग्भर आअक्खिदा । (बहमद्य प्रभातसमये
सुखसकुनव्यपदेशेन विरहोपचारे सुबहन्तीनां तासां समीपं गताऽऽसम् तत्र पुनः
प्रथमोपरक्तया एव परभृतिकया विसम्भनिर्भरमाख्याता ।)

भद्र—हाँ, एक बार परभृतिका ने गद तथा शाम्ब के समीप जा कर
चुपके से कहा था कि :—

आप दोनों आदमियों के कुल, वय, विनय, तथा पराक्रम निश्च हमारी
चन्द्रवती तथा गुणवती नामक सखियों के कानों में पहुँच कर उनके हृदयों को
वशी में फसा कर खींच से रहे हैं ॥ ६ ॥

तरलिका—क्या इतनी ही बात है ?

प्रभावती की विरहवेदना से भी बढ़ कर वेदना का अनुभव कर रही हैं
राजकुमारी चन्द्रवती और गुणवती ।

भद्र—उसके बाद ?

तरलिका—आज प्रातःकाल में कुशलप्रश्न के निमित्त उनके समीप
गई, वे विरहोपचार में व्यस्त थीं, वहाँ जाने पर पहले से ही सैयार बैठी
परभृतिका ने मुझसे कहा ।

भद्रः—(सकीतुकम्) किमाख्यातासि परभृतिकया ?

तरलिका—पिअसहि, पहावदीए पिअसहि त्त अम्ह भट्टिदारिआणं बहिणिआ पिअसही वि तुमं तदो जह तुम्हहिं वि अम्भन्तरं मम्महवे-
अणा निकमणिक्कमन्तजीविदाओ एदाओवि पहावदीसरिच्छं जीआ-
विटुं पारिअन्ति ता दंसेय पक्खवाद्दं करेध पसाद्दं त्ति । (प्रियसखि, प्रभा-
वतीया प्रियसखीति अस्माकं भट्टिदारिकयोर्भणितिका प्रियसख्यपि त्वं ततो यदि
त्वमपि अम्पन्तरमग्गपवेदनातिकमनिक्कामज्जीवितयोरेतयोरेवि प्रभावती-
सदसां जीवितुं पारयसि तत्त दसंय पक्षपातं कुण्ठव प्रसादमिति ।)

भद्रः—ततस्ततः ।

तरलिका—तदो मए जइ बहिआणं सिणेहेण पहावदी ज्जेव एवंकरेदि
जदो ताए पुरा आराहियण दुब्बासामहेसिणा पसण्णेण पसादीरुदा सा
कापि विज्जा जाए पचचक्खीभोदि भअवं बम्हहो तेण उण जहेच्छित्त
जणोपसादीकरीअदि त्ति भणिद । (ततो मया यदि भगिन्योः स्नेहेन
प्रभावती एव एवं करोति यतस्तया पुराऽऽराधितेन दुर्वाससा महविणा प्रसन्नेन
प्रसादीकृता सा कापि विद्यायया प्रत्यक्षीभवति भगवान् ब्रह्मा, तेन पुनः यथेहित-
जनः प्रसादीक्रियत इति भणितम् ।)

भद्रः—(चौतुक से) परभृतिका ने तुमसे क्या कहा ?

तरलिका—(परभृतिका ने मुझसे कहा कि) प्रिय सखि, तुम
प्रभावती की प्रिय सखी हो, इसीलिये राजकुमारी चन्द्रवती और गुणवती की
भी बहन सखी हो, अब यदि तुम भी आन्तरिक कामवेदना से प्रियमाण-
दशा को प्राप्त इन दोनों के लिये प्रभावती की तरह ही जीवन का उपाय कर
सको तो कृपा करो तथा अपना स्नेह दिखलाओ—

भद्रः—इसके बाद ?

तरलिका—इसके बाद मैंने कहा कि बहनो के स्नेह से बाहे तो प्रभावती
ही ऐसा कर सकती है, क्यों कि पूर्वकाल मे आराधना से प्रसन्न होकर महर्षि
दुर्वास ने उसे कुछ ऐसी सिद्धि दी है जिससे ब्रह्मा प्रत्यक्ष होते हैं, फिर वह
अभिलषित पुरुष से भेंट कराने की कृपा करते हैं ।

भद्र—ततस्तत ।

तरलिका—तदो अच्छरीअ विसठ्ठुक्कठापरवसाहिं ताहिं णिभरा-
वेसमत्थिआए मए तदो आअद्धिअ सुहसच्छणवप्रदेसेण ज्जेव पछण्ण
सरीरेण कुमारपज्जुण्णेण सम भट्टिदारिआ तहि ज्जेव णीदा । (तत
आश्चयविसठ्ठुलोककठापरवशयोस्तयोनिभंरावेशमपितया मया तत आगत्य
सुखशकुनव्यपदेशेन एव प्रच्छन्नशरीरेण कुमारप्रद्युम्नेन सम भट्टिदारिका
तत्रैव नीता ।)

भद्र—तत ।

तरलिका—तदो ताण सन्तावसन्तदाइ सरीरावत्थतराइ करुण-
गग्गदक्खर उआहरन्तीए मए परहुदिआए अग्गदो भट्टिट्टदारिए पेक्ख
पेक्ख एदाण बहिणिआण णिरन्तरविरहुठ्ठवेअवेअणा विसूरन्तजीविद
अप्पदीआर अवत्थन्तर दाणिम्पि कीस णिरणुक्कोसासि त्ति उआलहिअ
भट्टिट्टदारिअ महाप्पहावत्तेण पविठ्ठा विअ माग्गदा ताण मणोरह-
वल्लहा । (ततस्तयो सन्तापसन्ततानि शरीरावस्थातराणि करुणगदपदा-
क्षरमुदाहरन्त्या मया परभृत्तिकाया अप्रतो भट्टिदारिके, पश्य पश्य एतयोभगि
न्यो निरन्तरविरहोद्वेगवेदना क्लिश्यमानजीवितमप्रतीकारमवस्थान्तरम्, इदानी

भद्र—उसके बाद ?

तरलिका—इसके बाद आश्चर्य तथा उत्कण्ठा से पराधीन होकर कष्ट
उठाने वाली राजकुमारियों की एकान्त व्यथा से पीड़ित हो कर मैं वहाँ से
आई और कुशलप्रश्न के ही व्याज से प्रच्छन्न शरीर कुमार के साथ
राजकुमारी प्रभावती को ही उन लोगों के पास ले गई ।

भद्र—तब ?

तरलिका—इसके बाद उन लोगों के सन्तप्त शरीर की स्थिति के
सम्बन्ध में करुणापूर्णगद्गद स्वर में परभृत्तिका के सामने ही मैंने राजकुमारी
से निबदन किया कि देखिये अपनी बहनो की इस निरन्तर विरह वेदना से
जीवन को ब्रेशमय बनाने वाली अवस्था को । आप अब भी क्यों निर्दय बनी
हुई हैं मैंने इस प्रकार से राजकुमारी को उलाहना दिया । राजकुमारी बहुत

मपि कथं निरनुश्रीशासि इति उपालम्ब्य भर्तृदारिकाया महाप्रभावत्वेन प्रविष्टा
विव मागंयत तयोर्मनोरपबल्लभौ ।)

भद्र—(सकौतुकम्) अथ किमाह प्रभावती ?

तरलिका—पुणो पुणो पात्थिआए अइ दुष्कर वरु एव तहापि
पराहोणम्हि सिणेहेण वहिणिआण त्ति मणिअताण अग्गदो व्जेअ उअअ
ऊअप्फसिअ चिर गिज्जाअन्तीए तिरक्करिणि परिचइअ पच्चक्कीभूदो
सिरिपज्जुण्णो । (पुन प्रायितयाऽतिदुष्कर खल्वेतद्, तथापि पराधीनास्मि
स्नेहेन भगिन्योरिति भणित्वा तमोरप्रत एव उदकमुपस्पृश्य चिर निष्पापत्वा
तिरक्करिणीं परित्यज्य प्रत्यक्षीभूतः श्योप्रद्युम्न ।)

भद्र—अहो रमणीयता व्यापारस्य । ततस्तत ?

तरलिका—तदो मत्ति अद्धरीअभत्तिसम्भमपरवसाहिं ताहि सम
पहावदीए पुणो पुणो पणभिअ माग्गदा वहिणिआणं मनोरहवल्लहा ।
(ततो इतिवि आश्चर्यभक्तिसभ्रमपरवद्याभ्या ताभ्यां सम प्रभावत्या पुन
पुन. प्रणम्य याचितो भगिन्योर्मनोरपबल्लभ ।)

भद्र—ततस्तत. ।

प्रभावशालिनी है, उनके प्रभाव से चन्द्रवती तथा गुणवती के प्रियतमों को
आया ही समझो ।

भद्र—(कौतुक से) तब प्रभावती ने क्या कहा ?

तरलिका—बार बार प्रार्थना करन पर प्रभावती ने कहा कि यह कार्य
कठिन है फिर भी मैं बहनों के प्रेम से पराधीन हूँ । ऐसा कहकर प्रभावती
ने उनके सामने ही आचमन करके देर तक ध्यान किया, इसके अनन्तर ही
प्रद्युम्न तिरक्करिणी का त्याग कर के प्रत्यक्ष हो गये ।

भद्र—अहा, क्या रमणीय व्यापार है । तब ?

तरलिका—इसके बाद बहनों के साथ ही प्रभावती ने आश्चर्य, भक्ति
तथा सभ्रम के वशीभूत हो कर प्रद्युम्न को बार बार प्रणाम किया तथा उन
से बहनों के प्रियतमों को मगनी की ।

भद्र—इसके बाद ?

तरलिका—तदो इस विहसिअ सुप्पसण्णो पञ्जुण्णो (तत ईवद् विहस्य सुप्रसन्नः प्रशुम्नः)

ध्यायन्त्योरेतयोः प्राप्तौ पती द्वारतीपुरात् ।

गदसाम्बाविदं धीरौ चिरौत्सुक्यं हरिष्यतः ॥ ७ ॥

(ध्यायन्त्योरेतयोः प्राप्तौ पतीद्वारवतीपुरात् ।

गदसाम्बाविदं धीरौ चिरौत्सुक्यं हरिष्यतः ॥ ७ ॥)

एत्तिअं भणिअ अन्तरहिदो तं अज्ज सम्पज्जिस्सदि । (एतद्भणित्वाऽन्तर्हितस्तमद्य सम्पत्स्यते ।)

भद्रः—कुतः पुनरेतयोस्तिरोभावः ।

तरलिका—सिरिपञ्जुण्णेण तिरस्करिणि उअदिसिए एदे वि अन्ते उरेम्मि विहरन्ता गोआविदब्बा । (श्रीप्रशुम्नेन तिरस्करिणीमुपदिश्य एतावपि अन्तःपुरे विहरन्तौ गोपायितव्यौ ।)

भद्रः—(सानन्दम्) किमधिकम्, अलङ्कृतमेव यदुकुलं भवत्या भर्तृदारिकाभिः ।

तरलिका—महाभाग, अम्हाणम्पि भट्टिदारिआणं सुप्पसण्णाइं पुण्णाइं । (महाभाग, अस्माकमपि भर्तृदारिकयोः सुप्रसन्नानि पुण्यानि ।)

तरलिका—हसके बाद थोड़ा मुस्कुरा कर प्रसन्नभाव से प्रशुम्न ने कहा कि—

इन लोगों के प्रियतम ध्यान करते ही द्वारका से यहाँ पहुँच गये हैं, बीर गद तथा साम्ब इनकी चिरहालिक उत्कण्ठा को दूर करेंगे ॥ ७ ॥

इतना कह कर प्रशुम्न अन्तर्हित हो गये, वह बात आज होगी ।

भद्र—फिर वे लोग छिपे कैसे रहेंगे ?

तरलिका—श्रीप्रशुम्न तिरस्करिणी का उपदेश देकर उन्हें भी अन्तःपुर में विहार करते हुए मुप्त रखेंगे ।

भद्र—और क्या ? तुम्हारी राजकुमारियों ने यदुकुल को अलङ्कृत कर ही लिया ।

तरलिका—महाभाग, हमारी राजकुमारियों के पुण्यों ने भी प्रसन्नता दिसलाई है ।

भद्र — तदहमपि ताभ्याम्—

सुरभिसमयमाद्यन्मन्मयोन्माद्यमूर्च्छं

द्विरद्वदहनदादोद्रेरुदु स्यामवस्याम् ।

अनवधिमनुभूयोन्मादमुग्धीभवद्भ्या

यदुदुल्लतिलकाभ्यामेतदावेद्यामि । ८ ॥

स्वयापि तरलिके राजमन्दिरपश्चाद्देशोपासन्तपरिसरे परभृतिका प्रेषणीया । तत्रैव च गत्वा गदशाम्बा स्थास्यत ।

(इति निष्काठी)

[विष्कम्भक]

(ततः प्रविशत उपवनगतौ गदशाम्बा)

गद — (सखेदम्) वत्स शाम्ब, स्वर्गतो दुरवलोरमणीया वसन्त-
लक्ष्मी ।

शाम्ब — (नि स्वस्य सलज्जम) एवमेतत् ।

गद — पश्य—

इत पीत स्फीत स्फुरति वकुल केसरभरे

भद्र—तो अब मैं भी गद तथा शाम्ब से—जो—वसन्त समय के मदमत्त काम की-वधा से पूर्ण विरहवेदना की अधिकता से अनवधिदुरवस्था का अनुभव कर के मूढ़ हो रहे हैं इस बात की खबर कर दू ॥ ८ ॥

तरलिके, तुम भी राजमन्दिर के पश्चाद् भाग में परभृतिका को भेज दो, वही जाकर गद तथा शाम्ब खड़े रहेंगे । (गता है)

(विष्कम्भक समाप्त)

(उद्यानगत गद तथा शाम्ब का प्रवेश)

गद—(सखेद) वत्स शाम्ब, चारों ओर वृष्ट से देखन योग्य फिर भी रमणीय वसन्तलक्ष्मी व्याप्त है ।

शाम्ब—(नि स्वास लेकर, लज्जापूर्वक) यही वान है ।

गद — देखो—

इधर केसर से पीता भवकुल खिल रहा है, इधर कोयल की शुक वान

रितः सूने कर्णञ्चरमभिनव. कोकिलरघः ।
इतोऽपि श्रीखण्डोपवनपवनान्दोलितलता-
कृताश्लेषाः केषां मनसि निविशन्ते न तरवः ॥ ९ ॥

अपि च—

नवामोदोद्गारा मुकुलमुखमुद्राविघटने
विसर्पन्नि श्वासायितरुचिरपाटीर रचनाः ।
इमा. प्रयामायन्ते मधुकरप्रितानैर्धनलता
हतालोकं चक्षु क्षणमपि किमालोकयतु न' ॥ १० ॥

अन्यतोऽवलोक्य—

प्रकम्पयद्भि पवनैर्धनालीं मधुव्रतानां क्षणविद्रुतानाम् ।
रसालशास्त्राशिखरेषु दूरादितोऽपि भीकारघनोऽन्धकारः ॥११॥

अपि च—

प्रसूनपटलारुणोन्नतपलाशजालच्छला-
न्मनासि मदनो बलाद् विरहिणां दहत्येकतः ।

को क्या दे रही है । श्रीखण्ड के उरवन में वायुकृत धान्दोलित लताओं से आलिङ्गित तरुण किसके हृदय को नहीं आकृष्ट कर रहे हैं ॥ ९ ॥

और—यह मुकुलो के विकसित होने पर नवसुगन्ध को प्रसारित करने वाले नि श्वास की तुलना करने में दक्ष चन्दनवन के पवन हैं, इधर भ्रमरों के सञ्चार से वन की लतायें श्याम वर्ण हो रही हैं । हमारी आलों के तो तेज ही समाप्त हैं वे भला क्या देख पायेंगी ? ॥ १० ॥

दूसरी ओर देख कर—

वायु वग से बनावली को कम्पित करते हुए चलित भ्रमरों का सञ्चर अन्धकार आम्रवृक्ष के शिखरो पर सुदूर इस स्थान से भी दृश्य हो रहा है ॥ ११ ॥

और—पुष्प समुदाय से रक्तवर्ण पलाश वृक्ष के ग्वात्र से कामदेव बल-पूर्वक वियोगियों के चित्तों को जला रहा है, फिर जो यह भृङ्गरूप ध्रुमावली

न चित्रमियमुद्गता यदिह भृङ्गधूमावली
विलोचनयुगाञ्जलीर्नयति खेदमस्मान्मुभिः ॥ १२ ॥

शाम्ब.—इदमपरतोऽवलोकयत्वार्थः ।

परोन्मीलन्मल्लीमुकुलकुदराभ्यन्तरगतं
दुरास्वार्थं सद्योदलमविकलीकृत्य सकलम् ।

समीपे संविश्य क्षणमथ परिक्रम्य परितः

न पातुं वा हातुं प्रभवति मरुद्दं मधुकरः ॥ १३ ॥

अपि च—

चरणभरविभङ्गराभिराभिर्विहरति बालरसालमञ्जरीभिः ।

इह मधुरमरुद्दंविन्दुपानप्रणयपरः प्रतिशास्त्रमेव भृङ्गः ॥ १४ ॥

किञ्च—

उल्लसद्भिनवपल्लवतरुणारुणकिरणशोणशिखरेषु ।

चित्रन्तरुषु निरन्तरमधुकरनिकरान्धकारसञ्चारः ॥ १५ ॥

(अन्यतोऽवलोक्य)

परितः सरोरुहरनन्तरतः पवनान् परागपटलं हरतः ।

उठ रही है इसमें क्या आश्चर्य है, और उससे आँखों में जो खेद के आसू आ जाने हैं उसीमें क्या आश्चर्य की बात है ॥ १२ ॥

शाम्ब—आप इधर दूसरी ओर देखें—

अल्पविकसित मल्लीनुष के अन्धन्तर में स्थित कट्ट से आस्वादनोप दल को छण्डित करके, थोड़ी देर तक उसके समीप सोकर, फिर चारों ओर घूम कर यह भ्रमर न तो उसके रस को पी रहा है और न छोड़कर जा ही रहा है ॥ १३ ॥

मधुरमरुद्द के पान का अभिलाषी यह भृङ्ग चरणनिपान से दूट पड़ने वाली इन बालरसालमञ्जरियों के साथ हरशाली पर विहार कर रहा है ॥ १४ ॥

विकसित होनेवाले नवपल्लवों की किरणों से रञ्जित तरुशिखरों पर भी भ्रमररूप अन्धकार का सञ्चार दीख रहा है, यह आश्चर्य की बात है ॥ १५ ॥

कमलवन के बीच से परागपटल को उड़ाकर ले आने वाले पवनों

कतिघाऽनुधावति न यद्धरुषं परुषं वदन्निव रवैर्भ्रमरः ॥ १६ ॥

अपि च—

स्तयकस्तनभारभङ्गुराभि

लंतिकाभि प्रतिकाननं बलन्तः ।

सरसीजलशीकरावदाताः

सुखमेते समयं नयन्ति घाताः ॥ १७ ॥

गदः—एवमेतत्—

अस्तव्यस्तीकृतकिसलयप्रान्तचेलाञ्चलान्तः

कष्टामृष्टाकुलतरवलस्कोरकोरस्तलाभिः ।

वारं वारव्यणितमधुपश्रेणिकाञ्चीभिग्भिः

स्वैरं स्वैरं विहरति मरुन्मालतीमञ्जरीभिः ॥ १८ ॥

अपि च—

उन्माद्यद्विन्ध्यगन्धद्विपकरटगलद्धानमैरेयपान-

क्षीवक्षीवा इवामी प्रतिशिखरिसरिर्निर्झरान्तःस्त्रलन्तः ।

घाता घातापिघातव्यसनिमुनिघनप्रान्तसंशागतस्त्रेदा-

गोदावर्यम्बुनिर्यत्तुहिहितक्लिका भारवाहा घहन्ति ॥ १९ ॥

का—क्रोध से परुष-भाषण करते हुए भ्रमरगण पीछा कर रहे हैं ॥ १६ ॥

और—पुष्पगुच्छरूप स्तन के भार से अवनम ललाओ के साथ कानन में झींझा करने वाले एव सरोवर के जल में स्नान से शीतल यह पवन सानन्द समय यापन कर रहे हैं ॥ १७ ॥

गद—किसलयरूप वस्त्राढ्यल को अस्तव्यस्त करके आकुल कोरकरूप स्तनो को मर्दित करता हुआ, यह पवन सशब्द भ्रमररूप काञ्चीकलापधारिणी इन मालती मञ्जरियो के साथ झींझा कर रहा है ॥ १८ ॥

विन्ध्यवासी गन्धगज के दानरूप मद्य के पान से मत्त पर्वत निर्झरो में टुटकने वाले यह पवन अगस्त्यमुनि के वनप्रान्त में अपनी चकावट मित्यकर गोदावरी जल कण को लेकर धीरे-धीरे बह रहे हैं ॥ १९ ॥

शाम्बः—(सखेदम्) आर्य, विशेषतोऽद्य विप्रतीकारो विप्रयोगञ्जरः ।

गदः—एवमेतत्—

शेषे विशेषेण वियोगवह्निर्दीप्तो दहन्तन्तरभाविरस्ति ।

प्रातः प्रदीपस्य दशावशेषा शिखेष निर्वाणमनुप्रयान्ती ॥ २० ॥

शाम्ब.—आर्य, अपि नामेदं तद्यथाह तरलिका ?

गदः—वत्स, प्रभावत्याः प्रियसखी रत्नियमस्मासु किमन्यथा व्याहरति । (पुरोऽवलोक्य सानन्दम्) किमपरम्, परागतैवेयं परभृतिका ।

(प्रविश्य)

परभृतिका—(विलोक्य) कथं एदे द्वे वि कुमारा अम्हाणं ज्जेव मग्गं पलोअन्तो अग्गदो ज्जेव चिट्ठन्ति । ता उपसप्पामि (इत्थुपसर्पति) (कथमेतौ द्वावपि कुमारौ अस्माकमेव मार्गं प्रलोकमानावग्रत एव तिष्ठतः । तदुपसर्पामि ।)

शाम्ब—(सखेद) सासकर के आज का वियोगसन्तार अप्रतीकार हो रहा है ।

गद—यही बात है ।

अन्त में आकर विशेष की आज विशेषरूप में दीप्त होकर अन्तः को जलाने लगनी है, जैसे प्रायः कालिक प्रदीप को बुझती हुई—वत्सीभर शेष रहने पर—शिखा अधिक प्रकाशित हो उठती है ॥ २० ॥

शाम्ब—आर्य, क्या तरलिका का यह कथन सत्य है ?

गद—वत्स, प्रभावती की प्रियसखी तरलिका क्या हम लोगों से मिथ्या कह सकती है ? (आगे की ओर देखकर—सानन्द) और क्या, यही तो परभृतिका आ रही है ।

(प्रवेश करके) •

परभृतिका—(देखकर) क्यों दोनों कुमार हमारी ही राह देखने हुए आगे में ही वर्तमान हैं, अच्छा समीप जाती हूँ ।

गदशाम्बौ—(साकूतस्मितम्) सखि परभृतिके, इत इतः ।

परभृतिका—(पुर. स्थित्वा प्रणमति)

अभी—कश्चिद्पचीयते प्रियसख्योस्ते शरीरपरिभवः ।

परभृतिका—महाभाआ (महाभागी)

जायण कमलवणीणां दिणअरकिरणेहिं किरइ फंसो ।

चन्दा दर परिह्वयवा ताव ण ताणं समप्पन्ति ॥ २१ ॥

(यावन्न कमलवनीनां दिनकरकिरणैः क्रियते स्पर्शः ।

चन्द्रकरपरिभवास्तावन् तासां समाप्नुवन्ति ॥ २१ ॥)

अहवा (अथवा)—

अज्ज वि कथ परिहरा मोह गमइ ण मणिगलदाणं ।

परिमलहरिअन्तरथा जइ उअसप्पन्ति अन्तिकं भमरा ॥ २२ ॥

(अद्यापि कथं परिहृतमोहं गमयति न मणिगलत्वम् ।

परिमलहृतान्तरा यत्पुसर्पन्ति अन्तिकं भ्रमराः ॥ २२ ॥)

शाम्ब.—(सपरितोषम्) किमधिकम्, मधुरतरव्याहारपारङ्गमैव परभृतिका भवति ।

शय्य शाम्ब—(साभिप्राय, मुस्कुराकर) सखि, परभृतिके इधर आओ, इधर ।

परभृतिका—(आगे मे खड़ी होकर प्रणाम करती है)

दोनों—क्या तुम्हारी सखियों वा शरीरसन्ताप कुछ कम हो रहा है ?

परभृतिका—महाभाग,

जब तक कमलवनी को सूर्यकर का स्पर्श न प्राप्त हो जाता है, तब तक चन्द्रकरवृत्त उनके कष्ट समाप्त नहीं होते हैं ॥ २१ ॥

अथवा—

अभी भी मोह छोड़कर मणि को गले में क्यों नहीं धारण करती है, जब कि सुगन्ध पर आकृष्ट भ्रमर स्वयं समीप में आ गये हैं ॥ २२ ॥

शाम्ब—(प्रसन्नता से) और क्या, परभृतिका (कोयल) तो मधुर-भाषण करने की कला में पण्डिता ही सुनी जाती है ।

शब्द — (सोल्लुठम्) सखि परभृतिके, अन्तिकमुपसर्पन्तीति व्याहरन्ती व्यामोहयसि नौ हृदयम्, यदेतानि परपुरुषप्रवेशानकाशत्रिधुराण्यन्त पुराणि ।

परभृतिका—सन्दिष्ट वस्तु एव महाभाआण कुमारपञ्जुण्णेण ज अवज्ज मअणमहुसवुम्भाअन्नहलवावारपरिस्समोवत्तुभईमामत्तत्तणपराहीणपरिअणे पओसतिमिरम्म लदाहरपच्छ्रणपच्छाट्टुआरिआए राअघर पविसिअ रिअणोपत्तणमग्गेण कन्नअन्तरे पविसिदव्वत्ति । (सन्दिष्ट खल्वत्-महाभागयो कुमारप्रभुम्नेन यद्य मदनमहोत्सवोन्मादबहल व्यापारपरिधमोपवत्तनपराधीनपरिचन प्रदोपतिमिरे लतागृहप्रच्छ नपश्चाद्दारेण राजगृह प्रविश्य विजनोपवनमार्गेण कन्यातपुरे प्रवष्टव्यमिति ।)

शब्द — (सोच्छवासम्) प्रदर्शयतु प्रदेशनेन भवती ।

परभृतिका— (अङ्गुल्या निर्दिशन्ती) महाभाआ, इदो उज्ज्वाण उत्तरेण दरतलतरङ्ग सङ्गमुम्मिसिद सदवत्त ससत्त सीअल समीर हीरन्ताल विल परिमल पराहीनन्तर-णिस्सरन्त-महुअर सहस्स नकारसकातल तरुचल वजल-जन्तु पिम्भोह परिक्खुहिअ जम्बाल-सम्बलिद सलिल मुणालङ्कुर प्यरुद किसलअवरत्तणुम्कटा विसट्ठुलणिमज्जन्त चपलचञ्चूपुडाणुप्प

शब्द— (उत्कृष्टा स) सखि, परभृतिक, समीप में आ गये हैं ऐसा कहती हुईं तुम हमारे हृदयों को मोह में डाल रही हो, क्योंकि यह अन्तपुर तो परपुरुष प्रवेश के लिये अयोग्य है ।

परभृतिका—आप दोनों आदमी को कुमार न सप्रेम कहा है कि आज मदनमहोत्सव के परिधम से जब परिजन पराधीन हो जायेंगे, तब सध्यासमय में अन्धकार में लतागृह के प्रच्छन्न द्वार से राजभवन में प्रवेश करके आप दोनों ब्याक्ति एका न उपवन मार्ग से कन्यान्तपुर में प्रवेश करें ।

शब्द— (उच्छ्वसित होकर) आप मुझे वह प्रदेश दिखा दें ।

परभृतिका— (इशारे से दिखलाती हुई) महाभाग, इधर उद्यान की

उत्तपण उम्भत्तपिअतमावअण संव्यउण सम्मदुम्माअवइल कलहंसकेली-
कल अलाणुअरण-विरुअन्त-कुरअ सारस वहङ्गमणहराङ्गण-परिसराएसर-
स्सइ-सरसीए समासण्णादो वासन्तिआमण्णरादो सुइदसणो उजेव
सो लदाहरो मए उण इदो गट्टुआ महाभाआण आगमणं जाव दुआरि-
गथाए उजेव ठातव्व पच्छ उण सिमिर-पच्छण्ण तुम्हाण अन्तेउर-
मगोवदेसिआ हुविस्स । (महाभाग, इत् उशानावुत्तरेण दरतरलतरङ्ग-
सङ्गमोन्मिपितसदावत्तं-ससक्तशीतलसमीर ह्लियमाणाबिलपरिमलपराधीना-नरनि-
स्सर-मधुकर सहस्रशकारसकन्ततहनल जलजन्नुविशीभपरिखुभितजम्बालसव-
लितसलिलमृगालाङ्कुरप्ररुढक्खिसलपकवन्नोःकण्ठा विसंयुज्जनिमज्जदच्चरञ्चञ्चुपु-
टानुप्रवृत्तप्रणयो-मत्त प्रियतमावचनध्वणसमदो-मादवहलकलहसकेलीकलकञ्जानु-
रण विरुवत्कुरङ्गसारसविहङ्गमनोहराङ्गणपरिसराया सरस्वतीसरस्याः समा-
स-नात् वासन्तिकामण्डपात् सुखदर्शनम् एव तत् लतागृहम् मया पुनरितो
गत्वा महाभागयोरागमन यावत् द्वारगन्तयैव स्थातव्य, पश्चात्पुनस्तिमिरप्रच्छन्न-
योयुंबयोर्-त पुरमार्गोपदेशिका भविष्यामि ।)

शब्दः—एवमस्तु ।

(परभृतिका निष्कामति)

उत्तर दिशा में तरल तरङ्ग के सम्पर्क से शीतल समीर द्वारा जिसकी सुगन्ध फैलाई जाती है, और जिनके ऊपर हजारों की संख्या से भ्रमर शब्द किया करते हैं ऐसे वृक्षों से युक्त जलजन्तु द्वारा सञ्चालित शैवाल सहित जल में उत्पन्न मृगाल के पल्लव को खान के लिये चञ्चल चञ्चुपुट, प्रियतमा के वचन को सुनकर प्रणयो-मत्त हसकुल के कलकल शब्द से अनुकूलनप्रवृत्त सारसगण से रमणीय, अङ्गुसरसो के चारों ओर वर्तमान वासन्तिकामण्डप के समीर ही लतागृह है । मैं यहाँ से जाकर आप दोनों के आने तक द्वार पर ही रहूँगी, फिर पीछे आप जब अन्धकार में छिप जायेंगे, तो मैं आप लोगों को मार्ग बनाऊँगी ।

शब्द—ठीक है ।

(परभृतिका जाती है)

शाम्ब—आर्य, तदलं विलम्बेन । (इति परिक्रामतः)

गद.—(सोच्छ्वासगदम्)

अपसरतु सुरेन्द्रद्रोहिदृषोऽयुनैप-

प्रियविरहविपाके साकमस्माकमद्य ।

प्रसरतु पुरुहूतप्रार्थितार्थेन सार्द्धं

सुरतसमरपारप्रापणं यौवनस्य ॥ २३ ॥

शाम्ब.— एवमेतत् । इदानीन्तु—

एकत्र रम्यरमणीरमणानुरक्तं

देवद्विषामपरतो दलनोद्यतन्तः ।

चेतः प्रयातुमिह वज्रपुरानुरोधं

शृङ्गारधीरशबलत्वमलङ्करोति ॥ २४ ॥

(इति पुनः परिक्रम्य, प्रतीर्षो दिशमवलोक्ष्य)

कथं प्रत्यासन्न एव पश्चिमसन्ध्यासमयः । तथाहि—

शाम्ब—आर्य, अब तो अब विलम्ब करना व्यर्थ है ।

(दोनों जाते हैं)

गद—(उच्छ्वास तथा गद के साथ)

आज हमारे विरहकष्टों के साथ-साथ इन्द्र के सन्तु दैत्यो का घमण्ड दूर हो, इन्द्र का अभिलषित तथा हमारे यौवन के रतपुत्र की पारप्राप्ति सिद्ध हो ॥ २३ ॥

शाम्ब—यही बात है, इस समय तो—

वज्रपुर में प्रवेश करते समय हमारा हृदय वीररस और शृङ्गाररस से एक ही साथ भरा हुआ है क्योंकि एक ओर हमारे हृदय में सुन्दरी ललना का अनुराग है और दूसरी ओर दानवों के दलन का अध्यवसाय विद्यमान है । २४ ।

(फिर चलकर पश्चिम दिशा की ओर देखकर)

यथा सन्ध्या समय आसन्न है, क्योंकि—

रविरयमभूत्प्रागारुढो नमः शिखरं शनै
 झँटति पतति प्रत्यक्सिन्धौ परिस्खलितस्ततः ॥

कथमपि चिरायासादासाद्यते पदमुच्चकै-
 विधिरयमघःकत्तु कश्चित्पलं न विलम्बते ॥ २५ ॥

(पुरोऽवलोक्य) कथमिय सरसी । तदस्यास्तीरे वासन्तिकामण्डप-
 मन्वेपयाव ।

(इति तथा कुक्षत*)

शब्द — (विलोक्य, सखेदमिव) । अहह !!

विधिना विनिपातनाय नीतो
 रविस्ताचलमम्बुधावगावे ।

मुखमुद्रणमम्बुजैरुपतं

प्रणयं के विपदि प्रमाणयन्ति ॥ २६ ॥

शाम्ब — अहं पुनरेवमवलोकयामि—

वदनमुद्रणमस्तमये रवे-

रुचितमाचरितं सरसीरुहे ।

यह सूर्य पहले धीरे धीरे आकाशशिखर पर आरुढ हो गये थे, वही अब
 वहाँ से गिर कर पश्चिम सागर में उतर रहे हैं । किसी तरह यदि चिर-
 परिश्रम से ऊचा पद प्राप्त भी हो जाय तो भाग्य नीचे गिराने में कितनी देर
 करता है ? ॥ २५ ॥

(आगे की ओर देखकर) क्यों, यह सरसी है, अच्छा तो इसके तट पर
 वासन्तिकामण्डप का अन्वेपण करें ।

(वैसा करते हैं)

शब्द—(देखकर खिन्नभाव से) अहह !!

भाग्य न अगाध समुद्र में डुबाने के लिये सूर्य को अस्ताचल पर लाकर
 उपस्थित कर दिया है, इस स्थिति में कमलो ने मुखमुद्रण कर लिया है,
 आपत्ति में प्रेम को कितने लोग प्रमाणित करते हैं ? ॥ २६ ॥

शाम्ब—मुखको तो ऐसा लगता है—

सूर्य के अस्त होने पर कमलो ने मुखमुद्रण कर लिया सो ठीक किया,

किमिव धैर्यनियन्त्रणमन्तरा

सुमनसामवसादन मा पदः ॥ २७ ॥

(निरूप्य) अहो वैपरीत्यं सरोऽवस्थायाः, तथाहि—

शोभामम्भो मधु मधुलिहः सौरभं गन्धवाहा

यस्मात्प्रातःप्रभृति वितताम्भोजहस्ताद्वापुः ।

अस्तं याते सविनरि सरोजातमेतादृगेतत्

सम्पन्मूले ध्रियति विपदं को न संकोचमेति ॥ २८ ॥

(विषदवलोक्य)

त्विषां पत्युस्तत्तत्तुरगरथसञ्चारवसुधा

सुधाघाम्नस्ताराप्रणयपरिचाराजिरमहम् ।

किमाक्रान्तं धिङ्मामिदमुपसरत्यम्धतमसं

प्रकोपोऽयं प्रायोऽरुणतमकरोदम्बरतलम् ॥ २९ ॥

उभौ—(परिक्रम्यावलोक्य च)

द्वैदपूर्वक आत्मनिग्रन्थ के अतिरिक्त सज्जनो के लिये आपत्ति से उबरने का क्या उपाय है ॥ २७ ॥

(देखकर) अहा, सरोवर की कैसी विपरीत अवस्था हो रही है ?

जिस सरोवर ने कमलरूप हाथ से मुक्तभाव से प्रातःकाल से ही जल को शोभा, अमरो को पुष्परस, वायु को सुगन्ध प्रदान किया, वही सरोवर सूर्य के अस्त हो जाने पर इस दशा को प्राप्त हो गया है, ठीक ही है—सम्पत्ति क मूल के विपन्न होने पर किसे नहीं सञ्चुचित हो जाना पड़ता है । २८ ॥

(आकाश की ओर देखकर)

मैं सूर्य के घोड़ो तथा रथ के सञ्चार की भूमि हूँ, चन्द्रमा ने मुझ पर ही तारो के घाय अपनी प्रणयलीला प्रस्तुत की है, फिर भी यह अन्धकार मुझ पर आक्रमण करता आरहा है, धिक्कार है मुझे, इसी क्रोध से आकाश लाल होता आरहा है ॥ २९ ॥

दोनों—(चलकर तथा आगे देखकर)

कथमयमेव वासन्तिकामण्डपः । अयञ्चाप्रतएव लतागृहप्रच्छन्नं
पश्चाद्द्वारदेश । तदस्मिन् मनागन्तर घनतरे तमसि प्रवेद्याव । तद्या-
चदेकान्ने तिष्ठाव ।

(इति तथा कुचः)

शाम्बः—(परितोऽवलोक्य)

चरमाचलव्यवहितस्य रवेः

किरणावशेषमवरोद्घुमिव ।

कथमेद्देव सहसा परित-

स्तमसा समाववृत्तिरे हरितः ॥ ३० ॥

सनिर्वेदञ्च—

अधिगगनमनेकास्तारका राज्यभाजः

प्रतिगृहमिह दीपा दर्शयन्ति प्रभुत्वम् ।

दिशि दिशि विलसन्तः सन्ति अद्योतपोताः

सवितरि परिभूने किञ्च लोकैर्न्यूलोकि ॥ ३१ ॥

यही तो है वासन्तिकामण्डप । यही है लतागृह से प्रच्छन्न पीछे का
दरवाजा । सोही दर के बाद यहीं पर गाढ अन्धकार में प्रवेश करेंगे । तब तक
एकान्त में छिप रहते हैं ॥

(वैसा ही करते हैं)

शाम्बर—(चारों ओर देखकर) पश्चिमाचल में छिपे हुए सूर्य की वषो-
खुची किरणों को घेरकर रखने के लिये एफएफ चारों ओर से अन्धकार ने
दिशार्थे घेर लीं ॥ ३० ॥

विरक्तभाव से—

तारों ने आकाश में अपना राज्य कायम कर लिया है, घर घर में दीरु-
गण अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहे हैं, ये अद्योत के बच्चे दिशाओं में बमहते
फिर रहे हैं, सूर्य के पराभूत हो जाने से लोगों को क्या नहीं देखने को
मिला ? ॥ ३१ ॥

गदः—(निबन्ध) एवमेतत् ।

सम्प्राप्तः प्रतिमन्द्िरं पुरवधूविन्द्यस्तदीपाङ्कुर-

ज्योतिर्जित्वरतामिवेक्षितुमितो निर्यातसूर्यानपः ।

कालः कोपि कलावतीजनमन संक्रान्तकामोच्छ्रान-

द्वथामोदाभ्युधिनीलिमाम्युनिवहे निर्मग्नदिङ्मण्डलः ॥३२॥

अहो महोत्साहशक्तिसम्पन्नता तमसः, तथाहि—

दत्तोष्णांशुकरावकाशममितोऽप्याकाशमाशु प्रसन्-

नन्वेतन्महसामुपाहतरसां इमामन्वकूपे क्षिपन् ।

मत्वेतान्यपि तैजसानि सदृसा चक्षुषि मुष्णन्तहो-

द्रोहोन्मादमयस्तमिच्छनिचयस्त्रैलोक्यमाक्रामति ॥ ३३ ॥

सोत्प्रेक्षन्च—

धियद्वन्याकाष्ठाचितरविकराग्नावुडुशतं

भृतं तैजस्तोयैः कलशकुलमावर्जयति कः ।

गद—(देखकर) यही बात है ।

सूर्य के तेज को ससार से खदेड़ कर, पुरवधुओ द्वारा प्रज्वलित दीप की रोशनी पर अपनी विजय को देखने के लिये यह (अन्धकारमय) समग्र उन्मत्तित्व हुआ है, इस समय युवतियों के हृदयों में वर्धमान कामकृत व्यामाहृषागर की नीलजल राशि में समस्त दिशायें मग्न सी दीख पड़ रही हैं ॥ ३२ ॥

अहा, अन्धकार कितना उत्साहसम्पन्न है, क्योंकि—सूर्य की किरणों को अपने यही स्थान देने में समर्थ आकाश को भी इसने प्रस्त कर लिया है, तेज के सारतत्त्व को अपने भीतर समाविष्ट करने वाली सारी पृथ्वी को इसने अन्धकूप में डाल दिया है । इन नपनों को भी तैजस समझ कर इसने क्षीणशक्ति कर दिया है ऐसा प्रतीत होता है कि इस अन्धकार ने द्रोह तथा उन्माद से परवश होकर त्रैलोक्य पर आक्रमण कर दिया हो ॥ ३३ ॥

उत्प्रेक्षा सा करता हुआ—

आकाशरूप वन की दिशारूप (काष्ठ) में प्रज्वलित रविकिरणस्वरूप वह्नि में तैजस पदार्थ से परिपूर्ण घट सदृश इन तारों को कौन डालता जा रहा

जगत्सर्वं निर्घोषणसमयसंभारस्रुतमै-
स्तमस्तोमैर्धूमैरिव निविलमन्धीयति यतः ॥ ३४ ॥

अपि च—

यान्यासन् वासरधीविरचितमिद्विरोदारदीपोपरिष्ठात्
संखुष्टाऽवाक्पालायितविततविद्यन्नीलता कञ्जलानि ।
भूमीभाण्डे हरिदुभिर्युवतिभिरमितः पात्यमानानि मन्ये
तान्येता-येषु सम्प्रत्यविरलतिमिरस्तोमभावं भजन्ति ॥ ३५ ॥

शाम्भ —आयं, तदयमेव प्रवेशावसरः । (इत्युभौ पश्चाद् द्वारप्रवेश
जाटयत)

(प्रविश्य परभृतिका धनैः सजां ददाति)

उभौ—(निभृतं परिक्रम्य धनैः परभृतिकाया समीपमुपसर्पत.)

परभृतिका—इदो इदो महाभाआ । (इतइतो महाभागी ।) (इति सर्वे
परिक्रामन्ति)

गद —(पुरोऽवलोचय सातङ्कम्)

है । आग के बुतने क समय पैदा होने वाले धूमसमूह की तरह लगने वाले इन
अन्धकारो से समस्त विश्व व्याप्त हो रहा है ॥ ३४ ॥

और—

वासर श्रीस्वरूप रमणी ने सूर्यरूप दीपक पर उलट कर रखे गये कपाल के
सटश प्रतीत होने वाले कैत्रे हुए आकाशरूप पात्र में श्यामगौरु कज्जल
इकट्ठा कर रखा था, उन्हें इस समय दिशारूप युवतियाँ पृथ्वीरूप पात्र पर
गिरा रही हैं, वही गाढ़ अन्धकार का रूप धारण कर रहा है ॥ ३५ ॥

शाम्भ—आयं, यही प्रवेश करने का मौका है । (दोनों पीछे के द्वार से
प्रवेश करते हैं)

(प्रवेश कर के परभृतिका धीरे से इशारा करती है)

दोनो—(धीरे धीरे चलकर परभृतिका के समीप जाते हैं)

परभृतिका—इधर चलो महाभाग । (समीप जाते हैं)

शाम्भ—(आगे देखकर समीप)—

दुर्लक्ष्यासु हरित्सु हन्त भवति प्राची विचेयाकृतिः

(क्षणं निरूप्य)

काञ्चित् प्राञ्चिनमांसि नीलनिविलीं मुञ्चन्ति किञ्चत्त्रियम् ।

(सत्रासच) कि बहुना—

नेदीयानुदयाय शीतकिरणस्नत्किङ्करा यत्कराः

सद्यः स्फोतरुचः सुगारसमुचः प्राचीं परिष्कुर्वते ॥ ३६ ॥

शाम्ब—(निरूप्य सभयम्) कः प्रकारः ? पश्य—

उद्धूयमानेन्दुकरैरुन्मज्जत्यन्धकारवारिनिधेः ।

क्यापि क्वापि विलग्नच्छाया जम्बालघोरणी धरणी ॥३७॥

परभृतिका—अल उद्वेपण । एदाएउजेय मरगअभिस्तीए अन्तरिदं

पमदवण पपिसिअ पच्छण्णमगगेण उजेय कण्णअन्तेउरे पविसिदब्बं ।

(अलमुद्वेगेन, एतावत्तैव मरकतभिरयाञ्जरित प्रमदवन प्रविश्य प्रच्छन्नमार्ग-

णैव कन्यान्तपुर प्रवेष्टव्यम् ।)

(इति सर्वे सत्वर प्रमदवनप्रवेश नाटयन्ति)

दिशाओ के लुप्त होने के कारण पूर्वदिशा का ज्ञान अन्वेपण का विषय हो

रहा है ।

(क्षणभर देखकर) प्राचीन अन्धकार नील कान्ति फैला रहे हैं ।

(हर कर,) और क्या, मालूम पड़ता है कि चन्द्रमा का उदय आसन्न है,

क्योंकि उसके किरणरूप भृत्यगण अमृतदृष्टि करके पूर्वदिशा को परिष्कृत

करने में लगे हुए हैं ॥ ३६ ॥

शाम्ब—(देखकर, सभय) क्या उराय है ? देखो—चन्द्रमा की किरणों से

अन्धकार सागर से आकृष्ट होकर दीवाल की धारा सी प्रतीत होने वाली यह

दृश्यो कहीं कहीं अपनी छाया प्रकट कर रही है ॥ ३७ ॥

परभृतिका—घबड़ाने की जरूरत नहीं है । इसी मार्गस्थित दीवाल के

उसपार प्रमदवन में प्रवेश करके आप दोनों कुमार को कन्यान्तपुर में

प्रवेश करना है ।

(सभी क्षीप्रता से प्रमदवन में प्रवेश करते हैं)

गद—(विलोचय, सकौतुकम्)

किमिह निशया दूतीभावे निवेशितया नया
तिमिरतरुणैः प्रागानीतैर्वनीमवनीभुजः ।
प्रविरलदलच्छायाच्छेदच्छलाद्भिस्सारिकाः
प्रतितरुनलं संगम्यन्ते तुपारकरद्विषः ॥ ३८ ॥

परभृत्तिका—(सकौतुकं स्मित्वा)

अहो दुइत्तणम्मि णिउणत्तण निसाए जं असभाविअसंगमाइ पि
एदाइं चन्दिआअन्धारमिहुनाइ संघड्डिज्जन्ति । (अहो द्वैतेऽपि निपुणत्वं
निशामा यदसंभावितसङ्गमान्यप्येतानि चन्द्रिकान्धकार मिथुनानि सङ्घटयन्ते ।)

उभौ—(विहस्य) कः सन्देहः ?

युष्मादृशीनान्वन्याय नैपुण्याय नमोनमः ।

यूनां येनाङ्कमायान्त दुर्लभाः प्राणवत्तभाः ॥ ३९ ॥

परभृत्तिका—महाभाआ, इदो एदं केलीसेलफदेसमारुहीअदु । तदो
उण अन्तेउरम्मि उजेय ओदरिदव्व । (इति सर्वे केलीशैलैकदेशारोहणं)

गद—(देखकर—कौतुक से)

रात्रिरूप दूती अन्धकार युवको से राजा के वन में विरलपत्र की छिन्न-
च्छाया के छल से चन्द्रकिरणरूप अभिसारिकाओं का वृक्ष के नीचे मिलन
करा रही है ॥ ३८ ॥

परभृत्तिका—(सकौतुक, मुस्कराकर)

अहा ! द्वैत रहने पर भी रात्रि की चातुरी तो देखो कि वह मिलन के
असंभव रहने पर चादनी तथा अन्धकार के जोड़े को मिला रही है ॥ ३८ ॥

दोनों—(हँसकर) इसमें क्या सन्देह ?

आप सदृश दूतियों की चातुरता को धन्यवाद है, जिनके चलते प्राण-
वत्तभा युवतियाँ युवकों को गोद में आ जाती हैं ॥ ३९ ॥

परभृत्तिका—महाभाग, आप दोनों कुमार इधर इस त्रौड़ापर्वत के

नाटयन्ति) (महाभागी, इतएष केलीशैलैरुदेश आरुह्यताम्, ततः पुनरन्त पुरे एव अवतत्तन्वम् ।)

रुभौ—(समन्तादवलोक्य) अहो सैर्मल्यमिन्दुमहसाम्, तथाहि—

अजनि रज्जनिरन्या चन्द्रमःकान्तिरन्या
विपुलचपलवीचिव्याचिता काचिदेव ।
सतरुगिरिसरिद्धुभिः किं हरिद्धुभिस्समेतं
घवल्लिमनि घरिञ्चीमण्डलं मग्दमेतत् ॥ ४० ॥

परभृतिका—(सातड्डुमिव) मूर्त्ति ओदरन्तु महाभाया । (हृदिय-
वतरतं महाभागी ।)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

अन्तःपुराभिसारो नाम पञ्चमोऽङ्कः ।



एक भाग पर आरोहण करें, फिर वहाँ से तो अन्त पुर में ही उतरना होगा ।

दोनों—(चारों ओर देखकर) अहा, चन्द्रमा की किरणें कितनी निर्मल
हैं ? क्योंकि—

घट्चल किरणों से व्याप्त यह रात्रि दूसरी ही हो रही है, चन्द्रमा की
किरणें भी दूसरी ही प्रतीत होती हैं । वृक्ष, पर्वत, एव नदियों तथा
दिशाओं से समेत यह पृथ्वीमण्डल स्वच्छता में निमग्न हो रहा है ॥ ४० ॥

परभृतिका—(सातड्डु की तरह) आप लोग शीघ्र उतरें ।

(सभी का प्रस्थान)

अ त पुराभिसार नामक पञ्चम अङ्क समाप्त



पष्ठोऽङ्कः

(तत प्रविशति कञ्चुकी कुञ्जरश्च)

कञ्चुकी—(समन्तादवलोक्य) विविक्त एवार्य प्रदेशः, तद्वरस वाहीक,
कच्चिचत्त्वयापि किञ्चिदाकर्णित कन्यकान्तःपुरकौलीनम् ।

कुञ्जरः—अज्ज, को क्खु एद पआसिदु पारेइ । (वार्य, कः खत्वेतत्
प्रकाशयितुं पारयति ।)

कञ्चुकी—अपि नामात्र प्रत्येति ते हृदयम् ।

कुञ्जरः—ण क्खु पतिआअदि जइ पच्चक्ख वजेव ण आअक्खदि ।
(न खलु प्रत्याययति यदि प्रत्यक्षमेव नालक्ष्यते ।)

कञ्चुकी—(साभिनिवेशम्) तद्ब्रूहि त्वयापि किञ्चित् प्रत्यक्षीकृतम् ।

कुञ्जरः—तुम्हाण वजेव पुरदो मए भणीअदि । एककम्मि दिअहे
अह देवीए पवई वदन्तरअणि विअरितुं चन्दवदीगुणवदीणं अन्नेउर-
अणुपेसिदो । तत्थ उण कैलीहरब्भन्तर पविसन्तो म्मत्ति ससम्भमाए

(कञ्चुकी तथा कुञ्जरक का प्रवेश)

कञ्चुकी—(चारों ओर देखकर) यह स्थान तो एकान्त है ही, भाई
वाहीक, क्या तुमने भी कन्या-त-पुर के सम्बन्ध में कुछ अपवाद सुना है ?

कुञ्जरक—वार्य, उसे कौन प्रकाशित कर सकता है ?

कञ्चुकी—क्या तुम्हारा हृदय उस पर विश्वास करता है ?

कुञ्जरक—विश्वास नहीं हो होता, यदि प्रत्यक्ष नहीं देखता ।

कञ्चुकी—(व्याग्रहपूर्वक) अज्जा तो बताओ, क्या तुमने भी कुछ
प्रत्यक्ष देखा है ?

कुञ्जरक मैं केवल आपसे बता रहा हूँ, एक दिन मैं किसी पर्व
पर...सूचित करने के लिये महारानी द्वारा चन्द्रावती तथा गुणवती के अन्त-पुर
में भेजा गया था । वहाँ जब मैं कैलगृह में प्रवेश करने लगा तब पदशरकर

परहुदिआए आअच्छिअ-ववदेसेण दुआरदेसम्मि उजेव पडिरुद्धो जाव
आअण्णोमि केलिहरम्मि पुरिसार्णं विअ सलावं पट्टा षण भवणव्भन्तरं
अहं अणुप्पेसिदो । तत्थ षण तत्कालिओपहोअ-चिन्हाइ पलोअन्तो
अप्पलो अन्तो अकम्पि । तत्थ पबिस अच्चरीअ निसट्ठुत्तेन हिअएण
परावुत्तो म्हि ! (युष्माकमेव पुरतो मया भण्यते, एकस्मिन् दिवसे अहं देव्या
पबंधि ररजति विजापयितुम् चन्द्रवतीगुणवत्यो अन्त पुरमनुप्रेषितः । तत्र पुनः
केलीगृहाभ्यन्तरं प्रविशन् झटिति ससभ्रमया परभृतिकया आरक्षिकव्यपदेशेन
द्वारदेश एव प्रतिरुद्धो यावदाकर्णयामि केलीगृहे पुष्याणामिदं संकाप पश्चात्पुनः
भवनाभ्यन्तरमहमनुप्रेषितः । तत्र पुनस्तात्कालिकोपभोगचिह्नानि प्रलोकयामः
आत्मनोऽन्तरकम्पि । तथा प्रविशन् आश्चर्यविसंश्रुत्तेन हृदयेन परावृत्तोऽस्मि ।)

कञ्चुकी—किमत्राश्चर्यम् । न खलु महामायिनोऽन्तरेणान्तःपुरप्रवेशः
पुरुषाणां प्रसज्यते । कथमन्यथा च तथाविध उपनतोऽन्तःशरीर-
सन्तापः ।

कुञ्जरः—अण्णम्मि अच्चाहिद जाणादु अउजो ज कण्णअन्तेउर-
पसाहिआए अन्हाण बअण-बहिणिआए णितलिआए आअक्खिद ।
(अन्यदपि अत्याहित जानात्वार्यो यत्कन्यान्तःपुरप्रसाधिकया अस्माकं वचन-
भगिनिकया निपुणिकयाऽऽख्यातम् ।)

परभृतिका ने पहरेदार द्वारा दरवाजे पर रुकना दिया, वहाँ से हो मैंने केलि-
गृह में पुष्यो का-सा बार्तालाप सुना । पीछे मुझे केलिभवन में जाने दिया गया ।
वहाँ जाने पर मैंने देखा कि तात्कालिक सभोग के चिह्न वर्तमान हैं । उन्हें
देखने ही मैं कांप उठा । आश्चर्यचकित हृदय लिये मैं पैठने ही वापस लौट
आया ।

कञ्चुकी—इसमें आश्चर्य क्या है ? महामायावी के अतिरिक्त पुष्य का
अन्तःपुर में प्रवेश संभव ही नहीं है । और यदि पुष्य का प्रवेश नहीं हुआ तो
उस तरह की शरीरबाधा कैसे उपस्थित हुई ।

कुञ्जर—आप और भी अनर्थ जान लें जो मेरी बहन निपुणिका—
अन्तःपुर-प्रसाधिका—ने मुझे कहा है ।

कञ्चुकी—किन्तत् ?

कुञ्जक—तद् आणम्पि भट्टिदारिआण गुच्चिणीण बिअ लक्खणाद्
लक्खीअन्ति । (तत् आसामपि भट्टिदारिकाणां गुच्चिणीनामिव लम्पानि
लक्ष्यते ।)

कञ्चुकी—(आवेगम्) अहो 'पहाश्चर्यमुन्मर्यादता व्यतिक्रमश्च
कौमारभावस्य ।

कुञ्जक—चिरशालदंसी साहु अणेहि सोम्ह पेक्खित्तुणे परिक्खिदोसि
ता किम्पि तक्केसि ये वसु एदे महापाटञ्चरा कण्ण अन्तेउर दूसेन्ति ।
(चिरकालदर्शी साधुजनैः साकं प्रेषितुं परीक्षितोऽसि, तत् किमपि तर्क्यसि के
सत्त्वेते महापाटञ्चरा कथान्तपुरं दूषयति ।)

कञ्चुकी—किं ब्रवीमि—

वितथं न ब्रह्मचरो न चोत्पथे पुरजनाः प्रवर्त्तन्ते ।

नापि प्रमादभाजं क्षितिपालपरक्षणं पुरुषा ॥ १ ॥

कुञ्जक—अञ्ज मए एव्व सम्भावीअदि जइ नराण एजेव देवि
माआविणो होन्ति । (आय मया एव सम्भाव्यते यदि नराणामेव केऽपि
मायाविनो भवति ।)

कञ्चुकी—वह क्या ?

कुञ्जक—यही कि राजकुमारियों के लक्षण गभिणी के से हो रहे हैं ।

कञ्चुकी—(आवेग से) बहुत बड़ा आश्चर्य ! इतनी उन्मर्यादता तथा
कुमारपन का व्यतिक्रम ॥

कुञ्जक—तुमने बहुत दिन देखे हैं सज्जनों के साथ रहकर परीक्षित
हो चुके हो तुम कुछ तर्क करते हो कि यह कौन बौर हैं जो कथान्तपुर को
दूषित कर रहे हैं ।

कञ्चुकी—मैं क्या कहूँ ?

न ब्रह्म का बरदान मिथ्या हो सकता है, न पुरबासी जन उन्मार्गगामी
हए हैं और न राजात पुर के रक्षकगण ही असावधानता बरत रहे हैं ॥ १ ॥

कुञ्जक—आयं, मैं तो ऐसी सभावना करता हूँ कि मानवों में से ही ये
कुछ मायावी हैं ।

कञ्चुकी—युज्यमानमाशङ्कसे—

प्रयात. पातालं बलिर्पि बलन्वामनतनौ
प्रपेदे वैदेही विपदमभियाता दशमुखम् ।
प्रपन्ने प्रद्युम्ने क्षयितमखिलं शम्बरकुलं
सुख सुप्ता कुत्रापेरिचितपरासञ्जनकरा. ॥ २ ॥

अथ च सर्वथा कोऽप्यय दैवतनीतिनिर्वाहितो दुरर्थोपनिपात ।

पर्य—

हंसा स्व सरसीनिवासरसिका कस्माद्कस्मादिह
प्राप्तास्ते पुरमध्यमद्भुतनिधीनानीनन्तो नटान् ।
तेभ्यश्चेद्वरोघद्रूपणमिदं द्वा इन्त सम्माव्यते
को जानाति करिष्यते किमपरं दुर्मेघसा वेघसा ॥ ३ ॥

कुब्जक—(सचितम्) ता अञ्ज किं त्ति ण एद् महाराज गोअरी
करीअदि । (तत् आय, किमिति न एतत् महाराजगोअरीक्रियते ।)

कञ्चुकी—तुम ठोक आशङ्का करते हो—

बलि ने वामन के ऊपर विश्वास किया तो वह पाताल भेज दिये गये ।
सीता ने रावण पर विश्वास करके विपत्ति भोगी । प्रद्युम्न के आ जाने से सारा
राक्षसकुल समाप्त हुआ, भला अपरिचित जन के साथ आसक्ति करके कौन
सुख से सो सका है ॥ २ ॥

और सब तरह से यह कोई देवगण की नीति से चलाया गया अनर्थ का
सूत्रपात है । देखो—

स्वर्गीय सरोवरो मे निवास करने वाले हंस अकस्मात् यहाँ क्यों आ गये ?
फिर वे नगर के मध्य आश्चर्य के निधि नटो को क्यों ले आये ? यदि उन नटो
के द्वारा ही यह अन्त पुर का दूषण हुआ है तो कौन जानता है कि दुष्ट विधाता
और क्या करेगा ? ॥ ३ ॥

कुब्जक—(चिन्तित होकर) आर्य, तो फिर यह बात क्यों न महाराज
से कह दी जाय ?

अपि च—

कुर्वाणाः कमलवनीविंकासमाशाः

काश्मीरस्तवकभरैः प्रसाधयन्तः ।

लुम्पन्तो विरहदृजं रथाह्वयूना-

मेते घां मिद्विरकराः परामृशन्ति ॥ ८ ॥

किञ्च—

वत्सिकानि तमांसि मांसलतरैरुत्सार्य सद्यः करै-

रुत्साद्य प्रसभं मृगाङ्गमहसामाह्लादलक्ष्मीमपि ।

चक्राणामरुणो जहार करुणोपन्यासगर्भा गिरो

भानुः फेधलमेत्य पङ्कजवनी सौजन्यमर्म्यस्यतु ॥ ९ ॥

अपि च—

येषां हन्त समास्समा इति समाकन्दाकुलं जल्पता

करुपान्तानलतामियाय रजनीविश्लेषितानां विधुः ।

त्वं कस्त्वं क इति क्रुधा कथयतान्तेषामिश्नोमसौ

वया नहीं कर सकते हैं ॥ ७ ॥

कमल वन तो विकसित, दिशाओं को केसर के गुच्छों से प्रसाधित एवं चक्रवाक्युगल के विरह कष्ट को समाप्त करने वाले सूर्य के कर आकाश को छू रहे हैं ॥ ८ ॥

गवन्धि गन्धकार राशि को बलिष्ठ किरणों द्वारा निष्कासन, चन्द्रमा की ज्योति का समापन, चक्रवाकों के करुण रुदन, इन सारे कार्यों को तो मरुत ने सम्पन्न कर रखा है, सूर्य आकर केवल अब कमलवनी के साथ सौजन्य का व्यवहार करें ॥ ९ ॥

रात में चक्रवाक्युगल विछुड़े रहने हैं । वे उच्च समय समा-समा बोलते हैं: उनके रुदन का यह अर्थ लयापे जो सभता है कि यह रात्रि अर्थ के समान है, समासवर्ष का नामान्तर है, रात भर चक्रवाक्युगल क्रन्दन करते हुए समा समा कहकर चन्द्रमा को कष्टप्रद होने के कारण प्रलपित हो उठते हैं, वही चन्द्रमा जब प्रातः काल में चक्रवाकों के 'रैबट्ट' तुम कौन होते हो ? एवं प्रकार की

चक्राणां सहते विनम्रवदनो न्यङ्कारमापद्गतः ॥ १० ॥

किञ्च—

स्मरनरपतेः कारागारायितानयमालया-
नुदयति रयिर्जालैर्जालैर्निवेश्य निजद्विषः ॥
प्रणयिषु निशि ग्रीवाग्राहं बलाद्विनिवेशितं
भुजयिसलताबन्धग्रन्थि हरन् हरिणोदशाम् ॥ ११ ॥

अपि च—

आविष्कुर्वन्निष नवनवेनादरेणानुरागं
सर्वाङ्गीणं सुचिरविरहोन्मूर्च्छितायां नलिन्याम् ।
त्रैलोक्यान्धीकरणतिमिरद्वेषरोपावणत्वं
व्याकुर्वन् वा किमयमुदयत्यम्बरे तिग्मरोचिः ॥ १२ ॥

किञ्च—

विरहेण रवेर्दिनावसाने परिपीतानि विषाणि वारिञ्जिन्यः ।
कमलोदरनिस्सरद्विरेफव्यपदेशादधुना किमुद्गिरन्ति ॥ १३ ॥

कोपपूर्ण उक्ति को विनम्र मुख होकर तिरस्कार के रूप में सुनने को बाध्य है, आखिर वह आपत्ति में जो है ॥ १० ॥

कामरूप नृपति के कारागार सरस बने इन घरों में सिद्धकियो के मारों से अपनी किरणों को पैठाकर सूर्य प्रणयियों की गर्दनों में बलात् डाले गये खियों के बाहुलताबन्धन को दूर कर रहा है ॥ ११ ॥

चिरकालिक विरह से मूर्च्छिता नलिनी के आगे अपने नवनव समग्र अनुराग को प्रकट करता हुआ या त्रैलोक्य को बन्धकर देने वाले बन्धकार पर द्वेष से अपनी सर्वाङ्गीण अरुणता को व्यक्त करता हुआ यह सूर्य आकाश में उदित हो रहा है ॥ १२ ॥

संख्या समय कमलिनियों ने सूर्य के विरह में जो विष निगल लिये थे, इस क्षण में वही विष कमल के अर्धन्तर से निकलते हुए अमर के व्याज से बाहर आ रहे हैं ॥ १३ ॥

अपि च—

जानीमहे रविरतीरय चिरप्रवास-
मानीय नीलमणिकङ्कणमादरेण ।

विन्यस्यति अमरमण्डलकैतवेन

सङ्कोचशालिनि सरोजकरे नलिन्या ॥ १४ ॥

किञ्च—

एवमन्यहरिदङ्गनाविहरणस्यपेतक्षप

भृशन्नुपगतोऽत्र यः किमधुना करैर्मामिति ।

प्रसार्य कमलङ्कुरं अमरभाकृतिस्याजत.

समाचरति पद्मिनी किमु रवेरुपालम्भनम् ॥ १५ ॥

अथ कथमहमिदानीमुदयाचलचूडामणितामप्युपेयुपि सहस्रमयूरैः
शयनीयमुखेनालसो दिवसोचित न व्यवहरामि । (इत्युत्थाय) प्रिये प्रभावति,
(समन्तादवलोक्य) कुत्र या प्रभावती ? शून्यमेवैतत् पल्यङ्किकामन्दिरम्,
तदन्वेपयामि चित्रशालिकायाम् । (इति परिक्रम्य चित्रशालिका प्रवेशं नाट

चिरकालिक प्रवास को बिताकर घर लौटा हुआ सूर्य नायक नलिनिरूप
अपनी प्रेयसी के कमल स्वरूप सङ्कोचशाली (अविहसित और लज्जापुक्त)
हाथ में यह अमरमण्डलरूप नीलम का बना हुआ कङ्कण आदर से पहना
रहा है ॥ १४ ॥

पद्मिनी नायिका प्रातःकाल में कमलरूप हाथ चमकाकर अमर के दार्श
के ध्यात्र से सूर्य को यह कहती हुई उलाहना दे रही है कि रात में तुम
दूधरी दिग्गङ्गा के साथ विहार करते रहे इस समय अरने कर से मुझे छूने हुए
तुमको लज्जा नहीं हो रही है ? ॥ १५ ॥

वर्षों में इस समय भी—जबकि सूर्य भगवान् उदयाचल की ओटी पर
पहुँच गये हैं—धम्मामुक्त से अलसाया है, और दिवसोचित कार्य नहीं कर रहा
है । (उठकर) प्रिये प्रभावति, (चारों ओर देखकर) कहीं गई प्रभावती ?
यह पर्यटिका मन्दिर तो शून्य है । अच्छा तो चित्रशालिका में ईडवा है ।

यित्वा) (सावेगम्) कथं शून्यमेव सर्वम् (सचिन्तश्च) किमन्तःपुरगतः
भवेत् ? अथवा—

अपेक्षते मयोत्साहं श्वसितेऽप्यसितेक्षणा ।

सम्भावनापि का दूरं गमने मम नेत्रयोः ॥ १६ ॥

धिक् प्रमादः,

किं भूयात् कुपितैष कोमलतनः कोपं न सा शिक्षिता
तस्या हन्त हृदः प्रतीपकरणे कस्याथवा पौरुषम् ।

प्रच्छन्ना वत घञ्जनाकुतुकिनी तन्वी भवेदित्यपि
न्यस्तं तद्विनयक्रमेण विकलस्तत्तर्कं मूकीभय ॥ १७ ॥

तदन्यतो गवेषयामि प्रियतमाम् (इति परिक्रमन्नग्रतोऽवलोक्य) अये
कथमासन्नायामेव केलिकमलिनीखण्डतीरस्फटिकशिलावेदिकायां तरलि-
कया सह स्नातोपविष्टा विषादाविष्टा प्रभावती विलोक्यते, यतः—

(जाकर तथा चित्रशालिका में प्रवेश का अभिनय करके) (उद्वेग से) सारा
भवन शून्य ही है । (चिन्ता से) क्या अन्त पुर चली गई ? अथवा—

जो प्रभावती साँस लेने में भी मेरे द्वारा दिये जाने वाले उत्साह की अपेक्षा
करती है, वही मेरी आँसो से दूर चली जायगी इसकी क्या सम्भावना है ?

बड़ी गलती हुई ।

क्या वह कुपित हो गई होगी ? नहीं, कुपित होना तो उसने सीखा ही
नहीं है, उसके हृदय के प्रतिकूल आचरण करे, ऐसा साहस किसको है, मुझे
बहिष्कृत करने के उद्देश्य से वह कहीं छिप गई हो, यह भी उसकी विनय के
विपरीत है, अतः, हे मेरे तर्क, आप अक्षम हैं, अतः मौन ही धारण करें ॥ १७ ॥

तब तक दूसरी ओर दूँदता हूँ (चलता हुआ जागे की ओर देखकर) अरे
प्रभावती तो इसी समीपस्थित कमलिनी सरोवर के तीर पर अवस्थित स्फटिक-
मणि निमित्त शिलावेदिका पर तरलिका के साप बैठी हुई स्नात तथा विषण्ण-
सी लग रही है, क्योंकि—

पुरस्त्यक्तोत्तपं प्रसरदनुतापं सहचरी-

मुपासीनां दीनां क्लृपति न नेत्रातिथिमपि ।

गलद्वारिव्याघ्रादहह सहजामपंकलुषा-

मुपासीर्णामंसे न पुनरनुबन्नाति क्ववतीम् ॥ १८ ॥

तदप्रतो गत्वा प्रच्छन्न एव प्रियतमायाः प्रतायमानस्य विषादस्या-
कस्मिकं कारणमाकलयामि । (इति परिक्रम्य निरूप्य च)

यदेतस्याः कम्पानमद्वरसम्पातसुमगं

चिरादस्यं शोणाकुञ्जनपन्नकोपांघ्रिपतनि ।

सितस्फोताघाटीघृतललितपाटीरमलिकं

न किञ्चित्तम्मानादपरमन्मानादिविषयः ॥ १९ ॥

(इति सचिन्तमेकान्ते स्थितः) ।

(ततः प्रविशति ययानिदिष्टा प्रभावती तरलिका च)

तरलिका—सहि समस्सस समस्सस, अथ हन्त कीरिसं तंउवेअकारणं

वाते करना बन्द कर लिया है, अनुत्पन्न-वो लग रही है, सेवा में उपस्थित दोन सहचरी की ओर दृष्टियेन भी नहीं कर रही है, उसके बालों से पानी धू रहा है मानों वे भी अमर्ष से पूर्ण हों, ऐसे कंधों पर लटके हुए बालों को बह सेंमाल भी नहीं रही है ॥ १८ ॥

इसलिये आगे चल कर छिपे-छिपे ही प्रियतमा के बड़े हुए विषाद के आकस्मिक कारण का पता लगाता हूँ । (चलकर तथा देखकर)

कौपते तथा झुके हुए अश्रुओं पर रक्तवर्ष नयन कोन से भाँसू टरक रहा है, इसने उजली हवच्छ साड़ी पहन रखी है, लज्जत पर अन्दन बिन्दु कर ली है, अतः मान के अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु अनुमान आदि का विषय नहीं है ॥ १९-१ ॥

(चिन्तित भाष्य से एकान्त में सहा हो जाता है)

(पूर्वनिदिष्टरूप में प्रभावती तथा तरलिका का प्रवेश)

तरलिका—सही, धीरे धीरे आरण करो, तुम्हारे अन्तरे का कीने-सा देना

जं अग्नेहिन्पि जाणितुं ण पारीअदि । (सखि समाश्वसिहि समाश्वसिहि, अथ कीदृशं तदुद्वेगकारणं यदस्माभिरपि जातु न पार्यते ।)

प्रभावती—(सबाष्पोपरोधम्) जइ अहं तम्बाहरिउं पारेमि । (यदि अहं तत् व्याहर्तुं पारयामि ।)

तरलिका—(सप्रसरम्) सहि कधेहि कधेहि कहिदो ज्जेव चित्तमण्णु सज्जवेअणो भोदि । (सखि कथय कथय, कथित एव चित्तमण्यु सहवेदनो- भवति ।)

प्रभावती—अयि किङ्कहेमि मन्दभाइणी । (अयि, किं कथयामि मन्द- भागिनी ।)

तरलिका—पट्टिहदममङ्गलं । (प्रतिहतममङ्गलम् ।)

प्रभावती—सुण । अज्ज णिसीहम्मि सो तुम्हाण वल्लहो महाभाओ (इत्यर्थोक्ते वाक्-स्तम्भं नाटयति) (शृणु, अद्य निधीयेस युष्माकं बल्लभो महाभागः)

कुमार.—(सत्रासम्)

किञ्चमया, मन्दभाग्येन विहितं हरिणीदृशः ।

बाष्पोपरोधकुण्ठेऽस्या यन्न कुण्ठेऽप्युदञ्चति ॥ २० ॥

कारण है जिसे मैं भी नहीं जान सकती हूँ ?

प्रभावती—(आँसू रोककर) यदि मैं उसे कह सकती ?

तरलिका—(आगे बढ़कर) सखी कहो कहो, कहने से ही मानसिक उद्वेग सहा होता है ।

प्रभावती—अरी, मैं अभागिनी क्या बताऊँ ?

तरलिका—अमङ्गल दूर हो ।

प्रभावती—सुनो, आज रात में वह तुम्हारे बल्लभ महाशय... (इतना कह कर वचनावरोध का अभिनय करती है)

कुमार—(डरकर) मुझ मन्दभाग्य के द्वारा इस सुन्दरी के प्रति क्या अपराध हो गया है जो इसके बाष्पाकुल कुण्ठ से बाहर भी नहीं निकल रहा है ॥ २० ॥

तरलिका—कधेदु कधेदु पिअसही । (कपयतु कपयतु प्रियसखी !)

प्रभावती—सो तुम्हाणं वल्लहो महाभाओ तादं वज्रणाहं उच्चन्धिअ दक्खिणाए दिसाए परव्वसं विसज्जेदि । पद्धाठण सव्वासुरवाहिणो-पुरस्सराहिं अम्याहिं गाइअदि त्ति मए पलोइदं । (स गुण्णाकं बल्लभस्तातं वच्चनाभमुद्वष्य दक्षिणया दिशा परवसं विसज्जेति, पश्चात्पुनः सर्वासुरवाहिनी-पुरस्सरभिरम्बाभिर्गीयत इति मया प्रलोकितम् ।)

तरलिका—(सविषादमात्मगतम्) अहो दुरत्योवणिवाद्सूअ सिविणअ । (अहो, दुर्योपनिपातसूचकः स्वप्नः ।)

कुमार—(सापराधमिव) सत्यमवश्यं भाविनो महतो मद्पराधस्यो-पसूचक स्वप्नदर्शनमेतत् । भरतु वा, समाधेयमिदमापाततः ।

प्रभावती—(तरलिकाया मुखमवलोक्य शयेदम्) अइ किं मुदिअमुही चिट्ठसि । (अयि किं मुद्वितमुखी तिष्ठसि ?)

तरलिका—(सङ्गतकस्मितम्) सहि सिविणअं फ्लु एदं ण पआदिसस्स उव्वेअस्स कारण । (यत्नि, स्वप्नः सत्त्वेव न एतादृशस्य उद्वेगस्य कारणम् ।)

तरलिका—कहो प्रियसखी, कहो ।

प्रभावती—यह तुम्हारे बल्लभ महाशय तात वच्चनाभ के गले में बंधन लगाकर बरबस ले जाकर दक्षिण की ओर छोड़ जाते हैं । वीधे समस्त असुर-सैन्य के साथ हमारी मातायें उनकी स्तुति करती हैं । ऐसा मैंने स्वप्न देखा है ।

तरलिका—(सविषाद, स्वगत) अरे, यह तो विपत्ति का सूचक स्वप्न है !

कुमार—(सापराध की तरह) सबसूच यह तो मेरे भावी महान् अपराध का सूचक स्वप्न है । जो हो, इस समय तो इसका तात्कालिक समाधान करना ही है ।

प्रभावती—(तरलिका का मुख देखकर) (शयेद) फिर तुम क्यों मुंह बन्द करके बैठो है ?

तरलिका—(बनावटो मुस्मान के साथ) चलि, यह तो स्वप्न है, अतः यह इस तरह के उद्वेग का कारण नहीं है ।

प्रभावती—(साक्षम्) अहं किं इदो वि अहिअदरं उव्वेअकारण जदो तदो ज्जेव आवादमधुरवापारमणहरादो परिणामदीहदुव्विणअदारुणादो हिअअवल्लहादो ज्जेव एआरिसो अगत्यो सम्भावीअदि । तथावि पिअसहि कधेहि किं एत्थ सुहपरिणामत्थ करीअदि । (अयि किमितोऽपि अविक्तरमुद्वेगकारण यत्तत्त एव आपातमधुरव्यापारमनोहरात् परिणामदीघंदुर्विनयदारुणात् हृदयबल्लभात् एव एतादृशोऽनर्थं सम्भाव्यते । तथापि प्रियसखि, कपय, किमत्र सुखपरिणामाय क्रियते ।)

तरलिका—एत्थ किल सिविणअज्झाअम्मि सुणीअदि—‘आलोकितदुस्वप्नाः पुन स्वपन्त्यन्यतो न तद् ब्रुवते’ । (एव किल स्वप्नाध्याये श्रूयते)

प्रभावती—हा मए एद्द किम्पि ण समाचरिअ । (हा मया एतत् किमपि न समाचरितम् ।)

तरलिका—देवगुरुविप्रपूजनसत्कीर्त्तनतो नयन्ति तदुपशमम् ।

प्रभावती—(सावष्टम्भम्) ता समाहरदु पिअसही देवदाण पूओवअरणाइ दिअरराण भोजनवसणसुवण्णाइ । (तत् समाहरतु प्रियसखी देवताना पूजोपकरणानि द्वित्रवराणा भोजनवसनसुवर्णानि ।)

प्रभावती—(रोडी हुई) तो क्या इससे भी बड़ कर कुछ उद्वेग का कारण हो सकता है ? जिसे हृदयबल्लभ बनाया वही ऊपर-ऊपर से मधुर वचन कहकर परिणाम में दुर्विनय भीषण बने और इस तरह के अनर्थ की सम्भावना पैदा कर दे । फिर भी यह बतलाओ कि इस स्थिति में भी परिणाम सुख हो इसके लिये क्या किया जाय ?

तरलिका—स्वप्नाध्याय में ऐसा लिखा है कि—दुस्वप्न देखनेवाले फिर से सो जाय, और दूसरो से चर्चा न करें ॥

प्रभावती—हाय, मैं यह कुछ भी नहीं किया ।

तरलिका—देवता ब्राह्मण तथा गुरु के पूजन से उसको शान्त करते हैं ।

प्रभावती—(रुककर) तो प्रियसखी, देवपूजन की सामग्री और ब्राह्मणों के लिये भोजन तथा वस्त्र ला दो ।

तरलिका—जं पिअसही आणवेदि त्ति (निम्नन्ता) (यत् प्रियसखी
वामावपति ।)

(नेपथ्ये कलकलः)

प्रातः प्रत्यङ्गणोद्यद्रधिकरकलनोत्कण्ठया विस्तृतानां
घस्तूनां सञ्जयायाकुलकरचरणं संघमेण घमद्भिः ।
घातघातोपहृतप्रथलजलधरध्यानमाकर्ष्य पौरै-
रुदगीर्णोऽम्भःकणानां पतनपुलकितैः कोऽपि कोलाहलोऽयम् ॥२१॥
अपि च—

सगर्वं कुर्वन्तः कलितमुकुलं पङ्कजकुलं
विलिम्पन्तो ह्योमोदरमपि दलतकज्जलमरैः ।
अमी भूमौकोपात्कचिदपि करानम्बरमणे-
निरस्यन्तो घाघन्त्यहमहमिकाभिर्जलमुचः ॥ २२ ॥

कुमारः—(आकर्ष्यावलोक्ष्य च) अये कथमयं प्रवर्त्तमानप्रायुट्समय-
सुलभः सर्वतोऽपि वियति वारिधरोपरोधः । अहह !!!

तरलिका—प्रियसखी की जैसी आशा । (जाती है)

(नेपथ्य मे कलकल)

प्रातःकाल धूप में सुलाने के लिये वस्तुयें आँगनों में फैलाई गई थीं, उन्हें
सन्निवृत्त करने के लिये आकुल हाथ-पैर से घबडाहाट के साथ दौड़ते हुए पुरवासी-
पन हुआ से मुलाये गये मेघ का गर्जन सुनकर तथा जलकण के पतन से पुल-
कित होकर यह कोलाहल कर रहे हैं ॥ २१ ॥

गर्व के साथ कमल कुल की मुकुलित तथा आकाश के मध्यभाग की वज्रजल
से लिप्त करते हुए तथा भूमण्डल से सूर्य विरणों की वहाँ दूर भगाते हुए ये
मेघ होड़-छो लगाकर दौड़ रहे हैं ॥ २२ ॥

कुमार—(सुनकर) अरे, क्या यह वर्षा-काल में सुलभ जलधर का घेराव
आकाश में चारों ओर फैल रहा है ? अहह !!

यावद्वियोगविधुरां मधुरादरेण

भानुर्विनोदयति पङ्कजिनीं करेण ।

दुर्दैवदुविलसितोन्नमितेन ताव-

दाक्रान्तमम्बरमनेन दुरम्बुदेन ॥ २३ ॥

(प्रविश्योपकरणादिहस्ता सभ्रान्ता तरलिका)

तरलिका—भट्टिदारिए, समाहरिद वस्तु एदं समाहरिदव्यं, सम्पदं उण एत्थ किम्पिण सपज्जिस्सदि त्ति जाणीअदि, जणे एदे समन्तदो वि जलासारं वरिसन्ता परापट्टिआ उजेव जलहरा । (भट्टिदारिके, समाहृतं सत्वैतत् समाहृतं व्यम्, साम्प्रत पुनरत्र किमपि न सम्पत्स्यते इति ज्ञापते, यत् एते समन्ततोऽपि जलासारं वर्धन्त परापतिता एव जलधराः ।)

प्रभावती—(सर्वैचित्त्यम्) सहि वहं सपज्जदु जइ देव्वं उजेव एदं ण अणुमण्णुदि । [इत्युभे वर्धवातोऽङ्गे नाटयत] (सखि, कथं सम्पद्यता यदि दैवमेव एतन्नानुमन्यते ।)

कुमार—(विलोभय सस्पृहम्)

जब तक वियोग कष्ट से पीड़ित कमलिनी को सूर्य अपने कर (किरण-हाथ) के स्पर्श से विनोदित करे तभी तक दुर्भाग्य द्वारा उन्नमित मेघो ने आकाश को आश्रान्त कर लिया ॥ २३ ॥

(सामग्री हाथ में लिये घबडाई हुई तरलिका का प्रवेष्ट)

तरलिका—राजकुमारी, जो उपकरण लाना था सो मैं ले आई, लेकिन लगता है, इस समय यहाँ कुछ भी नहीं हो सकेगा । क्योंकि जलवर्षा करते हुए ये मेघ आ पहुँचे हैं ।

प्रभावती—(मोह के साथ) कार्य सम्पन्न कैसे हो जब कि भाग्य को ही मञ्जूर नहीं है ।

(दोनों वर्षा के वेग तथा वायु से उद्वेग का अभिनय करती हैं)

कुमार—(देखकर—सस्पृहभाव से)

पुनरुपति गण्डपाली मलकालीमाकुलीकुक्षने ।

कलयति चञ्चलमञ्चल-महमिष जज्ञदानिलः सुतनोः ॥ २४ ॥

अपि च—

घक्रयति घदनमस्याः शीरकारविकारिपुलकितरूपोलम् ।

मामकनधर-निपात-प्रतिनिधि-रधुना नद्याम्पुरुणः ॥ २५ ॥

तरलिका—तुर्यदु तुर्यदु भट्टिदारिआ । (स्वरतां स्वरतां भत्तं शरिका ।)

प्रभावती—(निःस्वस्वोत्थाय) ता सपदं समासण-कोलासेल सिद्-
रत्पासाद् ज्ञेय गच्छन् । [इति स्वरित परिक्रामतः] (तत् साम्प्रतं समास-
कोलासेलसिद्धरप्रासादम् एव गच्छामः ।)

कुमार—अहह,

वेगाद्यग्नितम्यस्थलचलनमलप्रोषिलग्नेकदस्ता

घातव्यस्नाञ्जलानां कथमपि च करेणापरेणाहरन्ती ।

मञ्जोरुष्यानवारानुकरणेतरुणे. किङ्किणी कङ्कणानां

भूयो भूयो भयार्त्तरिव कलकलितैः प्रेरितेषु प्रयानि ॥ २६ ॥

मेरी ही तरह यह मेघ के साथ आने वाली वायु इस गुन्दरी के बरौज को पुकड़ित, बेगनाश को आकुञ्च, एव तपनप्रान्त को चञ्चक क्रिये दे रहा है ॥ २४ ॥

और—मेरे द्वारा क्रिये गये नवशश का प्रतिनिधि यह नक्षत्रकन्य इस गुन्दरी के रोमाञ्चित बरौज मुखमण्डल को घोरुकार से विह्वल तथा बक बना रहा है ॥ २५ ॥

तरलिका—राजकुमारो, घोषता करें, शोषता करें ।

प्रभावती—(साँस लेकर, उठकर), इस समय हय लोग प्रोक्षित के सिद्धर पर बत्तनान प्रासाद में हाथों । (वेग से चरती हैं)

कुमार—वेग के कारण चञ्चक निशम्भ मे गिरने हुए बल्लरन्ध्र पर एक दृष्य रहा हुए वायुवाहित बन्ध के अञ्चक का छार को क्रिये तरह दूधरे हय में पकड़े, मञ्जोरु की चरित का अनुकरण करने वाले इन भयभीत किङ्किणी चरों से प्रेरिता की तरह प्रतीत होना वाको प्रब बरौज या रहो है ॥ २६ ॥

(सस्पृहम्)

याच्ञामिरेव सुरतावसरे कदाचि
दङ्गानि यानि कथमभ्यघ्नोक्तानि ।
सन्दर्शितानि सुदृशो ललितानि तानि
व्यस्ताम्बरं मुहुरनेन समीरणेन ॥ २७ ॥

प्रभावती—(क्षण स्थित्वा, नि श्वसती) अम्महे बलिअ पराहूदम्हि
एदिणा पओहरोग्गम सममेण । (अहो बलवत् पराभूतास्म्येनेन पयोधरोद्गम-
सममेण ।)

कुमार—(सकातमम्) एवमेतत् ।

वक्षोघनक्षोभमुदस्तहारं स्फारं रुगञ्चि शशितावनारम् ।
ऊरु घनोत्कम्पगुरु तदस्यामनेन किन्नापकृत घनेन ॥ २८ ॥
अपि च—

गति प्रतिपदं त्वराकुलतया ऽनया संवक्ष-
उज्जलार्द्रं जघनाम्यरा घरतनो पराभूयते ।

(स्पृहाभाव से)

रतिक्रीडा के अवसर पर कभी कभी नाना विनय के बाद मुझे प्रभावती
के जो अङ्ग देखने को मिले, उन्हीं अङ्गों को बल्ल को अस्त्रव्यस्त करके
इस वायु ने मुझे अच्छी तरह देख लेने का अवसर दे दिया है ॥ २७ ॥

प्रभावती—(थोड़ी देर ठहर कर) (नि श्वास लेती हुई) मेघ के आग-
मन से उत्पन्न घबराहट के चलते, मैं काफी परेशान हो गई हूँ ।

कुमार—(कातरतापूर्वक) यही बात है ।

अञ्चल वक्ष स्पल हार को फेंककर श्वास के निर्गम को रोक रहा है,
जह्वाद्घ्न कम्प के कारण बोझिल हो रहे हैं इस प्रकार इस मेघ ने प्रभावती के
प्रति कौन सा अपकार नहीं किया है ॥ २८ ॥

और—इस सुदरी की द्रुतगति के कारण जगार्द्रं बल्ल के जगन तथा
चरणोंमें लिपट जाने से चलने में बाधा पड़ रही है, और इसको देह

तनुस्तनुतरोदरी स्फुटमुरीकरोत्युम्नमत्-
पयोधर महीधरोद्धनञ्जन्तामुन्नताम् ॥ २९ ॥

प्रभावतो—(पुनरपि त्वरितं परानामति)

तरलिका—(विभाष्य) सहि मा वत् मा वत्तु तुरिअं परिक्रमेहि
आवणसच्चासि दाणि । तुम अणु अम्पि आआसकारणं एध परि-
हरीअटि । (ससि, मा हल्लु मा हल्लु त्वरित परिश्रम्य । आवणसत्वासीदानीद्
स्वम्, अणु अपि आवासकारणमत्र परिहृत्यते ।)

कुमार.—(आतद्धम्) सत्यमाह तरलिका । तदहमेव गत्वा निषेध-
यामि प्रियतमाम् । (इत्यप्रतो गत्वा सप्रतिषेधम्) अलमलमेतावता प्रया-
सेन, यतः—

स्तनजघनकयरीदृग्भारः पुरः परमो गुरु
यदि परमाप मूते किञ्चित्तैप सञ्जीजनः ।
तद्विद्व चतुरे सञ्चारोऽयं त्वरातरलो यथा
सुतनु न तथा धारान्धारा पराभवकारणम् ॥ ३० ॥

उन्नत पयोधर के भार को वहन करने में क्षमता का अनुभव सा कर
रही है ॥ २९ ॥

प्रभायती—(फिर तेजीसे चलती है)

तरलिका—(देखकर) ससि, इतनी तेजी से मत चलो । तुम इन दिनों
गर्भिणी हो, इस अवस्था में थोड़े से परिश्रम से भी परहेज किया जाता है ।

कुमार—(आतद्धित होकर) तरलिका ठीक कह रही है । मैं ही जानर
प्रियतमा को तेज चलने से रोकता हूँ । (ऐसा सोचकर आगे जानर रोकता हुआ)
इतना परिश्रम मत करो, पयोधि—

कुम्हारों ऊपर रतन जपन, वेशपाश, एवं नयनों का विद्याल भार है, उस
पर से सती भी मना कर रही है, कुम्हारा यह सीप छम्परण उतना बटवद
न भी होता, यदि यह अलधारा पराभव का कारण मही होती ॥ ३० ॥

अपि च—

धीरन्धेहि पदे विधेहि न मदे मग्नं मरालीकुलं
 प्रोत्कम्पाकुलितोरु किं कलयसे रम्भासु दम्भार्पणम्
 क्षोभोत्सितपयोधरे किमधिकं घत्से गिरीन् गौरवे
 किन्निश्वासमलोमसौष्ठि कुरुये विम्बायलम्बास्त्वियः ॥३१॥

प्रभावती—(तिर्यक्स्थित्वा) (सकोप तरलिकामौञ्जने)

तरलिका—(स्मिरत्वा) अगगदो भोदु महाभाओ । (अग्रतो भवतु
 महाभागः ।)

कुमारः—यदावेदयति भवती (इति परिक्रामति)

कुमारः—इत इतो भवती । इयपिय क्रीडापर्वत प्रासादरत्नसोपान-
 श्रेणो (इति सर्वे सोपानारोहण नाटयन्ति)

। कुमार —इय हि—

संसिका मृगमदकुङ्कुमोपलिते

और—तुम धीरे धीरे पग रलो, अ-पया ये मरालीगण (तुम्हे तेज चञ्जो
 देखकर अपने को विजयी मानकर) मदमत्त हो उठेंगे, तुम्हारी जाँघें कम्प से
 आकुल हो रही हैं इस प्रकार तुम कदलो वृन् को अभिमानान्वित क्यों कर
 रहो हो ? तुम्हारे सवेग सञ्चरण से तुम्हारे स्तन कम्पायमान हो रहे हैं, इस
 प्रकार तुम पर्वतो को क्यों गौरव प्रदान कर रही हो ? तुम्हारे ओठ निश्वास
 से मलिन हो रहे हैं, और उसके चलने तुम विम्बकक को कान्ति का आश्रय
 क्यों सिद्ध करने जा रही हो ॥ ३१ ॥

प्रभावती—(घूमकर) (क्रोधपूर्ण दृष्टि से तरलिका को देखती है)

तरलिका—(मुस्कुराकर) महाभाग, आगे आइये ।

कुमार—आपका जो आदेश हो । (चलता है)

कुमार—(प्रभावती से) प्रिये श्वर से आओ । यही है क्रीडापर्वत-प्रासाद
 की रत्ननिमित्त सीढी । (सभी सीढी पर चढ़ने का अभिनय करते हैं)

कुमार—यहा के प.पर कस्तूरी एव कुङ्कुम से क्ति होने के कारण पग-

सोपाने प्रतिपदपिच्छला शिलाली ।

पतस्यामभिनयपल्लयश्लथाभ्यां

पद्म्यां ते सुतनु सुदुष्करोऽधिरोहः ॥ ३२ ॥

प्रभावती—(पदान्तरे स्थलनन्नाटयति)

कुमार—अहो, प्रमादः ।

सोपानेऽस्मिन् पयोभिः प्रणयिनि पनितैः पिच्छले विस्थलन्ती

मामालिङ्गय प्रजेति प्रियजन विधिना नाधुना वक्तुमीशे ।

मत्पाणौ पाणिपाथोरुदमयि सरले सन्निधायार्पयन्तो

स्वैरं स्वैरं पदानि प्रगुणय जगतीयौवराज्यं म्मरस्य ॥ ३३ ॥

(इति प्रभावत्या वरतलमामृशति)

प्रभावती—(सकोप हस्तमाच्छिद्य) (तरलिकामवलम्ब्य परिश्रमति)

कुमार—(स्वैरत्यस्मितम् परिश्रम्य) अयमय क्रीडापर्यंतप्रासादः ।

तदत्र प्रविशाम । (इति सर्वे प्रवेशन्नाटयन्ति)

पग पर पिच्छल है, अपने इन पल्लव-मुकुमार खरणी से तुम्हारे लिये इस

सोपान परम्परा पर आरोहण करना कठिन है ॥ ३२ ॥

प्रभावती—(एक पग चलकर गिरने का अभिनय करती है)

कुमार—बहुत भारी भूल हो रही है ।

तुम इस सोपान परम्परा पर—जो गिरे हुए जल से पिच्छल है—गिर जाओगी,

अतः मेरा आलिङ्गन करके चलो, इस तरह से पहले की तरह इस समय मैं

बह नहीं सकता हूँ, फिर भी तुम अपना हाथ मेरे हाथ में रखकर धीरे धीरे

चलो, जिससे कामदेव क जगतीयौवराज्य का समर्पण हो ॥ ३३ ॥

(प्रभावती का हाथ पकड़ लेता है)

प्रभावती—(सकोप हाथ धीनकर) (तरलिका का अवलम्बन लेकर

चलती है)

कुमार—(लज्जा तथा मुस्कराहट के साथ चलकर) यही है क्रीडा-

पर्यंत प्रासाद । हम इसमें प्रवेश करें । (सभी प्रवेश करते हैं)

कुमारः—(अञ्जुल्या निर्दिशन्) अयि प्रियतमे,

घातायनेऽस्मिन्नासीना नवीनाम्भोधरानधः ।

विलोकय जलासार-सम्भारमयमम्बरम् ॥ ३४ ॥

प्रभावती—(अनादृत्यान्यतः समुपविशति)

कुमारः—(उपसृत्य) अयि प्रभावति,

साधारणैः परिजनैः किमुपासनीयं

तद् दूरतो निहितमासनमाध्यामि ।

त्वत्सन्निधौ तरलिकैव कुनोऽपि किंचा

संवाद्दृशश्चरणयोरनयोविशामि ॥ ३५ ॥

तरलिका—(सस्मितम्) आणवेदु एद कुमारस्स पिअसही । (आजा-
पयत्वेतत् कुमारस्य प्रियसखी ।)

प्रभावती—(कोपोत्तरल तरलिकामोक्षते)

तरलिका—(सकृतकक्रोधम्) (कुमारस्य पुरतो हस्त प्रसार्यं) लब्धमिदि
महाभाएण प्थ ओआसो । (लभ्यते महाभागेनात्रावकाश ।)

कुमार—(अञ्जुलीद्वारा इशारा करते हुए) हे प्रियतमे, तुम इस खिडकी के सामने बैठकर नवीन मेघों के नीचे जलधार से भरे हुए इस आकाश-मण्डल को देखो ॥ ३४ ॥

प्रभावती—(अनादर करके दूसरी ओर बैठती है)

कुमार—(समीप जाकर) हे प्रभावती.—

साधारण परिजनों के बैठने के लिये डाला गया वह आसन मैं ग्रहण कर लूँ, तुम्हारे पास तरलिका ही रहे । अथवा—(यदि अनुमति दो तो) तुम्हारे चरणों को दबाता हुआ मैं यही बैठ जाऊँ ॥ ३५ ॥

तरलिका—(मुस्कुराकर) प्रियसखी कुमार को इसके लिये आज्ञा दे दो ।

प्रभावती—(कोपपूर्वक तरलिका को देखती है) ।

तरलिका—(अनावटी कोप के साथ) (कुमार को जोर हाथ फैलाकर) आपको यहाँ स्थान मिलता है ।

कुमारः—(सापराधस्मितम्) सरित् तरलिके,

स्वप्नेऽपि सापराधेऽस्या निमग्नो मय्यनुमदः ।

अप्रारतिक्रमेनन्तु नदि मन्तुमहं क्षमः ॥ ३६ ॥

तरलिका—(जनान्तिकम्) सुदो मो क्यु सिधिणअवुत्तन्तो कुमारण । (प्रकाशम्) भट्टिदारिए तए ज्जेव अत्तणो जीविदादो बन्लदी-
यदुअ बड्ढाविओ जणो कह् अम्हाण यअणं पमाणीकरेदु तासअज्जेय
पिअमणीं णिघारेदु । (श्रुतः स क्षु स्वप्नवृत्तान्तः कुमारेण ? भट्टिदारिके स्वप्ने
वात्मनो जीवितात् बल्लभीकृत्य वदितो जनः क्वमस्माकं बधनं प्रयासो-
करोतु तत् स्वयम् एव प्रियसखी निवारयतु ।)

प्रभावती—(अथयना निष्ठति)

कुमार—यदि पुनरनेकशो विकलमपि स्वप्नदर्शनं दुष्पल्लोदकमिति
तर्कयति भवती, तत्रापि

नान्त.पुत्रप्रतिभयोदयमन्तरेण

पित्रा तव प्रहरणग्रहणं करिष्ये ।

कुमार—(सापराधभाव से सहास) सति तरलिके, यदि स्वप्न में भी
मुझ से अपराध हो जाता था, तो मैं इसके द्वारा दिये गये दण्ड को अनुग्रह
मानता रहा हूँ, किन्तु इस औदासीन्यपूर्ण अपराध को तो मैं मानने से भी अपने
को अक्षमर्ष पारहा हूँ ॥ ३६ ॥

तरलिका—(छिराकर) क्या कुमार ने स्वप्नवृत्तान्त गुन जिग है ?)
(प्रकट) राजकुमारि, जिने तुमने अपने जीवन मे भी अधिक प्रिय बनाकर
बडावा दे रमा है, भला यह हमारी बानों पर क्यों ध्यान दे ? अतः तुम स्वयं
कुमार को रोको ।

प्रभावती—(गुप रहती है)

कुमार—अनेक बार विपन्न होने वाले स्वप्नदर्शन को भी यदि तुम दुष्ट
कण्ठावी मान रही हो, तो मैं तुमको बरदान देता हूँ कि जब तक मन्त्रपुर
पर कोई भय नहीं आ जाता है तब तक मैं तुम्हारे विवाहो पर बल नहीं

किञ्च त्वयानभिहितस्तमहं न हन्ता

किन्ताम्यसि त्वयि चयं वरमर्पयामः ॥ ३७ ॥

प्रभावती—(रोदिति)

तरलिका—(कुमार हस्तसज्जया व्याहरति)

कुमार—(धनै समीपे समुपविश्य उत्तरोयाङ्गलेन नेत्रे प्रभावत्याः प्रमाज्जन्)

प्रिये, प्रमादः कतरस्तथायं माने मनो येन मुधा न्यथायि ।

अनेन लब्धप्रसरेण मुग्धे सीदन्ति सौजग्यघनास्तदृष्यः ॥ ३८ ॥

(तस्या कबरीभारमामृशन्)

यदि कथयसि कान्ते चारितान्तर्दुर्न्तं

चिकुरनिकरमेनं तन्वि ते संवृणोमि ।

उपरि विपारकीर्णं कर्णपद्मावलम्बी

विकलयति किलायं कोमलामंसपालीम् ॥ ३९ ॥

प्रभावती—मा क्खु मा क्खु (इति तिर्यग्बलोक्यन्ती वारयति)

जटाऊगा, और बिना तुम्हारे वहे मैं तुम्हारे पिता को नहीं माहूँगा, तुम क्यों चुपा उदास होती हो ॥ ३७ ॥

प्रभावती—(रोती है)

तरलिका—(कुमार को हाथ के इशारे से कुछ कहनी है)

कुमार—(धीरे से समीप में बैठकर आदर की छोर से प्रभावती की आँखें पोछता हुआ) प्रिये, यह कैसी गलती हुई कि तुमने अपने मन में व्यर्थ मान धारण कर लिया । इसी प्रकार के मानधारण करने से मुजन रमणियों को कष्ट उठाना पड़ता है ॥ ३८ ॥

(उसके केशपाश को सहलाता हुआ)

हे प्रिये, यदि तुम मानसिक कोप को सवृत्त करके मुझे आज्ञा प्रदान करो तो मैं तुम्हारे इन केशों को संवार दूँ । इन केशों के कान पर फैले रहने से तुम्हारे कोमल कन्धों को तकलीफ हो रही है ॥ ३९ ॥

प्रभावती—नहीं नहीं । (टेढ़ी नजर से देखकर रोकती है)

कुमार — अयि कोपने, (मा लघु, मा ललु ।)

माने मनागपि मनो मलिनं विधाय

शौलोचितं सुमुचि चारु विचारयस्य ।

किन्नाम रोषपरुषान्तरता दिता ते

किंचा नितम्बिनि मयि प्रणय प्रसादः ॥ ४० ॥

अपि च—पश्य निरनुक्रोशे,

शोणते नयनस्निरीक्ष्य तरुणि प्रासाय मे सर्वतो

वृत्ताम्भोजकुलं चलन्मधुकरव्याजाद्विषं वर्षति ।

व्याकीर्णा वयरीमघाम्बरतले क्षामाङ्गि वीक्ष्याधुना

मर्जस्तर्जनमाचरन्ति बहुधा मय्यमुदा दुर्मदा । ४१ ॥

अथ च—हे चण्डि,

यदि निरतिनिदानस्याज्य पक्षेय मान

किमिति घत विलम्बालम्बिनी विचतुत्तिः ।

कुमार— हे कोपपराधने

मान से अपने मन को तुमने मलिन बना लिया है फिर भी अपने शोक के अनुकूल ठीक से विचार तो करो कि क्या तुम्हारे लिये कोर से हृदय को बहुदित रसना लाभप्रद है या मुस पर स्नेहपूर्वक प्रवृत्तता प्रकट करना ? ॥ ४० ॥

हे निदये, देखो तो—

तुम्हारे नयनों को (कोर में) रक्तवण देतकर मुझे भयभीत करने के लिये रक्तमल-संश्रलनील प्रसर के व्याज से विष की वर्षा कर रहे हैं, और तुम्हारे केशपाण को आकाश में विहारा हुआ देसकर पक्षेय मुझे हराने के उद्देश्य से बारबार मज्जन कर रहे हैं ॥ ४१ ॥

हे चण्डि

तुम्हारा यह कोर निताम अकारण है अथ यह व्याज्य ही है, फिर इसे छोड़न में विलम्बित विलम्ब का अकारण क्यों कर रही है ? मदमल मयूर

मदमधुरमयूरध्यानसंबान धन्य-

स्वनितजलदजाल कोऽपि कालः प्रयाति ॥ ४२ ॥

(तरलिका प्रति सोपालम्भम्) सखि तरलिके, त्वमपि किन्नास्मत्कृते प्रसादयसि प्रियसरयोम ?

तरलिका—(सासूयमिव) अइ महामाणगहिले, कि त्ति एत्तिअ विक्खुहिअ पक्खवादा पुणो पुणो उव्वेजेसि महाभाअ । पेक्ख, अणुणअ-सुहक रिउविआ करेइ माण मण सिणीहइए । अणुणीदा अवि ण पसण्णा ता कलङ्किदो पणओ । (अयि महामानग्रहिले किमिरयेतावत् विक्खुभित्त-पक्षपाता पुन पुन उव्वेजयसि महाभागम् । पश्य, अनुनयसुखक क्षिप्त्वा करोति मान मन स्निह्यति । अनुनीता अपि न प्रसन्नास्तत्कलङ्कित । प्रणय) ।

प्रभावती—(सकोपम्) तुमभ्यि सपद मह दोग्गह दुस्सिआए उअरि प्पहरसि । (त्वमपि साम्प्रतं मम दुर्ग्रहदूषिताया उपरि प्रहरसि) ।

कुमार—मा मैवमस्मदपराधपक्ष एव निक्षिप्त्वा तरलिकाव्याहारो-ऽपि । न पुनरय तनुरप्यतदपराधहेतु ।

के शब्द को प्रवृत्त करने के कारण धन्यवाद के योग्य यह कराल वर्षाकाल उपस्थित है ॥ ४२ ॥

(तरलिका के प्रति, उलाहने स्वर मे) सखि, तरलिके तुम क्यों नहीं हमारी तरफ से प्रिय सखी को मनाती हो ? ।

तरलिका—(असूया के साथ) हे महामानिनि क्यों इस प्रकार से बिगड़ कर महाभागको पुन पुन उद्विग्न कर रही हो ? देखो अनुनय सुख का परित्याग करके मान किया जाता है परन्तु मानसिक स्नेह बना रहता है । अनुनय करने पर भी जो मानवती प्रसन्नता नहीं प्रकट करती है वह प्रणय को कलङ्क लगाती है ॥

प्रभावती—(क्रोधपूर्वक) तुम भी मुन दुर्ग्रहदूषिता पर प्रहार कर रही हो ?

कुमार—नहीं नहीं, तरलिका के कथन को भी हमारे अपराध के पक्ष में न डाला जाय । इसमें इसका थोड़ा भी अपराध नहीं है ।

प्रभावती—एवण्णेदम् । अत्र उक्तं गोवद्भा उजेवापसा एआरिसाइं वाह-
रदि । (एयं न्विदम्, आर्यपुत्र-गोपिता एव एषा एतादृशानि व्याहरति) ।

तरलिका—(विहसन्ती) सहि सहिस्सं ताव पदं तुम उण अन्ह अहि-
क्खेवक्खरेण विकरेहि अत्तणो वल्लहेण सलावन्ति । (सहि सहिष्णे ताव-
देतत्, स्व पुनरस्मान् अधिक्षेपाक्षरेण विकिर आत्मनो वल्लभेनालपन्ती) ।

प्रभावती—(स्मितमधुरमधोमुखी तिष्ठति) ।

कुमार—(सानन्द प्रभावती पाणौ गृहीत्वा) प्रिये नामुना चातायनेन
सुखावलोकनीया प्रावृषो लक्ष्मी, तदुत्तुङ्गाभिमां वेदिकामारुह्य वैदूर्यवाता-
यनेनावलोकयामः ।

(इत्पुत्याम सर्वे वेदिकारोहर्णं नाटयन्ति)

कुमारः—(समन्तादवलोक्य) कथमुपशान्तालोकः सर्वतो भूलोकः ।
तथाहि—

आत्मानमासारमयेऽन्तरीक्षे दुर्वारनिर्वापणमीक्षमाणः ।

पूर्वाचलप्रान्तगुहागृहान्तः प्रायः परावृत्य रविः प्रविष्टः ॥ ४३ ॥

प्रभावती—यही बात है कि आपके द्वारा रक्षिता होकर ही यह ऐसी
धार्ते कहती है ।

तरलिका—(हंसती हुई) सहि, मैं यह सहलूंगी, तुम मुझ पर तिरस्कार
की वर्षा कर लो, परन्तु अपने प्रियतम से बार्ते करती हुई ।

प्रभावती—(मुस्कराकर मुह नोचा कर लेती है)

कुमार—(सानन्द, प्रभावती का हाथ पकड़ कर) प्रिये, इस खिडकी से
वर्षाश्रुतु की शोभा अच्छी तरह नहीं दीखती है, अतः इस ऊँची
वेदी पर चढ़ कर हम लोग इस वैदूर्यमणि की खिडकी से वर्षा की शोभा का
अवलोकन करें ।

(उठकर सभी वेदी पर चढ़ने का अभिनय करते हैं)

कुमार—(चारों ओर देखकर) पृथ्वी पर सभी ओर प्रकाश सान्त हो
रहा है । नयोंकि—जब सूर्य ने देख लिया कि आकाश की जलवर्षा से मुझे बुत-
जाना पड़ेगा ही, तब वह पूर्वाचल प्रान्तवर्ती गुफारूप पर के भीतर प्रवेश कर
गये ॥ ४३ ॥

अहो महोन्नतारम्भोऽयमाम्भोघरोऽन्धकारः । तथाहि—
 अम्भःसम्भारभीत्या सधितरि निभृतं वैरिणि व्योमधक्का-
 न्तिष्क्रान्ते गजितोर्जस्वनविजयवत्तारकार ढकारवस्य ।
 केकावेशापदेशाद्द्विजवरवदनोद्गीर्ण-पुण्याह-धर्म्यं
 धारासारैरुदीते तिमिरनरपतेरेष राज्याभिषेकः ॥ ४४ ॥

प्रभावती—(विलोक्य सकौतुकम्) अज्जज्ज, णिदिमज्जन्त-रुज्जल-
 महीहर-सिहरमणोहरे पओहरे पुणो पुणो पज्जलिअविप्फुरन्ती विज्जुआ
 म्भत्ति आहरइ हिअआइ । (आर्यपुत्र, निभियमान-कज्जलमहोधरधिवरमनोहरे
 पयोधरे पुनः पुनः प्रज्वलितविस्फुरन्ती विद्युत् झटित्याहरति हृदयानि ।)

कुमारः—(सोपालम्भम्)

हरिद्राहृद्याङ्गि स्मरसमरताठण्यतरला
 मदङ्गे चेत् पङ्केरुहमुष्णि रद्वस्त्वं विहरसि ।
 मनागप्युन्माद्यन्मुदिर-परिरब्धा कथमसौ
 तदा सौदामिन्या हरति हृदयानन्दिनि मनः ॥ ४५ ॥

मेघ का यह अन्धकार बही उन्नति करता जा रहा है,

जलवर्षा से डरकर सूर्यरूप बैरी चुपचाप जब आकाशरूप राज्य से भाग खड़े हुए तब वहाँ अन्धकार-नामक विजयी नृप का राज्याभिषेक हो रहा है, मेघ का गर्जन विजय की सूचना देने वाला बाजा है, मयूर की वाणी ब्राह्मणों के मुख से निकलने वाले पुण्याह शब्द हैं, और जल की धारा जो बरस रही है वह अभिषेक-स्नपन हो रहा है ॥ ४४ ॥

प्रभावती—(देखकर कौतुक से) आर्यपुत्र, दूट कर गिरते हुए कज्जल-पर्वत के शिखरों के समान प्रतीत होने वाले मेघ मे पुनः पुनः प्रज्वलित होकर चमकने वाली विद्युलता हृदय को आकृष्ट करती है ।

कुमार—(उलाहने के स्वर में)

हे हरिद्रावर्ण अङ्ग धारण करने वाली सुन्दरी, काम-युद्ध में यौवन की चञ्चलता प्रकट करने वाली तुम यदि एकान्त में मेरी गोद में विहार करने लगती हो, तब उठने हुए मेघ से आलिङ्गता वह विद्युलता किसी प्रकार भी हृदय को आकृष्ट नहीं करती है ॥ ४५ ॥

प्रभावती—(सलज्ज स्मितम्) अञ्जलत्त, कृष्णिमिस्त विञ्जुआ भक्ति
सघडिअ विहडेइ । (आयपुत्र, किं निमित्त विदुषु क्षणिति सघटय विघटति ।)

कुमार—(सहास प्रभावतीं परिष्वज्य)

मदुत्सङ्गासङ्गस्फुरितरुचिमालोच्य भवतीं

हसन्तीं हारिद्रद्रवनवनदीमञ्जनगिरेः ।

घनकोडकीडातरलमियमात्मीयमफलं

घपुर्विद्युद्वल्लती विघटयति भूया घटयति ॥ ४६ ॥

तरलिका—(सौत्प्रेक्षम्) अह उण एव जाणेमि—(अह पुनरेव जाने)

वठठुण चिउरणिअरं सहीअ दूराहि लम्बिअपइणं ।

तलिअमिसा जलआणं तडिन्ति विदडन्ति द्विअआइं ॥ ४७ ॥

(दृष्ट्वा चिकुरनिकर सख्या दूरालम्बितप्रभिनम् ।

तडिन्मिषाज्जलदाना तडिति विघटन्ति हृदयानि ॥ ४७ ॥)

प्रभावती—तरलिय, तुममिप सपद सपेक्खकवितुणे पविट्टिआसि ।

(तरलिके, त्वमपि साम्प्रतमुत्प्रेक्षाकवित्वे प्रविष्टासि ।)

कुमार—साधु तरलिके, साधु, एवमेवत् ।

प्रभावती—(लज्जा तथा हृषी के साथ) आयंपुत्र, क्यों यह विगुलता
मेघ से त्रिपट कर फिर बलग हो जाती है ?

कुमार—(हँसते हुए प्रभावती का आलिङ्गन करके) कञ्जल पर्वत पर
अवस्थित हरिद्रा रस की नदी की तरह जब तुम मेरी गोद में बसकती रहती
हो, तब हसती हुई तुमको देख कर विगुलता मेघ की गोद में झोडा करते हुए
धपने शरीर को विफल मान कर बार बार उसे मेघ से बलग करती तथा
सयुक्त करती है ॥ ४६ ॥

तरलिका—(उत्प्रेक्षा करती हुई) मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है—

छुले हुए तथा लम्बमान तुम्हारे इन केशवासो को देखकर मेघों के हृदय
नरतड करके फट पडते हैं वही यह विगुलतायें होती हैं ॥ ४७ ॥

प्रभावती—तरलिके तुम भी अब उत्प्रेक्षा पूर्ण कविता करने लगी हो ?

कुमार—ठीक कहती ही तरलिके, यही बात है ।

एतस्याः कवरीभिरम्बरतल व्यालम्बिनाभिर्बला-
दाकम्पापहृतासु दुर्भंगतराः सम्पत्सु पाथोधराः ।

तत्तालस्ननिनार्दनादविघुराप्यधूणि भूयस्तरा-

पयासारान् विस्तृजन्नि विस्फुटतलिद्भ्याजस्फुटद्वस्रसः ॥४८॥

प्रभावती—(अन्यतोऽवलोक्य) निरन्तरासारसम्भारसंभरिज्जन्त-सरो-
चरन्तर निमज्जन-पङ्कनन्तरुद्भोग-भमरभकार-सकलिद-कमलिनी-दल-
न्ताणिवचन्त-सलिनसद् सम्मद-बहुलो पलोइअदु कमलवणो ।
(निरन्तरासारसभारसभ्रियमाणसरोवरान्तनिमज्जन्तु ज्ञान्तरुद्भिन्न अमरभंकार-
सङ्कलित-कमलिनीदलताड्यमान सलिनशब्द सम्मदं-बहुलं प्रलोक्यता कमल-
वनम्) ।

कुमारः—(विहस्य) इदमित्थमवलोकयामि ।

स्वन्नेत्रेण जिताभ्यगाधसलिले मज्जन्ति लज्जामरै-

रुद्भ्राम्यद्भ्रमराणि सम्प्रति सरोजानीनि जानीमहे ।

धारासारपराहृताकुन्तदलभ्याजेन पाथोजिनी

सोरस्नाडमहो विदह्वविह्वतै स्नेहोचितं शोचति ॥ ४९ ॥

इसके खुले हुए केशों ने आकाश मलट्टक कर मेघों की सारी शोभा-
सम्पत्ति बलपूर्वक आक्रमण करके छीन ली है, मेघ नितान्त दरिद्र हो रहे हैं,
इसलिये बिजली के व्याज से उनके हृदय विदीर्ण हो रहे हैं, और गर्जन रूप आर्त
स्वर के साथ जलरूप अश्रुप्रवाह जारी है ॥ ४८ ॥

प्रभावती—(दूसरी ओर देखकर) निरन्तर जलवर्षा के कारण सरोवर
पूर्ण होता जा रहा है, उसमें कमल डूबने जा रहे हैं, डूबते हुए कमलों से बाहर
निकलने वाले भ्रमरगण झकार कर रहे हैं कमलिनी के पत्तों से ताड़ित जल के
शब्द के साथ मिलकर भ्रमर के झकार-समदं उठा रहे हैं, इस प्रकार से यह
सरोवर देखने के योग्य हो रहा है इमे देखिये ।

कुमार—(मुस्कराकर) मैं तो इसे इस तरह देखता हूँ । तुम्हारे नयनों से
पराजित कमजग से अगाध जल में डूब रहे हैं, निराश्रय भ्रमर चक्कर काट
रहे हैं, धारावृष्टि से ताड़ित पत्र के व्याज से कमजिनी छाती पीटकर रो रही
है, तथा पक्षियों के कलरव द्वारा अपना शोक व्यक्त करती जा रही है ॥ ४९ ॥

(अन्यतोऽवलोक्य)

इतो घातघ्रातव्यतिकर तिर-कम्पितशिरः-
स्फुरज्झंझाकारस्वर-मुखर कान्तार तरवः ।
प्रदेशा- प्रोत्तुङ्गक्षितिघर विनिर्गन्तवरङ्गर-
प्रपातप्रभ्रष्टोपलशकल विभ्रस्त विह्वगाः ॥ ५० ॥

अपि च—

पधनै प्रकम्पितघनैर्वलिता
विकसत्कदम्बशत संघलिता ।
घनशैलशाद्वलवलत्सरित
शबलीभवन्ति हरित परितः ॥ ५१ ॥
(श्रुतिमुखमभिनीय)

ताण्डवोन्मद मयूर मण्डली मण्डलीकृतशिखण्डमण्डना ।
नीलशाद्वलविशालमेखलोन्मेषलोलपवना घनावली ॥ ५२ ॥

प्रभावती—अवन्त, गवजन्त निविल जलअर लोअनोहिल्लत्तणु-
त्ताण लोअणसुह-समुण्णामिअगीवमुग्गिण्ण-केकाणुकार-विरुअन्तरम्मह-

(दूसरी ओर देखकर)

हवा के सम्पर्क से वृक्षों के ऊपर के हिस्से काप रहे हैं, क्षमावात
के स्वर से वे मुखर भी हो रहे हैं, ऊँचे पर्वतों से निकलने वाले निर्झर के
प्रपात से प्रस्तर-खण्डों पर उत्पन्न होने वाली ध्वनि से पक्षीगण भयभीत हो
रहे हैं ॥ ५० ॥

हवा से हिलते हुए वनों से, विकसित घातघातकदम्ब तरुओं से, और हरे
भरे पर्वत पर प्रवहमान नदियों से दिगार्ये परिपूर्ण हो रही हैं ॥ ५१ ॥

(श्रवणमुख का अभिनय करके)

बनावली में ताण्डवपरामण उ-मदमयूर अपने पुच्छ को मण्डलाकार बनाये
हुए हैं, और हरे घासफूस से भरी भूमिवाले स्पलवर हवा खेल रही है ॥ ५२ ॥

प्रभावती—आर्यपुत्र, गरजते हुए घने मेघों को देखकर लोचन मुख से

बलकार-हृक्काविअगोवीमण्डलन्तर-तण्डविणा सिंहण्डिणा मण्डली-
कदो एस कलावो विकिण्ण वल्लोअदि । (आर्यपुत्र, गर्जनिविडज-
लधर-लोकनकमितोत्तानलोचनसुख समुन्नमितश्रीवमुद्गीर्णं केकानुकार विहतान्तरं
महाबलकाराकारित गोपीमण्डलान्तर ताण्डविना शिक्षण्डिना मण्डलीकृत एष
कलाप विकीर्णोऽवलोकयते ।)

कुमारः—(सोपेक्षम्)

तव नञ्च वरीभिर्यककृताऽनेकवारं
कमलमुखिकलाप ककिनाङ्गेन चर्ष्यं ।

अथवा वर्णनीय एवायम्—

गुणवती नववती हृगविप्रतीपप्रयुक्तं
परिभवमपि मन्ये पुण्यभाजो भजन्ति ॥ ५३ ॥

(प्रविश्य)

परभृतिका—(प्रणम्य) भट्टिदारिए, चन्द्रवती गुणवतीओ पणमिअ
विण्णवेन्ति, अडन अम्हाण केनीहर कुमार पञ्जुण्ण सणाहाए भट्टि-
दारिआए आअच्छिअ ज किम्पि दोहलअ अहिलहीअदि तस्सि उज्जेव
करीअदुप्पसादो त्ति । (भट्टिदारिके, चन्द्रवतीगुणवत्यौ प्रणम्य विज्ञापयतः,

गर्दन उठाये केका शब्द करते हुए पुकारनवाली गापियो के बीच ताण्डवनृत्य
करते हुए मयूरमण के मण्डलाकार पुच्छ बिखरे दीख रहे हैं ॥

कुमार—(उपेक्षा से) मयूर के जिन कलापो को तुम्हारे केशपाश ने
अनेक बार पराजित किया है उनका वणन कौन करे ? अथवा—इनका
वर्णन होना ही चाहिये, गुणाधान की तरह ऐसे श्रेष्ठ विरोधिजन द्वारा प्रस्तुत
पराभव प्राप्त करना भी पुण्य का फल होता है ॥ ५३ ॥

(प्रवेश करके)

परभृतिका—राजकुमारी, चन्द्रवती तथा गुणवती ने प्रणामपूर्वक निवेदन
किया है कि आज हमारे केलिगृह में कुमार प्रद्युम्न के साथ आकर प्रभावती

अद्यास्माकं केलीगृहं कुमारप्रद्युम्नसहायया भर्तृदारिकया आगत्य यद् किमपि दोहदकमभिलष्यते तस्मिन्नेव क्रियता प्रसाद इति ।)

प्रभावती—(लज्जते)

तरलिका—भट्टिदारिए, आमन्त्रितासि बन्धवाचारविहिणा बहि-
णिआहिं । (भर्तृदारिके, आमन्त्रितासि बान्धवाचारविधिना भगिनीभ्याम् ।)

परभृतिका—ण केवलं आमन्त्रिता, किं षण आआरिदा वि । (न केवलमामन्त्रिता किं पुनराकारितापि ।)

कुमार—सर्वथानुल्लङ्घनीयोऽयं भगिन्योरभिलाषः ।

प्रभावती—(सलज्जस्मितम्) परहुदिए, ऋञ्जुअ वजेव किं ण भणासि मग्गन्ति दोहलअ बहिणि आओत्ति । (परभृतिके, ऋञ्जुरुमेव किं भणसि यावतो दोहदकं भगिन्याविति ।)

परभृतिका—(स्मित्वा) एवं भट्टिदारिआए भणिदव्व । (एतद् भर्तृदारिकया भणितव्यम् ।)

कुमारः—(सानन्दम्) उभयमपि एतदभिनन्दनीयं यदुकुलस्य । तदल विलम्बेन । संप्रत्येव संपादयामः परभृतिकाप्रार्थ्यमानमर्थं यद्यमुपशान्तो घनासारः । तथाहि—

जो कुछ दोहद अभीष्ट हो उसे स्वीकार करें ।

प्रभावती—(लज्जित हो जाती है)

तरलिका—राजकुमारी, बान्धवाचार के अनुसार बहनो ने बुलाया है ।

परभृतिका—केवल बुलाया ही नहीं है अनुरोध भी किया है ।

कुमार—बहनों का यह अनुरोध सर्वथा अनुल्लङ्घनीय है ।

प्रभावती—(सलज्ज भाव से मुस्कराकर) परभृतिके, सीधे यह क्या न कहती हो कि बहनें दोहद की इच्छा करती हैं ।

परभृतिका—(हँसकर) यह तो आप कहें ।

कुमार—(सानन्द) दोनों बातें यदुकुल के लिये प्रसन्नता की हैं । विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं है । परभृतिका द्वारा प्रापित वस्तु का हम अभी सम्पादन करें । वर्षा भी रुक गई है ।

शमितसलिलविन्दुबाणवर्षः
 स्खलिततलित्करवालदुर्भगाशः ।
 रविकिरणकृपाणपाट्यमानः
 प्रतिभटवत्परिभूयते पयोदः ॥ ५४ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

केलीशैलो नाम पद्योऽङ्कः ।



जलविन्दु रूप बाण की वर्षा शान्त है, विजलीरूप तलवारो का दिशाओ
 मे चमकना बन्द है, सूर्य की किरणरूप कृपाण से विदारित शत्रुस्वरूप मेघ
 पराभूत हो रहा है ॥

(सभी जाते हैं)

केलीशैल नामक छठा अङ्क समाप्त

सप्तमोऽङ्कः

[ततः प्रविशति दैत्यपुरोधा]

दैत्यपुरोधा — (आकाशे कर्णं दत्त्वा) किं ब्रवीपिसमन्ततः समासन्ना सुरसामन्तवर्गः स्वर्गादिसर्वलोकविजययात्रा मुहूर्त्तमङ्गलेभ्यो भवन्तमपेक्षते परमेश्वर इति । (सवैचित्यम्) कथमुल्लङ्घितो देवेन भगवतो दाक्षायणीभर्तुरादेशः ? तद्गच्छ, विज्ञापय महाराज भयमहमागत इति ।

(परिश्रमन्, सचिन्तोद्वेगम्)

यस्यैताः श्रुतयश्चरन्त्यनुचरीभूता किमेतावता
यस्याशां चिरमाचरिष्णुरकरोद्विष्णुस्तनुं धामनीम् ।
तद्वागब्रह्म विलङ्घयन् जनयितुर्जम्भद्विषं विद्विषन्
देवः किन्न विभेति शान्तमथवा ब्राह्मो न जिहोवरः ॥ १ ॥

[दैत्य पुरोहित का प्रवेश]

दैत्यपुरोहित— (आकाश की ओर कान लगाकर) क्या कह रहे हो, समस्त क्षत्रिय योद्धागण के साथ हमारे महाराज स्वर्गादि सकल लोक की यात्रा के समय मङ्गल अनुष्ठान के लिये हमारी अपेक्षा कर रहे हैं । (आश्चर्य के साथ) हमारे महाराज ने भगवान् मरीचि के आदेश का कैसे उल्लङ्घन कर दिया ? दूँडा चलो, महाराज से निवेदन करो कि मैं अभी आ रहा हूँ ।

(चलता हुआ चिन्ता तथा उद्वेग के साथ)

जिस भगवान् मरीचि के आगे श्रुतियाँ दासी बनो रहती है, इतना ही नहीं, जिन की आज्ञा के पालन में अनुरक्त विष्णु ने धामनरूप धारण किया, उन्हीं पितृदेव के वचन का उल्लङ्घन कर रहे हैं । हमारे महाराज इन्द्र के शत्रु बनकर, फिर भी उन्हें अपने पूज्य पितृदेव की आज्ञा टालने में भय नहीं हो रहा है, अथवा ब्रह्मा का वरदान मिथ्या नहीं हो सकता है ॥ १ ॥

(पदान्तरे दुर्निमित्तान्यनुभूय) अहो महोत्पातानामुपनिपातः । तत्कि-
मेतत् ? अथवा किमन्यत्, पर्यवसितप्रायाः प्रायशो दैत्यकुलविभूतयः ।
(सखेदोपालम्भम्)

हा घातः कतमस्तच्चैव विषमः स्वाङ्गीकृते व्युत्क्रमः ?
तावानद्य तिरोहितः कथमभूद्भूतेषु भीतेर्भरः ।
ये विन्दून्पि चारिणो न विकिरन्त्याह्वामृते भूपते
स्तेऽमी रेणुघनानसृग्द्रवकणान्वर्षन्ति पाथोधराः ॥ २ ॥

अपि च—

यानेषु क्षणमीदृते क्षितिपतिर्दूरादनन्यस्पृश-
स्तानेवापनयन्ति ये परिमलानावासभूमिरुहाम् ।
क्षिप्तोत्पातिपताक्रमाकुलचलोद्भग्नाभिरामद्रुमं
तेऽमी इन्त समीरणाः प्रविकिरन्त्युच्चैस्तरां शर्कराः ॥३॥

किञ्च—

गातुं नाप्सरसां गणोऽपि लभते यत्प्राङ्गणोपाङ्गनं
घोरास्तत्र शिवा निराकुलमिवाक्रन्दन्त्यमन्दस्वराः ।

(एक पग रखते ही दुर्निमित्त का अनुभव कर के) अहो, महान् उत्पात
हो रहे हैं । यह क्या है ? अथवा और क्या हो सकता है दैत्यकुल की समृद्धि
समाप्त सी हो रही है । (खेद एव उलाहने से भरे स्वर में)

हा ब्रह्मन्, आपके निर्माण में यह भयङ्कर व्युत्क्रम कैसे हो रहा है ?
समस्त प्राणियों में वर्तमान भय का साम्राज्य कैसे लुप्त हो गया ? जो मेघ
हमारे महाराज की आज्ञा के बिना जलबिन्दु की वर्षा भी नहीं करते थे, वही
मेघ अब धूल भरे रक्तकण की वर्षा करने लगे हैं ॥ २ ॥

और— हमारे महाराज किसी दूसरे द्वारा अस्पृष्ट जिन सुगन्धों की इच्छा
करते थे वे वायु उन्हीं सुगन्धों को गृहसमीपवर्ती उद्यान से ले आकर उपहिप्त
करते रहते थे, वही वायु आज ध्वजों को गिरा रहे हैं, रमणीय उद्यानवृक्षों को
तोड़ रहे हैं और जोरों से कंकड़ की वर्षा सी कर रहे हैं ॥ ३ ॥

जिनके प्राङ्गण के पास अप्सरार्ये भी गीत गाने के लिये कठिनता से स्थान
प्राप्त करती रही हैं वहीं पर आज यह भयङ्कर सिपारिने मौज में उच्चस्वर

मध्याह्नेपि स्रराः करा न तरणेर्यत्रापतन्मन्दिरे

शृद्धा बद्धरुषं पतन्ति परुषं तन्नोद्दिगरन्तो गिरः ॥ ४ ॥

अपरञ्चाप्रसक्तपुरुषपरिचयानां कुत्रचिदत्रैव पुरे पुत्रोत्पत्तिः कुमारी-
णामिति बहुलीभूतं कौलीनमुत्पातपक्ष एव निक्षिपाभि । सोऽयमस्माकं
स्वस्त्ययनसमयो ब्राह्मणानाम् । (विचिन्त्य) धिक्कष्टम्,

मङ्गलार्थमुपाहृतः कर्तुमिच्छामि शान्तिकम् ।

कारयत्यन्यदन्यस्मिन् विधेये विधुरो विधिः ॥ ५ ॥

(परिक्रम्य, समन्तादवलोक्य) कःकोत्र राजभृत्येषु, समाहूय सद्-
ब्राह्मणानुपक्रम्यतां शान्तिको विधिः ।

[नेपथ्ये]

हन्त, कोऽयं हत विधेरुपक्रम ?

पुरोधाम्—(आकर्ष्यं, सक्रोधम्) आः, कोऽय दुर्दुरूटोऽस्मान्निपेधति ?

से चिल्ला रही हैं, जिन के मन्दिर पर दोपहर को भी सूर्य की तीव्र किरणें
नहीं पड़ती थीं, उन्हीं मन्दिरो पर आज भयङ्कर शब्द करने वाले गूद्ध गिर
रहे हैं ॥ ४ ॥

और मैं पुरुष परिचय के बिना ही इस अन्त पुर मे कुमारी कन्याओं के
लडके पैदा हुए हैं । इस बात को भी एक प्रकार का उत्पात ही मानता हूँ ।
यह अपवाद चारों ओर फैल भी गया है । अतः हम ब्राह्मणों के लिये यह
स्वस्त्ययन करने का समय है । (सोचकर) हाय, कष्ट की बात है ।

मङ्गल करने के लिये बुलाया गया मैं शान्तिकर्म करना चाहता हूँ, परन्तु
विरुद्ध भाव्य मुझसे दूसरा ही कार्य करवा लेता है ॥ ५ ॥

(चलकर चारों ओर दृष्टि डाल कर) अरे यहाँ कौन राजभृत्य है ?
सद्ब्राह्मणों को बुलाकर शान्तिकर्म प्रारम्भ करने को कही ।

[नेपथ्य मे]

हाय, विधाता का यह कैसा विधान है ?

पुरोधाम्—(चुनकर क्रोध भरे स्वर मे) अरे यह कौन बदमाश हम

(विलोक्य) किं कुतोऽपि कारणात् कञ्चुकी वात्स्यायनो विघातरमुपालभते, तदिदमेतन्मुखेन वेधसैवप्रतिपिद्धम् ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—कोऽयमित्याद्युक्त्वा वेचित्य नाटयति ।

पुरोधः—(उपसृत्य) वात्स्यायन, कोऽयमद्यतनस्ते विपादातिरेक ?

कञ्चुकी—(क्षणं स्थित्वा, नि श्वस्य) कथयामि पुरोधसे, परन्त्वनाख्येयमिदमर्वाग्दैवदुविलसितेभ्यः ।

पुरोधः—श्रावय ।

कञ्चुकी—एवमस्तु । अद्य महाराजेन कन्यकाभवनावलोकनवर्त्मना विलोचनप्रसादप्रासादघातायनेनाकस्मादेकस्मिन् वेलीशैलसन्निवेशे तरलिकापरभृतिकाभ्यामन्तःपुरपरिचारिकाभ्यामभ्यासादितकुतूहला कलात्तापिन कोमलालका वैपि बालका स्त्रियो वयोविशेषेण प्रभा-

लोगो को मना कर रहा है । (देख कर) किसी कारणवश कञ्चुकी वात्स्यायन ब्रह्मा को कोश रहा है मुझे लगता है कि इसके मुख से ब्रह्मा ही निषेध कर रहे हैं ।

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—यह कौन इत्यादि कह कर घबड़ाहट का अभिनय करता है ।

पुरोधः—(समीप जाकर) वात्स्यायन आज तुम इतने खिन्न क्यों हो रहे हो ?

कञ्चुकी—(षोडा षक कर, सास छोड कर) कह देता हूँ पुरोहित जी से, परन्तु दुर्दैव के द्वारा अनर्थों के सम्पन्न होने से पूर्व यह वक्तव्य नहीं है ।

पुरोधः—सुनावो ।

कञ्चुकी—अस्तु । आज महाराज वज्रनाभ ने कयातपुर देखने के क्रम में आलों को प्रसन्न करने वाली अन्तःपुर की खिडकियों से अकस्मात् एक श्रोडापर्वत पर अन्तःपुरदासी तरलिका और परभृतिका के द्वारा कुतूहल में डाले जाते हुए मधुर भावी पुष्पराजे बालों वाले समान अवस्था तथा सौंदर्य वाले तीन लडके स्पष्ट भाव से देख लिये । उस समय मैं भी उन

परिवेपेण च स्फुरन्तः स्फुटतरं निरीक्षिताः । ततश्चाहमपि पश्वादासन्न
एवासम् । ततश्च कौतुकाश्चर्यरोपपर्यस्तलोचनः परावृत्त्य यावदन्त-
निवेशकानाह्वयति तावदहमतिभीतस्ततः कथंचिदपसृतोऽस्मि ।

पुरोधाः—(सविस्मयम्) हूँ, भयरथानमेवैतदन्त पुराधिकारिणाम् ।
(विचिन्त्य) अथवा न केवलं भवतामेव भयस्थानमेतत् किन्तु विरवेधा-
मेव देवद्रोहिणां यदनेन दानवेन्द्रस्य दूरारोहिणा दुरहङ्कारेण किन्न
करणीयम् ।

कञ्चुकी—आर्य, अपरिचितपरिमहेणेत्यपि वक्तव्यम् ।

पुरोधाः—हूँ, परिणतप्रायैव प्रायशः पौरुहूतीनीतिः । (प्रविश्यापटी-
क्षेपेण) (कुञ्जकः आत्मनः कर्णनासिके स्पृशन् कञ्चुकिनमुपेत्य) अञ्ज जीआ-
विआ सव्वे वि तुम्हे अम्हेहिं । (अद्य जीविताः सर्वेऽपि यूयमस्माभिः ।)

कञ्चुकी—कथमिव ?

कुञ्जकः—रोस परव्वसेन राइणा वावादितं विनिदिठ्ठेसु अन्ते

के समीप ही था । इसके बाद महाराज की आँखों में आश्चर्य, क्रोध एवं
कुतूहल भर आये, उन्होंने तत्काल लौट कर द्वारपालों की बुला भेजा, मैं
अतिभीत हो कर वहाँ से भाग खड़ा हुआ ।

पुरोधा—(विस्मय के साथ) हूँ, अन्तःपुराधिकारियों के लिये तो यह
भय का स्थान है ही । अथवा—केवल आप लोगों के लिये ही यह भय का
स्थान नहीं है, यह समस्त असुरों के लिये भय का स्थान है क्योंकि दानवेन्द्र
के बड़े हुए अहङ्कार से क्या न हो जायगा ?

कञ्चुकी—आर्य, यह भी कहना चाहिये कि महाराज की विवाह की
बात का ज्ञान नहीं है । यह भी क्या न कर बैठेगा ।

पुरोधा—हूँ । प्रायः इन्द्र की नीति सफल हो गई । (आकर) (कुञ्जक
अपने नाक कान झूँटा हुआ कञ्चुकी के पास पहुँचकर) आर्य, आज मैंने तुम
सभी लोगों को जिला लिया ।

कञ्चुकी—कैसे ?

कुञ्जक—क्रोधवशीभूत महाराज ने समस्त अन्तःपुराधिकारियों के वध

उराहिआरिआ पुरिसेसु वेवमाणेण मए पासपरिवत्तिणा हुविअ विण्ण-
विदं । (रोषपरवशेन राजा व्यापादयितु विनिदिष्टेष्वन्त पुराधिकारिपुरुषेषु
वेपमानेन मया पाशबंधतिना भूत्वा विज्ञापितम् ।)

कञ्चुकी—कथमिव ?

कुब्जकः—एव्व (इति कर्णे कपयति) (एवम् ।)

कञ्चुकी—ततः कि व्यापारो वञ्चनाभः ?

कुब्जकः—खणन्तरे जाणिदव्व । (क्षणान्तरे ज्ञातव्यम् ।)

कञ्चुकी—गत्वा ज्ञायताम् ।

कुब्जकः—एव्व (इति निष्क्रान्त) (एवम् ।)

कञ्चुकी—(सावेगम्)

विमुद्रयन्तो विपदां विदूराद्द्वाराणि मुग्धा मुदमुद्गदन्तु ।

आसामसाधारण कर्मरक्ष्य. परापरीक्ष्य. पर एव पन्थाः ॥ ६ ॥

अपि च—

निर्माय निर्माय निहन्तु कामो वामो विधिः केन विलङ्घनीयः ।

का आदेश दे दिया, तब मैंने कापते हुए उनके पास जा कर कहा—

कञ्चुकी—क्या कहा ?

कुब्जक—इस तरह (कान मे कहना है)

कञ्चुकी—तब वञ्चनाभ ने क्या किया ?

कुब्जक—वह दूसरे समय ज्ञात होगा ।

कञ्चुकी—जा कर पता लगाओ ।

कुब्जक—जो आशा । (जाता है)

कञ्चुकी—(खेद के साथ)—

विपत्तियों के द्वारों को दूर से बन्द करते हुए मुग्ध जन भले ही सुशियाँ
मनाया करें, परन्तु उनका तो अपना कुछ ऐसा मार्ग होता है जिसे कोई नहीं
देख पाता है तथा जिसकी रक्षा असाधारण कर्म करते हैं ॥ ६ ॥

और—बना बना कर बिगाड़ने की इच्छा रखने वाले विपरीत भाग्य को
कौन रोक सकता है ?

अथवा—

दुर्धारगर्वाभयमोद्भ्रजामाजानिकं भेषजमेव पद्य ॥ ७ ॥

(नेपथ्ये साहस्रामिको वादिप्रनादः)

पुरोधा—(सभ्रममाकर्ण्य सातद्गुम्)

कोऽयं कर्णोपघाती प्रतिहतपट्टप्रामगम्भीरगर्जः

स्फूर्जत् फूत्कारताश्वनिबहलवल्कोदलाद्ग्राहलोलः ।

प्रेङ्खत्युम्भेष शङ्खस्वनघनगगनप्रान्तरोप्रप्रचारो

द्वारोपासन्न दूरोद्यत मणिवलभीदुन्दुभी नात्रिनादः ॥ ८ ॥

अपि च—

हृष्यत्कल्पान्तघातव्यतिकरदलितोन्मूलिनोर्वीघरेन्द्र

प्रभ्रंशोद्भ्रान्त पायोनिधिनितदमदोरक्षेपसंक्षेपदक्षः ।

एकोकुर्वं खिलोकीं समुदयतिरवः कोपि कालाग्निजास-

व्याप्तप्रह्लाण्डभाण्डस्फुटनचटचटश्वानधिक्कारतारः ॥ ९ ॥

अथवा—दुर्धार गर्वरूप रोग से ग्रस्त जनो के लिये स्वाभाविक चिकित्सा यही है ॥ ७ ॥

(नेपथ्य मे युद्ध के बाजे बजते हैं)

पुरोधा—(सभ्रम से सुन कर, भय के साथ)

द्वार समीपवर्ती मणिवलभी मे रक्षित दुन्दुभिगण का कानों को बधिर बना देने वाला, नानाविध वाद्यान्तर के शब्दों को अपने भीतर समेट लेने वाला, फूत्कार की उग्र गर्जना से वर्द्धित कोहल नामक वाद्य के शब्द से भीषण तथा शङ्खश्वनि से भरे आकाश मे प्रसार पाने वाला यह कैसा शब्द हो रहा है ॥ ८ ॥

और—प्रलयकालिक बल्लि की ज्वाला से व्याप्त होकर फूटने वाले ब्रह्माण्ड की चट चट ध्वनि को परास्त करने वाला, कल्पान्त वात से उखाड़े गये पर्वतराज के गिरने से मथित सागर के गर्जन को तुच्छ सिद्ध करने वाला तथा तीनों लोको को एक करता हुआ—यह कौन भयङ्कर शब्द हो रहा है ॥ ९ ॥

(पुनर्नेपथ्ये)

भोभोः शाखानगरशास्तार सामन्ताः ।

दैत्येशादेशवाचः समयसमयसमाक्रान्तदिक्चक्रमेके
प्राकारेभ्य परस्तात् पवनमपि परस्मिन्सरन्तं प्रसन्तु ।
गूढं व्यूढैरनीकैर्गगनतलमलं केपि कुर्वन्तु, केचित्
पातालान्तःप्रविष्टा नृपनगरधरामूलमाच्छादयन्तु ॥ १० ॥

पुरोधा—(वक्षोभम्) आः किमिदमादिष्टो दिशा पर्यवष्टम्भः ।

(पुनर्नेपथ्येकलकल)

कञ्चुकी—(आकर्ष्यावलोक्य च)

अन्योभ्याघोषणोत्तालभीषणोत्फालशालिनः ।
विक्रामन्ति हरिचक्रमाक्रामन्तो महासुराः ॥ ११ ॥

पुरोधाः—(विलोम्प)

(फिर नेपथ्य मे)

अजी शाखानगरो के शासक सामन्तगण,

महाराज दैत्येश्वर की आज्ञा के साथ-साथ आप मे से कुछ लोग दिङ्मण्डल को चारो तरफ से घेर लें, कुछ लोग प्राकार से बाहर निकलती हुई हवा को भी रोक रखें, और कुछ लोग अपने सैन्य के साथ आकाश मे फैल जाय तथा कुछ लोग पाताल मे फैल कर दैत्यराजपुरी को जड को चारो तरफ से घेर लें ॥ १० ॥

पुरोधा—(क्षुब्ध हो कर) अहा, यह दिशाओ को घेरने का आदेश क्यों दिया गया है ?

(फिर नेपथ्य मे कलकल होता है)

कञ्चुकी—(मुन कर तथा देख कर)

एक दूधरे को ललकारने वाले तथा भयङ्कर उत्फाल मचाने वाले यह महासुर दिङ्मण्डल में व्याप्त होकर आक्रमण कर रहे हैं ॥ ११ ॥

पुरोधा—(देख कर)

दोःस्तम्भोद्रेकदम्भोत्कटदनुजभंटास्फोटनोत्फालकाल-
व्याघरगतस्रङ्गधाराततिदनुकलिताकान्तलोकांतरालम् ।
सामन्ताः स्वर्गकान्ताक्रमरणकास्कन्दिस्सन्दीप्तकोप-
व्याटोपस्पष्टदृष्टपुरदधरतटी सङ्कटं सङ्घटन्ते ॥ १२ ॥

कञ्चुकी—(सब्ययम्) धिग्विधेवैपरीत्यम्, अत्याहितम्, कुतः ?

त्रिभुवनजययात्रा संधमः कायमद्य

क च निजनगरेऽपि द्रोहिणो दुर्निवाराः ।

क तदमरघधूटी लुण्ठनोद्युक्तमन्तः

क पुनरुपनिपातोऽन्तःपुरे दुर्नयस्य ॥ १३ ॥

(पुनर्नेपथ्ये)

--

प्रवेशिता नटव्याजात् पुरं पापैः पतत्रिभिः ।

अन्तःपुरेऽपराध्यन्ति चौरा दौरात्पदपिताः ॥ १४ ॥

अपने बाहुबल के दाम्भ से भरे दानव योद्धागण के आस्फालन से चलते हुए स्रङ्ग समुदाय से दिशावकाश पूर्ण हो रहा है, यह सामन्तगण स्वर्गसुन्दरियों के मिलन की आकांक्षा तथा क्रोध के कारण अपने ओठ चबा रहे हैं तथा भीषण रूप में चल रहे हैं ॥ १२ ॥

कञ्चुकी—(दुःख के साथ) धिक्कार है ब्रह्मा की विपरीतता को, बडा अनर्थ है, वयोकि—

कहाँ तो आज त्रिभुवन विजय-यात्रा की तैयारी थी, और कहाँ यह अपने नगर में भी दुर्धर्म दुरमनों का प्रवेश हो गया है । कहाँ हम अपने हृदयों में यह अभिलाषा संजो रहे थे कि देवबालाओं का अपहरण करेंगे और कहाँ यह हो गया कि हमारे ही अन्तःपुर में दुराचार प्रारम्भ हो गया । ॥ १३ ॥

(फिर नेपथ्य में)

इन पापी पक्षियों के द्वारा नट के व्याज से नगर के भीतर लाये गये यह चौरगण दुष्टता से कन्यान्तःपुर में अपराध कर रहे हैं ॥ १४ ॥

तेऽमी महामायिनो मायाहरीभिर्महासुरीभिरन्तः पुरेऽन्विष्य निगृ-
हन्ताम् । अथवा किमेतावद्भिः (उच्चैराघोषयन्) रे रे मायातिरोहिता-
परिचिताश्चौराः, चेतयध्वम् ,

युष्माभिर्देनुजाधिराजननया शुद्धान्तपाटुचरैः
प्रागेवप्रतिपादितं स्वयमिदं मृत्यामुंखे जीवितम् ।
तर्किक वासरकौशिकैरिव चिरस्थेमाशयास्थीयते
स्थातारो न भवन्ति दुर्नयदशाविष्टा विनष्टायुषः ॥ १५ ॥

अपि च—

नापक्रान्तं दानव्यूहमध्याद्वष्यानां घः कश्चिद्व्ययः प्रकारः ।

दूरं युष्मान् प्रापयिष्यन् विधातास्वस्थानेकः शस्त्रधारापथो नः ॥१६॥

पुरोधः—(आकर्ष्यं) (अपरतोऽवलोक्य)

आः के खल्वेते महापुरुषप्रकाण्डाः प्रकटमन्तःपुरप्रासादमारो-
हन्ति ?

कञ्चुकी—(विलोक्य) उपाध्याय, नून त एवैते चिरातिक्रान्त-

इन मायावी चौरों को मायाहरण करने वाली हमारी महासुरियों खोज कर पकड़ लें । (अथवा) इतने से क्या होगा ? (जोर से घोषणा करता हुआ) अरे मायावश तिरोहित चौरगण, सम्हल जाओ ।

तुम लोगो ने दैत्यराजतनया के अन्त पुर में ढाका डालकर स्वय अपना जीवन मौत के मुस में डाल दिया है, फिर उल्लू की तरह, छिप कर चिरकाल तक जीवित रहने की आशा कर रहे हो, उनका जीवन चिरस्थायी नहीं हो पाता है जो दुर्विनय पर उतर आते हैं ॥ १५ ॥

दानव मण्डली के बीच से तुम वध्यों के निकल भागने का कोई रास्ता नहीं है, हमारे शस्त्रों की धारा के मार्ग से तुम लोगो को अलग कर सकने में कोई श्रद्धा समर्थ नहीं है ॥ १६ ॥

पुरोधः—(मुनकर) (दूसरी ओर देख कर)

अरे यह कौन महापुरुषगण खुले आम अन्त पुर के प्रासाद पर चढ़ रहे हैं ?

कञ्चुकी—(देख कर) उपाध्याय, निश्चय ही यह वही कन्यान्त-

कन्यान्तः पुरावैरिणी विकत्यनमसहमाना स्वपौरुषनिर्भराः परापतन्ति ।
(पुनर्नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो भो. कन्यान्त पुरप्रवेशिन, प्रसह्य गृह्यन्ताममी प्रासादवर्तिनः
पाटञ्चरा । वय पुनरखिलमेवान्त पुर पर्यवष्टभ्य तिष्ठाम. ।

कञ्चुकी—(सभयम्) अहो महदत्याहितमापतितम्, तदाराम-
प्येतस्मात् सभावितास्त्रसञ्चारनिरावरणात् प्रदेशादपसराव. ।

(इति निष्क्रान्ती)

विष्कम्भकः

(प्रविश्यापटीक्षिपेण विषदुत्पात नाटयन्)

भद्र — भोस्तथाहमुत्पतितो यथा हि—

सद्यो नद्यो लुप्तकल्पा विकल्पा. सत्त्वासत्त्वाभ्यां पत्तने वारणे वा ।

शैलालीयं क्षुद्रबल्मीकपाली क्षोणी क्षुद्रा जायते द्रागियन्नः ॥ १७ ॥

पुरवर्ती दुष्टगण वैरियो की श्लाघा को नहीं सह सकने के कारण अपने पराक्रम पर निर्भर हो कर निकल रहे हैं ॥

(फिर नेपथ्य में दूसरा कलकल होता है)

अजी, कन्यान्त पुर में प्रवेश करने वाले इन चौरो को पकड़ लो, हम लोग सारे कन्यान्त पुर को घेरे रहते हैं ।

कञ्चुकी—(भय से) अहो, बड़ा भारी अनर्थ है हम अब यहाँ स
भाग चले, क्योंकि अब यहाँ पर अन्न का सञ्चार होगा, जिससे बचने का
आवरण नहीं है ।

[दोनों का प्रस्थान]

(विष्कम्भक)

(विना पर्दा उठाये प्रवेश करके आकाश में उठने का अभिनय करता हुआ)

भद्र—अजी, मैं इस प्रकार से उड़ा कि—तत्काल नदियाँ मेरी दृष्टि से
शोचन हो गई, गावों तथा गजों का होना सन्दिग्धावस्था में पढ़ गया । यह
चनमाला बहुत छोटी बल्मीक की तरह तथा पृथ्वी अतिक्षुद्र दीप्त
रही है ॥ १७ ॥

(विपत्यवतरत्यङ्गुलीनां बीणां वहन्महः)

(निरूप्य) आं ज्ञातम् , सोऽय कलहकेदारनीरदो नारदो मुनिः ।

(ततः प्रविशत्याकाशवर्त्मना नारदः)

नारदः—(साशंसम्)

चिरादृष्टदृष्टस्य दुःखसाक्षिभिरक्षिभिः ।

महाहृवनवानन्द निर्भरैरद्य भूयताम् ॥ १८ ॥

अहो महोत्सवोऽयमस्माकम् यदन्योन्यमन्येपां जिजीविषाविपमोऽ-
भियोगभारः । तथाहि—

तं विप्रो विषयं क्षयं विवदते वीरद्वयी यत्कृते

तदूराज्यं बहुमन्महे यदुदयदुद्वैराज्यदोलायितम् ।

एतन्नः सुदिनं नवाहवरवो यत्र भवो मुद्गणः

सादिक्साहसिनामपायमसिना पश्यामि यस्यामहम् ॥ १९ ॥

भद्रः—(ससंभ्रममुपसृत्य) भगवन्नयमहं प्रणमामि । (इति तथा करोति)

(गोद मे बीणा लिये हुए नारद का प्रवेश)

नारद—(आजा भरे स्वर मे) अहा चिरकाल पर आज हमारे नयन
महायुद्ध देखने के आनन्द का अक्षर प्राप्त करेंगे, उनको वह आनन्द प्राप्त
होगा जिसमे चिरकाल से जिन लोगो ने दुःख का साक्षात्कार नहीं किया है
उनके दुःखो के प्रत्यक्ष होंगे ॥ १८ ॥

अहा, यह हमारे लिये महोत्सव है कि यह परस्पर जयेच्छा वालो का
भयङ्कर आक्रमण हो रहा है । क्योंकि—

हम उसी देश को देश समझते हैं जिसके लिये दो वीर परस्पर विवाद
करते हैं, हम उसी राज्य को अच्छा राज्य समझते हैं जहाँ दो नृपो का सङ्घर्ष
जारी हो । हमारे लिये वही सुदिन होता है जब नवयुद्ध का कोलाहल कानो मे
पडता है और वही दिशा वस्तुतः दिशा है जिसमें हम बहादुरों का वध देख
पाते हैं ॥ १९ ॥

भद्र—(खबडायी हुआ समीप आकर) भगवन्, मैं भद्र प्रणाम करता हूँ ।
(प्रणाम करता है) ।

नारदः—(विलोक्य) को भवान् ?

भद्र —(सप्रथयम्)

पारिजात हरणाहवदृष्टो येन पूर्वमुपनृत्य हृतोऽसि ।

सोऽहमस्मि भगवन् स्मरभूर्त्तैर्वासुदेवतनयस्य घयस्यः ॥२०॥

नारद —(स्मृत्वा) भद्रोऽसि साधु साधु ।

समितप्रमितगर्वास्फारसर्वास्त्रजाल-

स्फुरणतद्यणतेजो विद्युदुद्दयोत्तमानाम् ।

अपि सुचिरमतीतामस्भ्यनुस्मृत्य पीता-

मृत इव नवलब्धानन्दनिस्यन्दकन्दः ॥ २१ ॥

तत्कथय कन्यान्तःपुरे प्रद्युम्न पर्यवष्टभ्य किमाचष्ट वञ्चनामः ?

प्राग्वृत्त तु प्रागेव ध्यानादवगतोऽस्मि ।

भद्र —इदमाह—

भुक्कुण्डान् हुतभुक्कुण्डान्तरे संयम्य यामिकाः ।

क्षिप्रं क्षिपन्तु क्षुद्राणां धिह्नूणां मारणे घृणाम् ॥ २२ ॥

नारद—(देख कर) तुम कौन हो ?

भद्र—(नम्रतापूर्वक)—

पारिजातहरण युद्ध मे प्रसन्न होकर जिसने नाच कर आप को प्रसन्न किया था, मैं वही काममूर्ति वासुदेव पुत्र का मित्र हूँ ॥ २० ॥

नारद—(स्मरण करके) भद्र हो, बाह बाह,

अपरिमित गर्व से पूर्ण सभी तरह के अस्त्रों के तेजस्वरूप विद्युत् से प्रकाशमान उस चिरपूर्वकालिक युद्ध को याद करके मुझे उसी तरह की नवीन वृत्ति मिल रही है जैसी वृत्ति अमृत पीने पर मिलती है ॥ २१ ॥

अच्छा, अब यह बताओ कि कन्यान्त पुर मे प्रद्युम्न को घेर कर वञ्चनाम ने क्या कहा ? पहले की घटना को तो मैं ध्यान करके समझ गया हूँ ।

भद्र—यही कहा—

इन नर्तकों को बाधकर प्रहरीगण आग की भट्ठी में डाल दें, इन क्षुद्र मनुष्यों को मारने मे कृपा कैसी ? ॥ २२ ॥

नारद — ततस्ततः ।

भद्र — ततस्त्रपाकोपाभ्यां पराधीनतास्पदयोः प्रद्युम्नगदयोः कुमार
शाम्बः प्रहस्य प्राह—

भुङ्क्नुण्डाः शौर्यशौण्डा वा घयं वा वाग्बिभोदिका ।

न यावदवतीर्णोऽसि क्षमां प्रहरणक्षमाम् ॥ २३ ॥

नारद — शङ्के सम्प्रति सक्षोभा प्रभावती प्ररोचयिष्यति प्रद्युम्नं
पितृकुलप्रत्यग्रस्कन्दनाय ।

भद्र — अथ किम् ? स्त्रीस्वभावसुलभेन भीरुभावेन प्रणयकातरता
प्रकटयन्ती प्रभावती—

हा नाथेत्यसदृदुरीरितं सस्त्रीनामाकर्ण्य स्वपतिकुलादरादवादीत् ।

जानाना यदुकुलउन्मनामुदारं व्यापारं कर्माप विपक्षवाहिनीषु । २४ ।

नारद — किमुक्तवती ?

नारद— इसके बाद ?

भद्र— इसके बाद लज्जा तथा शोध से परवश प्रद्युम्न और गद को
हसते हुए शाम्ब ने कहा—

हम नसँक हा या बहादुर, जब तक हम तथा आप युद्धोपयुक्त भूमि में
नहीं उतरते है तब तक यह वचनबिभीषिका से क्या होता जाना है ॥ २३ ॥

नारद— मुझे शङ्का है कि इस पर बिगड कर प्रभावती प्रद्युम्न को
पितृकुल पर आक्रमण करने को प्रेरित करेगी ।

भद्र— और क्या ? स्त्री स्वभाव सुलभ भय से प्रणयकातरता प्रकट करती
हुई प्रभावतीने,

सक्षियो वा 'हा नाथ' इस प्रकार की उक्ति को सुनकर पतिकुलपर
आदर स कहा, उसे यदुवक्षियो का शत्रु सैन्य पर होने वाला व्यापार
भाव था ॥ २४ ॥

नारद— क्या कहा ?

१३ प्र० प०

भद्र—

अलं विलम्बितैर्वाऽऽरुणाः सुरचैरिणः ।

अप्रमत्तः परिक्रामन् विप्रतीयाग्निद्वारय ॥ २५ ॥

नारद—ततः प्रभावती वितीर्णानुज्ञेन किमुपक्रान्तं प्रशुम्नेन ?

भद्र—ततश्च सद्यः सम्पद्यमानमायामयोपादानकारणेन मनः
कारुणा निमित्तं मूर्त्तमिव दिवस्पतेर्मनोरथ रथमास्थाय सारथिनं
चिन्तयतीऽनन्तमूर्त्तैर्मूर्त्तिविशेषः स्वयं शेषः प्रादुर्भूय कुमारस्य सारथि-
भावमङ्गीचकार ।

नारदः—ततस्ततः ?

भद्रः—ततश्च—

यावदेव दनुजैर्निरुध्यते सूतभूतभुजगेशदेशितः ।

प्राप तावदधिरुद्धमन्मथः सत्वरं नगरचत्वरं रथः ॥२६॥

रथेन तमनुद्रवन्तं दैत्याधिपतिमनुपतङ्गिः दानवानीकैर्निमुक्ते

भद्र—प्रभावती ने कहा कि वीरो, देर करना ठीक नहीं है, ये दानव
बड़े भयङ्कर हैं, सावधान भाव से विचरण करते हुए शत्रुओं का निवारण
करो ॥ २५ ॥

नारद—प्रभावती का आदेश पाकर प्रशुम्नेने क्या किया ?

भद्र—तत्काल मायामय सामग्री से मनरूप कारीगर ने मूर्त्तिमान् 'इन्द्र
के मनोरथ के समान रथ प्रस्तुत कर दिया, कुमार सारथि के लिये शोष ही
रहे थे कि स्वयं शेषनाग प्रकट होकर सारथि बन गये ।

नारद—इसके बाद—

भद्र—इस के बाद,

जब तक कुमार को दानवगण रोके तभी तक वह सारथि रूप में
वर्तमान शेषनाग द्वारा चालित कन्दपाधिरुद्धरथ नगर-चत्वर में आ
गया ॥ २६ ॥

रथ से प्रशुम्न का पीछा करने वाले वज्र नाम के वीर्ये चलने वाले दैत्यों

विय पये प्राप्नोत्पत्तनमार्गेण मया नाकनायकाय निवेदयितुमेनमर्थ-
मनुप्रस्थितेन भगवन्तो निरीक्षिता इति ।

नारद —(सस्मितम्) निवर्त्तस्व, निर्वृत्तमेतत् । (सासृपञ्च) जीवति-
नारदे नैतादृशस्य पीरन्दरस्य पारितोषिकस्यापर पात्रम् । अपि च—

कर्णोन्मादनासिद्धनादनिविडं मन्ने प्रयोरेतयो-
र्यावन्नावतरत्युदित्वरशरक्षेणो विलुप्तं नम ।
अन्तस्तावदनर्थकारणकथासञ्चारणप्रोद्भव
न्मोदब्रह्मविनोदयोरविरतं द्वैरथ्यमोक्षामहे ॥ २७ ॥

भद्र —(विहस्य) भगवन् , तव किमुद्युक्त देवराजेन ?

नारदः—आहूतो वासुदेव , प्रारभ्यन्ते प्रद्युम्नस्य साशयकोप-
करणानि ।

भद्रः—तर्हि किमस्माकमिदानीं व्यवसितव्यम् ।

न व्योममार्गं खालो कर दिया, मुझे उड़ने का रास्ता मिल गया, मैं यही बातें
इन्द्र से कहने जा रहा था कि रास्ते में आप पर दृष्टि पड़ गई ।

नारद—लौट चलो, यह कार्य हो चुका है । (असूया से) नारद के रहते
इन्द्र के पास इस तरह को खबर देकर पारितोषिक पाने का पात्र दूसरा नहीं
हो सकता है, और—

कानो को पूर्ण कर देने वाले सिद्धनाद से भरा यह आकाश जब तक
बरसते हुए बाणों से आच्छादित नहीं हो जाता है तब तक अनर्थ को उरस्थित
करने वाली इस युद्धवार्ता को फैलाने से सम्भवी आनन्द तथा ब्रह्मानन्द को मैं
मिलता जुलता देखता हूँ ॥ २७ ॥

भद्र—(हँसकर) भगवन् , तव देवराजने क्या क्रिया ?

नारद—उन्होंने वासुदेव को बुला भेजा प्रद्युम्न की सहायता के लिये उप-
करण प्रस्तुत हो रहे हैं ।

भद्र—तो फिर हम लोगों को इस समय क्या करना है ।

नारद — किमपरम्, सम्भावय सहास्माभि समरसम्मर्दसाक्षात्करणेन लोचनमहोसवमिति ।

भद्र — एवमस्तु । (इत्युभाववाट्मुख परिक्रामत)

नारद — (सवितकम्) नियतमितो नरन्तराय समरसम्मर्द, तथाहि—

हरन्ति लघशो दृशो प्रसरमुद्घुरा रेणव
थव सपदि मूर्त्तसत् कलकल समाक्रामति ।
भयङ्करमुपस्थित किमपि शङ्कते मन्मन-
स्तदेतदघधारित स्फुटमितो न दूरे रण ॥ २८ ॥

भद्र — (चक्षुरादि विक्षोभ नाटयन्)

न तावदपि धीयते नयनमेव रणूत्करै
पुरीतदपि जाठर श्वसितसक्रमात्पूर्यते ।
स्फुटत्यथ न केवलं कलकलेन कर्णद्वयी
शिरोऽपि गुरुवेदनोत्षणमनेकधा भिद्यते ॥ २९ ॥
(इति पुन पराक्रामत)

नारद— धीर क्या करना है ? हमारे साथ चलो युद्ध देखकर नयनो को उत्सव प्रदान करो ।

भद्र— अच्छा यही हो । (दोनों नीचे उतरते हैं)

नारद— (सोचकर) निश्चय इधर युद्ध निर्वाधि भाव से चल रहा है क्योंकि—

जोरो से पैलती हुई धूल आँखों को व्यथ बना रही है कल कल शब्द मूर्त्तघट बन कर कानों पर आक्रमण कर रहा है मेरे मन में छाँड़ा हो रही है कि कुछ भयङ्कर वस्तु उपस्थित हो रही है इन सारी बातों से निश्चय हो रहा है कि युद्ध यहाँ से दूर पर नहीं है ॥ २८ ॥

भद्र— (आँख आदि के फटकने का अभिनय करता हुआ) केवल नयन ही धूल से नहीं आवृत हो रहे हैं जठरवर्ती नाडी भी घास से फूलती जा रही है कल-कल से कान ही नहीं फट रहे हैं शिर भी वेदना से अनेक टुकड़ों में फटता सा लग रहा है ॥ २९ ॥

[पुन चरते हैं]

भद्र — (निपुण विभाव्य) कथ बाणान्धकारोऽपि ।

नारद — (क्षण विभाव्य सानन्दम्) पश्य पश्य—

विष्वग्व्यापिविरोधिचापविसरद्वाणान्धकारं क्षणा-

द्वीर क्षिप्तसमीरदैवतशरश्रेणीभिरुत्सारयन् ।

उद्धृतासि लताकरोऽयमकरोद्द्रागेव तद्रैणवं

ध्वान्तं शान्तमुदित्वरद्विपदसूक्ष्मभारधौताम्बरः ॥ ३० ॥

तदाग्रामेतस्यामेव नेदीयस्यामधित्यकायामवतीर्य सुखमितो महाहव-
मबलोकयाव । (इति तथा कुण्ठ)

नारद — (निरीक्ष्य, सोल्लासम्) अहो बड़ो कालादयमवलोकितो
दनुजलोकनायकानान्निषाय । तथाहि—

पते श्वेतेभशुण्डार्गलविपुलबलद्वाहुदण्डा समीयु

कोदण्डार्कपहर्षव्यतिकरितरूपो विद्विपो घासयीथा ।

दीर्घ दोलायमाना द्रुतचलितचमूचकभारेषु येषा

मेवा शेषा हि शीर्वै कथमपि धरणो धार्यते धैर्यवद्भिः ॥ ३१ ॥

भद्र— (अच्छी तरह देखकर) क्यों बाणों से अन्धकार भी फैल रहा है ?

नारद— (थोड़ी देर देखकर सानन्द) देखो, यह वीर चारों ओर
फैलते हुए शत्रुचाप निर्गन्त बाणवृत्त अन्धकार को वायव्य अक्ष से दूर करता
हाथ में तलवार लेकर शत्रुओं का सहार कर रहा है, शत्रुओं के रक्त से आकाश
धुल रहा है, फलतः पैलवी हुई धूल द्वारा उत्पन्न अन्धकार शान्त होना जा
रहा है ॥ ३० ॥

अतः हम लोग इस समीपवर्ती अधिवका में उतर कर आराम से युद्ध
का अवलोकन करें ।

नारद— (देखकर) (प्रसन्नता से) अहा बहुत दिनों के बाद राक्षसों
की ऐसी जमघट देखने को मिल रही है, क्योंकि—

श्वेत गजराज के शुण्डादण्ड समान बाहुशाली यह इन्द्र के शत्रुगण धनुरा-
कषण से वरपन्न आनन्द तथा क्रोध से युक्त होकर हकट्ठे हुए हैं, वेग से
प्रचलित इनके सैन्य समूह के भार से दोलायमान इस धरा को सेपनाग क
मस्तकगण धैर्यधारण करके किसी तरह सभाल रहे हैं ॥ ३१ ॥

भद्र — (विलोक्य, घातङ्कम्) अपूर्वोऽयमसुरवरूथिनीभरपरिभवो वसु-
न्धरायाः । अद्य खलु—

जरठतरकठोरोत्तुङ्गपृष्ठप्रतिष्ठा-

महद्वददतु गुर्वी कूर्मभूमिमृदुर्वीम् ।

झटिति चिपिटभावापन्नविफिलघ्नकायः

किमपि गहनमेनां शेषमूर्त्तिविभक्ति ॥ ३२ ॥

नारद — एवमेतत् ,

गुर्वीमद्य धुरं कठोरजरठे पृष्ठे प्रतिष्ठापयन्

कूर्मो मर्मरुजं सहेत सदसा स्वाङ्गानि सङ्कोचयन् ।

संहृत्यापि फणाः क्षणादथपरा भुग्नाः पतत्कन्धरं

तैस्तैः कञ्चुकमोचनैर्मृदुमृदुः शेषः कथं शक्यति ॥ ३३ ॥

(सरोमाञ्चञ्च) एक एव कुमारो महासुरोसहस्रैरेकदाऽभियुक्तो न परि-
भूतश्चेति महदाश्चर्यम् ।

भद्र — भगवन् , न परिभूत इति किमुच्यते,

भद्र— (देखकर, भयसे) आज—

पुरानी तथा उन्नत अपनी पीठपर कूर्मराज किसी प्रकार इस विशाल धरा का
धारण कर लें, शेषनाग को देह तो पसीने से लपपप तथा चिपटी हुई जा रही
है, वह इस धरा को बड़े कष्ट से किसी प्रकार धारण कर रहे हैं ॥ ३२ ॥

नारद—हाँ, ऐसी ही स्थिति है,

कठोर तथा पुरानी पीठ पर इस बोझिल पृथ्वी को धारण करके कूर्मराज
किसी तरह मर्मरुज पीडा को सहन कर लेंगे, परन्तु यह शेषनाग तो अपने
फणामण्डल को सङ्कुचित करके, गर्दन झुकाकर, बारवार कञ्चुक त्याग करने
पर भी बोझ को उठाने में किञ्च प्रकार समर्थ होंगे ॥ ३३ ॥

(रोमाञ्च का अभिनय करके)

अकेला प्रदुग्ध हजार महासुरो से एक घाप आक्रान्त होकर भी परास्त
नही हो रहे हैं, यह बड़े आश्चर्य की बात है ।

भद्र—परास्त नहीं हो रहे हैं, यह आप क्या कह रहे हैं ?

विक्रामन्नेक एष ज्वलति निरवधिक्रोधवाताघधूतः
सन्नद्धीकृत्यधूमैरिव निखिलदृशो विद्विषां दुर्यशोभिः ।
विष्वग् विक्षिप्यमाणप्रस्तरतरचलच्चण्डकाण्डार्चिश्चक्षेः
सङ्ग्रामारण्यसीमन्यरितरुनिघहं निर्दहन् वीरवह्निः ॥ ३४ ॥

(सणं चावलोक्य समयोत्कम्पम्) हन्त भोः कष्टम्, अयमेकदैवानवर-
तासुरमहात्नैरभिहतो मुह्यतीव रथकूवरावलम्बी शम्बरारिः ।

नारदः—(विलोक्य सानन्दम्, आश्चर्यमोहमवधूय)

क्रोधात् सद्यः संविधायाभिधावन्
मायाकायव्यूहमेव द्विपद्व्ययः ।

यावन्तोऽमी दानवाः शस्त्रदस्ता-

स्तावन्मूर्त्तीर्विश्ववर्त्ती विभर्त्ति ॥ ३५ ॥

भद्रः—(सोत्साहम्) भगवन्, महच्चित्रमेतत् ।

नारदः—

व्याप्नोति विश्वमपि यद्वपुषां वितानै-

स्तद्विश्वरूपतनयस्य न चित्रमस्य ।

यह वीर पावक निरवधि कोपरूप वायु से प्रेरित होकर दुर्यश रूप धूम से
शत्रुजनों की आँखों की भर कर चारों ओर फैलनेवाली अपनी प्रचण्ड लपटों
से संप्राम भूमिकी सीमा में शत्रुरूप वृक्षों को जलाता जा रहा है ॥ ३४ ॥

(पीठी देर देखकर, भय से कापते हुए) हाय, अनर्ध हुआ, यह प्रद्युम्न
एकाएक अनवरत निपाती महासुराओं से आहत होकर मूर्च्छित सा होता
हुआ रथ के स्तम्ब की पकड़ रहा है ।

नारद—(देखकर सानन्द, आश्चर्य तथा मोह की दूर करके)

क्रुपित होकर प्रद्युम्न ने कायव्यूह कर लिया है अतः जितने शत्रु हैं उतना
बनकर उनकी ओर दौड़ रहा है, कायव्यूह के हाथों में भी अस्त्र हैं वह इस
प्रकार विश्ववर्त्ती हो रहा है ॥ ३५ ॥

भद्र—(उत्साह से) भगवन्, यह तो महाश्चर्य है ।

नारद—विश्वरूप भगवान् का पुत्र यदि अपने शरीर भेद से विश्व को

एतच्च चित्रमत एव पुनः प्रहर्तुम्-

द्यापि यद्वलति दामघवीरवर्गः ॥ ३६ ॥

भद्रः—भगवन् पश्य पश्य, प्रकृत्य परावृत्तमुखा साम्परायिकादप-
सरन्त्यसुरवरुथिन्य ।

नारद —कथ दूरमपक्रान्तेष्वसुरसामन्तेषु प्रकामन्निरन्तरालवर्ती
सन्दिग्धे वज्रनाभ ।

भद्र —(आकाशे कर्ण दत्त्वा) किमाह कुमार. प्रद्युम्न भोः प्रवीरासुर
वरुथिनीपते, किमपस्त्रियते ? समरादपसरण हि नाम दुर्मरणम् ।

अथ च—

बहुभिरनुपतन्निहन्तुमेव त्वमिव न सङ्गरमासुरं करिष्ये ।

कथमसि परिमुह्यमानचेतास्त्यज भयमेष वपूषि संहरामि ॥३७॥

ध्याप्त कर रहा है तो इसमें क्या आश्चर्य है ? आश्चर्य तो इसमें है कि दानव-
गण प्रद्युम्न को ताड़ित करने की इच्छा से अभी भी इस लिये घेर रहे हैं
कि वह भगवात् का पुत्र है ॥ ३६ ॥

भद्र—महाराज, देखिये, देखिये, प्रहार करके दानवसैन्य युद्ध से मुंह
मोड़कर भाग रहा है ।

नारद—वयो, असुर सामन्तो के दूर चले जाने पर भागे बढ़ते समय
वज्रनाभ समीप जान मे हिचकिचा रहा है ।

भद्र—(आकाश मे कान देकर) कुमार प्रद्युम्न ने क्या कहा ? अजी
वीरदानव सैन्य के नायक, भागते क्यों हो, ? समर भूमि स भागना तो अपमृत्यु
है । और—

जैसे तुम एकाकी मुझपर बहुत सारी सेना के साथ आक्रमण कर रहे थे
उस प्रकार मैं बहुत सेना के साथ एकाकी तुझपर आक्रमण नहीं करूँगा, फिर
तुम घबडा क्यों रहे हो ? भय त्याग करो, मैं अभी अपने कायम्पूह को सहव
कर रहा हूँ ॥ ३७ ॥

नारदः—(विलोक्य साश्चर्यम्) कथं कायव्यूहमुपसञ्जहार कुमारः । (कर्णं दत्त्वा) किमुपसरन् ब्रवीति वज्रनाभः ?

धिक् पाटञ्चरतामुपेत्य चरता पापानि कन्यागृहे
दिष्ट्या वीरपथास्थितेन भवता मृत्योः पदं प्राप्यते ।
तत्त्वं व्याहर मत्प्रहारसदृशं जन्मात्मनः कर्म वा
यत्र स्वन्नियन्नाय धारितमिदं ब्रौडां विदध्याद्धनुः ॥ ३८ ॥

भद्रः—(आकर्ण्य) किमुत्तरयति कुमारः—

घंशे यद्विषजद्विषोऽजनि यदोर्विख्यातदोर्विक्रमं
क्षत्रं तत्र जगत्त्रयो जनयितुर्जातोऽस्मि देव्यद्विवः ।
तस्यैतद्भुवनाद्भुतस्य जनुषो युक्तं तु मत्कर्मणा—
मात्मभं रणशौण्डशम्बरवशाखयानं तवाट्यास्यति ॥ ३९ ॥

नारदः—(आकर्ण्य) किं प्रत्युत्तरयति वज्रनाभः ? आः पाप, कार्णि-
रसि ?

नारद—(देखकर, साश्चर्यम्) क्यों, कुमार ने कायव्यूह सहज कर लिया ? (कान देखकर) समोप आता हुआ वज्रनाभ क्या कह रहा है ? शौर्य वृत्ति धारण करके कन्यागृह में पापाचार करनेवाले तुमको धिक्कार है, भाग्यवश वीरमार्गाच्छेद होने से आज तुमको मौत मिल रही है । तुम अपने जन्म तथा कर्म का वर्णन करो जिसपर तुझे मारने को प्रस्तुत हमारा यह धनुष लज्जा धारण करे ॥ ३८ ॥

भद्र—(सुनकर) कुमार क्या उत्तर देने हैं ?

कमलकुल वैरी चन्द्र के वंश में पराक्रमी यदुवंशी क्षत्रियो में त्रिकोकोवनक मधुसूदन से मैं उत्पन्न हुआ हूँ, रही हमारे कर्म की बात, सी मुझ अद्भुत जन्म के कर्म तो तुम को मेरे द्वारा किये गये शम्बरवध की कथा ही बतायेगी ॥ ३९ ॥

नारद—(सुनकर) वज्रनाभ क्या प्रत्युत्तर देता है ?

दूरं प्रेम दुरुद्धदुष्टचरितामारोहयन् वैरिणीं
 कामान्ध कुलटावित स्फुटमयं पापै स्वयं पातित ;
 यत्तद्वास्तु निमित्ततापि यदि ते तत्रास तस्मादपि
 त्रातव्यस्य करिष्यते परिभवाघ्निर्याद्वा मेदिनी ॥ ४० ॥

किञ्चरे पाप,

प्रथयसि यथा प्रारम्भकर्म निजकर्मणा
 मजनि सदृशी तेषामेषा चिरादुपसंहति ।
 यदिह समरक्षोणीपृष्ठे लुठम्भ सायकै
 स्तव स्रवणवोःकृत्त काय शिवाभिरवाप्यते ॥ ४१ ॥

भद्र—(विहस्य) सशयितस्तावत्तवाय शब्द किं कायेन किमुत
 सायकैरन्वेष्यतीति । किमत्र वा कथयति कुमार ? (कर्ण दत्त्वा) किमे-
 वमाह ?

मदस्त्रव्युत्प्रस्त सपदि समनीकादपसरन्

अरे पाप तुम वृष्ण का बेटा है ? तुमने अपनी वैरिणी दुष्ट चरिता ललना
 के साथ बहुत दूर तक प्रेम किया है तुम कामांध कुलटागामी होने से स्वयं
 पतित हो चुके हो । जो कुछ हो यदि उस पापाचार में तुम निमित्त मात्र भी
 हो तो उतने ही भर से तुमको मारकर आज मैं पृथिवी को यादवों से धूय
 किये दे रहा हूँ ॥ ४० ॥

और, अरे पाप

जिस प्रकार से तुमने अपना कार्य प्रारम्भ किया है उसका उचित उपसंहार
 शीघ्र ही हो गया । अभी अभी तुम मेरे बाणों से आहत होकर पृथ्वी पर लोटने
 लगेगा टुकड़ों में बटी तुम्हारी यह देह सियारों को प्राप्त होगी ॥ ४१ ॥

भद्र—(हसकर) यहां यह सदिग्ध है कि 'तव' शब्द का काय में अन्वय
 है या सायक में ? देखें कुमार क्या उत्तर देते हैं ? (कान देकर) क्या ऐसा कह
 रहे हैं ?

मेरे अस्त्रों से डर कर तुम युद्ध क्षेत्र से विमुक्त होकर भाग रहे थे भाग्यवश

परावृत्तः पुण्यैर्वचनरचनामेवमकरोः ।

इदञ्चापि व्यस्तं वदसि मुष्ममस्तीति न पुनः

सुर्घांशोर्वेशेऽस्मिन् प्रभवति परेभ्यः परिभवः ॥ ४२ ॥

नारदः—(आकर्ष्यं) किं ब्रूते वज्रनाभः ?

परपरिभवपात्रं चेन्न ते जातिमात्रं

किमिति चरितचौर्यं दूषिताधिककुमार्यः ? ॥

कथमसुरपुरेऽस्मिन् दाशितानेकभर्गै-

र्नटनपटुभिरङ्कैर्यातनेयं धनेभ्यः ॥ ४३ ॥

भद्रः—आः पापापराधोयं वज्रपुरप्रवेश प्रतिबन्धतो ब्रह्माणः, पर-
मोद्धतचरित्रेषु सिद्धवद्विश्वासविधुरशीलस्य च कुमारीकुलस्य ।

नारदः—श्रोतव्यमत्रोत्तर कुमारस्य ।

भद्रः—(आकर्ष्यं) किं व्याहरति रौक्मिणेयः ?

इदमिह मम चौर्यं निर्भरं बाध शौर्यं

लौट आये हो और इस प्रकार बात बना रहे हो । तुम्हारे पास मुह है इसलिये
ऐसी बेतुकी बात कह रहे हो, क्या हिमाशु वशियो का शत्रु से पराभव
सभव है ? ॥ ४२ ॥

नारद—(सुनकर) वज्रनाभ क्या कहता है ?

यदि तुम्हारे वश मे शत्रुकृत पराभव नहीं होता है तो तुमने चौर्यवृत्ति से
कुमारियों को दूषित क्यों किया ? तुमको धिक्कार है । इस दानवमणरी मे अनेक
रूप दिखलाकर नाचने मे निपुण भञ्जो से धन के हेतु तुमने इतनी यातनायें
किस प्रकार सहीं ॥ ४३ ॥

भद्र—अरे पापी, वज्रपुरमे प्रवेशको प्रतिबद्ध करने वाले ब्रह्मा का
यह कसूर है ? अपना उद्धृतचरित्र जनो मे विश्वास करनेवाली कुमारियाँ
अपराधिनी हैं ।

नारद—इस प्रसङ्ग में कुमार का उत्तर सुनना है ।

भद्र—(सुनकर) रुक्मिणी उनयने क्या कहा—

मेरी यह चोरी है या बहादुरी, इसका निर्णय नीतिज्ञ विद्वज्जन करेंगे ।

व्यवसितमिति सन्तो नीतिमन्तो विद्मन्तु ।

इदमथ जगदेतद्वेद यष्टृवृष्णिवीरै-

र्ननु दनुजतनूजा दूषिता भूषिता वा ॥ ४४ ॥

अपि च—

मूढत्वं द्रढयद्भिरुन्मवहृदामेषां महेन्द्रद्विषां

किन्तत्त्वन्निधनाय हृष्टहृदयैर्विक्रीडित वृष्णिभिः ।

हर्त्तव्यं तव विस्रमेव यदि चेस्व तत्स्वयं दत्तवान्

त्वा हर्त्ता द्विषतामशेषमपि तत्कार्यं विशेषग्रह ॥ ४५ ॥

नारद —(विहस्य) साधु साधु, प्रवीरोद्गिरणीयाना गिरामत्युपरि प्रत्युत्तरित प्रद्युम्नस्य ।

(नेपथ्ये कलकल)

नारद —(विलोक्य) कथ पुनरपि परावृत्ता सङ्गराङ्गणमापतन्ति दानवानीकिन्त्य ।

(पुनर्नेपथ्ये)

इस बात को भी सधार जानता है कि वृष्णिवीरोने दनुजक-याओ को भूषित किया है या दूषित किया है ॥ ४४ ॥

महेन्द्र क साधु इन राक्षसों की मूढता को दृढ़ करनेवाले इन यादवों ने प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारे बध के लिये कौन सा पराक्रम नहीं दिखलाया है । यदि तुम्हारे धन का हमें लोभ होता तो तुमने तो अपना सारा धन हमें दे ही दिया था, तुम्हें मरकर सारा धन ले लिया जाय इसमें क्या विशेषता हो रही है ॥ ४५ ॥

नारद—(हसकर) साधु साधु बहादुरों के कहने लायक बाणी के भी ऊपर प्रत्युत्तर है प्रद्युम्न का ।

(नेपथ्य मे कलकल)

नारद—(देखकर) क्यों फिर भी वापस लौटती हुई दानवसेना युद्ध क्षेत्र में आ रही है ।

(फिर नेपथ्य मे कलकल)

दैत्या. कृत्याय कस्मै कलकलविकलं त्रासयन्तस्त्रिलोकी-
मन्त क्रुद्ध क्रुद्ध्वं क्षणमिह भवतामायुधानिक्षमन्ताम् ।
एकोऽहं हन्मि कन्याविटमसुरभटद्रोहिणं त्रातुमेन
सुत्रामाद्या. समन्तादपि समरमपत्रासमत्राविशन्तु ॥ ४६ ॥

अपिच, भो किमिदमसम्भावितमापतितम्, आ प्रमाद,
प्रस्थानुविष्णुलोकावधिभवभवना भोगमात्रावशेषा-
मुन्मेषादेव दोष्णो शमितशतमखक्रान्तमद्यत्रिलोकीम् ।
भर्ता तत्तादृगद्यद्भुजबलविलसद्दानवानीकिनीना
धिग्धातारं धुनीते धनुरनुमनुजं विज्वलन् वज्रनाभ ॥ ४७ ॥

नारद—(ससम्भ्रमबलव्य) महास्रप्रहारप्रसक्तचेतसा भयङ्करमुप-
क्रान्तमसुरचक्रवत्तिना ।

भद्र—भगवन्, प्रतिकर्तुं प्रवीण प्रद्युम्न इति न किञ्चिदेतत् ।

दानवाण अपने कलकल से त्रिलोकी को भय भीत करने हुए आपलोग
वधो अपने अतकरण को कुण्ठित कर रहे हैं, थोड़ी देर आप के अख क्षमा
करें । इस कयादूषक दानवद्रोही को मैं अकेला ही मार गिराता हूँ
निर्भय होकर इन्द्रादि सकल देवगण इसकी रक्षा के लिये इस युद्ध क्षेत्र
में आवें ॥ ४६ ॥

और—अजी यह वैसी असंभावित बात हो रही है । आ, भयङ्कर भूल हुई ।
अपने बाहुबल के प्रभाव से विष्णुलोक से लेकर शिवलोक तक विचरण
करनेवाला तथा इन्द्र के पराक्रम को शमित करनेवाला यह त्रिलोकीपति
बज्रनाभ बाहुबलदपित दानवसैन्य का स्वामी होकर भी मनुष्य के ऊपर
धनुष उठा रहा है, विधाता को धिक्कार है ॥ ४७ ॥

नारद—(घबडाहट के साथ देखकर) असुर सम्राट् ने महास्रप्रहार
करने की इच्छा से भयकर कार्य करने को प्रवृत्त हो रहे हैं ।

भद्र—महाराज, प्रद्युम्न प्रतीकार करने में समर्थ हैं अतः मह कुछ
बात नहीं है ।

नारद — (विलोक्य, आश्चर्यम्) एवमेतत् ।

अन्तर्मनून् विमृशता द्विपता प्रयुक्तं

तत्तन्महास्त्रमयभास्तृतदीर्घमायः ।

स्वीयाकृतिप्रतिमकायकपाटमग्रे

निर्माय तत्र निपतद्विफलं करोति ॥ ४८ ॥

भद्र — (विलोक्य, आनन्दम्) कथमियमम्बरादवतरत्यमरवरूथिनी ।

नारद — जानामि वज्रनाभस्य विकृत्यनप्रागल्भ्यम् । वज्रपुरप्रवेशा

चकाशमासाद्य प्रद्युम्नस्य साहायकमादिष्टमासन्नरवर्तिना विबुध-
धक्कवर्तिना ।

भद्र — एवमेतत् । किमधिकम्, मातलिमुतेन सुवर्चसा समुपनीत
पौरन्दर स्यन्दनमारुह्य प्रासादशिखरादवतरति समरमेदिनी गदः ।
अयञ्च पुलोमजापतिप्रणयिना प्रवरेणाधिष्ठितमैरावतमारुह्य शाम्ब
सौधाम्बरवर्त्मना समराङ्गणमवतीर्णः ।

नारद—(देखकर, आश्चर्य के साथ) बात तो ऐसी ही है ।

शत्रु ने मन ही मन मन्त्रों का स्मरण करके महास्त्र का प्रयोग किया,
प्रद्युम्न ने माया से अपनी आकृति वाले शरीरों की रचना करके उनके
महास्त्र को सही शरीर समुदाय रूप कपाट पर रोक लिया, इस प्रकार प्रद्युम्न
ने शत्रुकृत महास्त्र प्रयोग को विफल कर दिया ॥ ४८ ॥

भद्र—(देखकर, आनन्द) वयो, यह आकाश से देवसेना उतर
रही है ।

नारद—वज्रनाभ की आत्मप्रशसासक्ति से मैं परिचित हूँ । वज्रपुर में
प्रवेश का मौका पाकर समीपवर्ती इन्द्र ने प्रद्युम्न की सहायता करने का
आदेश दिया है ।

भद्र—यही बात है, और क्या ? मातलिपुत्र सुवर्चो द्वारा लाये गये
इन्द्र रथ पर आरोहण होकर गद प्रासाद शिखर पर से युद्ध भूमि में उतर रहे
हैं और शाम्ब इन्द्र के स्नेहभाजन प्रवर से अधिष्ठित ऐरावत पर आरोहण
होकर आकाशबुम्बी प्रासाद मार्ग से युद्ध-क्षेत्र में आ गये हैं । स्वयं जयन्त
भी प्रद्युम्न के रथ पर उतर रहे हैं ।

स्वयं चायं जयन्तः प्रद्युम्नस्यैव स्यन्दनेऽवतरति ।

नारदः—(विलोक्य) निर्भर परिष्वज्य प्रद्युम्न पृच्छत्यनामयं जयन्तः ।

भद्रः—नूनमिदानीम्—

प्राक्पारिजाताहरणप्रयुक्तप्रद्युम्नयाणव्रणवेदनाभिः ।

हृदन्तरे संभ्रतमत्सरेऽस्मिन् बलान्निघत्ते प्रणयं जयन्तः ॥४१॥

नारदः—इत्थमेवाकस्मिन्कजिगीपोपदर्शितपरस्परातिशयितपौरुपाणा पुरुपाणां परस्पराणुरागनिर्भराणि भवन्ति हृदन्तराणि ।

भद्रः—भगवन् स्मर्यते यथाय जयन्तः सन्नतपरापतितप्रद्युम्नशर-
सहस्रजर्जरीकृतकलेवरः सहस्रनयनपुटकोटराक्रान्तकायस्य जनयितुरनु-
करणमकरोत् ।

नारदः—(स्मृत्वा, विहस्य)

प्रद्युम्नाखगणव्रणप्रणयिभिर्गात्रैः शचीस्तुना

दृग्भिर्दन्तुरितोऽम्बकारिजनकाकारः किमत्राद्भुतम् ।

नारद—(देखकर) जयन्तप्रद्युम्न का गाढालिङ्गनकर के कुशलवार्ता पूछ रहे हैं ।

भद्र—निश्चय ही इस समय—

पूर्वकाल में पारिजातहरण प्रसङ्ग में प्रद्युम्न द्वारा चलाये गये बाणों की चोट से जयन्त के हृदय में जो द्वेष उत्पन्न हो गया था, इस समय जयन्त इस गाढालिङ्गन के द्वारा उस द्वेष के स्थान में स्नेह को निहित कर रहे हैं ॥ ४१ ॥

नारद—अकस्मात् किसी विषय में जिगीषा उत्पन्न हो जाने पर धीरजन अपना पौरुष प्रकट करते हैं, फिर भी उनके हृदयों में एक डूबरे के लिये स्नेह इसी तरह भरा रहता है ॥

भद्र—महाराज, आपको याद है कि यह जयन्त प्रद्युम्नकृत बाण-प्रहार से जर्जर शरीर होकर हजार नयनों से व्याप्त शरीर अपने रितु देव का अनुकरण करने लगे थे ।

नारद—(स्मरण करके, मुस्कुराकर)

प्रद्युम्न द्वारा प्रकृत अखगण से व्याप्त शरीर होकर जयन्त ने बाँधों से

एतत्त्वद्भुतमस्त्रघर्षणपरे प्रत्यङ्गमस्मिन्निजै-
रस्त्राण्यक्षिपुटैः सहस्रनयनो घर्षन्मभूद्वार्षिकः ॥ ५० ॥

(अपरतोऽवलोक्य) भद्र, का खल्वियं वज्रपुरादेव बहिर्भवन्ती वाहिनी
दानवानीकमभियोधयति ।

भद्रः—(निरूप्य) अस्मत्सार्थवाहिन एवैते सानुचरा यादवकुमारा
दानवराजदत्तानि तानि तानि त्रिभुवनावगाहानि वाहनानि समारुह्य वैरि-
व्यूहावरोधमपसारयन्त. परापतन्ति ।

नारदः—(सप्रमोदम्) सम्प्रति सर्वतोमुखी सङ्गरलक्ष्मीः ।

(नेपथ्ये कलकल । उभावाकर्णपत.)

(पुनर्नेपथ्ये)

शुण्डाकृष्टान्दन्तदण्डाभिदष्टान्
यन्निष्पिष्टान् कष्टकष्टामवस्थाम् ।

भरे पितृ शरीर का अनुकरण किया । इसमे क्या आश्चर्य है ? आश्चर्य तो इसमें
है कि जयन्त की देह पर जब प्रदुग्ध प्रत्यङ्ग मे बाण बरसा रहे थे तब
इन्द्र उनके प्रत्येक अङ्ग पर अपने नयनो की वर्षा करते हुए वार्षिक मेघ बन
गये थे ॥ ५० ॥

(दूसरी ओर देखकर) भद्र, यह कौन सी सेना है जो वज्र पर से ही
निकलकर दानवो पर आक्रमण कर रही है ?

भद्र—(देखकर) यह हमारे साथी यादव हैं .जो अपने अनुचरो के
साथ दानवराज द्वारा दिये गये त्रिभुवन सञ्चरण . धर्म्य वाहनो पर
आरुढ़ होकर शत्रुओ के व्यूह को चीरते हुए आगे बढ़ रहे हैं ।

नारद—(आनन्द स) इस समय चारो ओर लड़ाई है ।

(नेपथ्य मे कलकल । दोनो सुनते हैं)

(फिर नेपथ्य मे)

यह शम्भारुढ़ गजराज किसी को सूड से खींच कर, किसी को दाँतो से

दीनानित्थं दानवान्दर्शयन्तं
शाम्बाकृतं वारणं वारयध्वम् ॥ ५१ ॥

भद्रः—भगवन् , पश्य पश्य ।

शाम्बोत्सृष्टशरान्धकारविसरन्नीद्वारभारैर्नभः
संबोद्धुं गिरिजागुरोरिवगिरेर्गर्वाद्बुधुरं धावतः ।
वापुह्वव्यतिपक्तमार्गणमय जम्भद्विपत्कुम्भिनः
कुम्भावुदलयन्नुपैतिभुजयोर्दम्भान्निकुम्भासुरः ॥ ५२ ॥

नारदः—भद्र, कतरोऽयमपरतः समरसंमर्दः ?

भद्रः—(निरूप्य) भगवन् ,

ऐन्द्रस्यन्दनचक्रचक्रमचट्टकारवृट्टपञ्जर-
स्थूलास्थिस्थपुटान् पिनष्टि परितो निष्पात्य दैत्यान् गदः ।
इत्युद्वीक्ष्य विनिःक्षिपन्नुरुशरथेणीरनीकाम्रणी-
र्गम्भीरेण भुजोष्मणैष दनुजोर्धोशानुजो धावति ॥ ५३ ॥

दवाकर, किसी को पैरों से कुचल कर दानवों को वृष्टमय अवस्था में डालते हुए दौन बनाता आ रहा है, इसे रोको ।

भद्र—महाराज, देखिये, देखिये,—

शाम्बुद्वारा खलाये गये बाणवृत्त अन्धकार रूप वाले से व्याप्त आकाश को पार करने के निमित्त हिमालय की तरह सगर्ब आगे बढ़ते हुए ऐरावत के मस्तक को मूलपर्यन्त चुने हुए बाणगण से विदीर्ण करता हुआ निकुम्भासुर बाहुदपं से आगे की ओर बढ़ता आ रहा है ॥ ५२ ॥

नारद—भद्र, दूसरी तरफ यह कैसा युद्ध हो रहा है ?

भद्र—(देखकर) भगवन् ,

इन्द्रस्य के चक्के के सञ्चार से जिनकी हड्डियाँ स्थूल हो जाती हैं ऐसे दानवों को गद रणभूमि में पीसता आ रहा है, इस बात को देखकर उद्य बाणवृष्टि करता हुआ सैम्याप्रवर्ती सुनाम अपने पराक्रम के दपं से दौड़ता आ रहा है ॥ ५३ ॥

नारदः—घावन्तु ताप्रदेते यावद्भगवता गदाप्रजेनागत्यामर्षस्पृष्ट्या-
दृष्ट्या निगीतान्यायूपिनामीषाम् ।

भद्र—भगवन्नवधायेते कियान् विलम्बो वासुदेवस्य ।

नारद—आसीदधिवासितो द्वारवत्या रुद्रोपहारः । तन्निर्वर्त्य सम्प्रति
समागतमवगच्छ भगवन्त रुक्मिणीरमणम् ।

(नेपथ्ये सर्वसंसारापवादः शङ्खनादः)

नारद —(आकर्षणं सहर्षम्) भद्र, परिचीयते पाञ्चजन्यध्वनिः ?

भद्र —(सप्रमोदम्) सभाज्यते । (उच्चैरालोक्य च) आ., कथं पतगराजः ?

नारद —नूनमेव देवगणसमाचमाजगाम वियति वासुदेवः ! न चाय
मस्य मायामय. स्यन्दन. तादृशस्य तपस्तेजसा सनाथस्य द्विपतो रथस्य
प्रत्यवस्कन्दने प्रभवतीति पिथ्य पत्रमेनमनुपतति पतगेन्द्रः ।

भद्रः—कथमधिष्ठितमहेन्द्रनन्दनस्यन्दनमुत्सृज्य गदडमारूढो
रौक्मिणेयः ।

नारद—तब तक ये लोग दौड़ लें जब तक भगवान् कृष्ण अमर्षपूर्ण
दृष्टि से इनकी आयु को समाप्त नहीं कर दे रहे हैं ।

भद्र—महाराज, आप समझते हैं कि कृष्ण के आने में कितना
विलम्ब है ?

नारद—द्वारका में महादेव की पूजा आयोजित थी, उसे समाप्त करके
भगवान् को आया ही समझो ।

(नेपथ्यमे समस्त संसार को व्याप्त करने वाला शङ्खनाद)

नारद—(मुनवर, सहर्षं) भद्र, पाञ्चजन्य को ध्वनि पहचानते हो ?

भद्र—(हर्षं से) हो सकता है, (ऊपर देखकर) आः, क्या गदड है ।

नारद—निश्चय भगवान् वासुदेव आकाश स्थित देवगण के बीच पहुँच
गये हैं । प्रद्युम्न का मायामय रथ तपस्या के तेज से पुक्त शत्रु-रथ की बराबरी
नहीं कर सकता है इसीलिये गदड उस रथ के पीछे उतर रहे हैं ।

भद्र—जयन्त के रथ को छोड़कर प्रद्युम्न गदड पर आरूढ़ हो रहे हैं
क्या ?

नारदः—(सरोमाञ्चम्) अतः परमासन्नसंगरापवर्गदारुणानि परापतिष्यन्ति यदवलोकनाय निरवकाशमाकाशमुपयुं परि पर्युपस्थितानि स्थगयन्ति विमानानि ।

भद्र—(अधोज्वलोक्य सरोमाञ्चम्) इयमित्. शतक्रतुकुमारेण दुर्वारदारुणक्रमं परिक्रामता निकृन्निपतितैर्दनुजबलकलेवरैर्निविलतरमाकीर्णा समरधरित्री ।

नारदः—(विलोक्य) एषमेतत्, परन्तु—

देहैर्द्रोहभृतामपूरि न समिद्भूमीतलं केवलं
पौलोमीतनयेन किन्तु निहतैरेतैरुपेतैर्दिवम् ।
नीरम्भं परिपूरितासु परितोरथ्यासु मिथ्याभय-
व्यग्रैः स्वर्गिभिरर्गलाकुलगृहद्वा.स्थैरवस्थीयते ॥ ५४ ॥

(नेपथ्ये कलकलः उभावाकर्णयतः = पुनर्नेपथ्ये)

धिक्कष्टममुना विहङ्गापसदेन—

नारद—(रोमाञ्चित होकर) इसके बाद होगा भयङ्कर युद्ध, जिसे देखने के लिये आये हुए विमान आकाश को व्याप्त करके अवस्थित हैं ।

भद्र—(नीचे देखकर रोमाञ्चित होते हुए)

इधर जयन्त ने दुर्वारदारुण पराक्रम प्रकट करके कटकर गिरे हुए दानव कलेवर से युद्धभूमि को आवृत कर दिया है ।

नारद—(देखकर) यही बात है, किन्तु—

जयन्त ने शत्रुओं को मारकर केवल युद्धभूमि को ही उनकी लाशों से नहीं भर दिया है, उन्हें स्वर्ग पहुँचाकर उनसे स्वर्ग को भी भर दिया है । मरकर स्वर्ग पहुँचे हुए राक्षसों से स्वर्ग की गलियाँ खचाखच भर गई हैं, स्वर्गवासी मिथ्याभय से व्यग्र होकर घर की कुण्डियाँ बन्द करके दरवाजे पर खड़े हो रहे हैं ॥ ५४ ॥

(नेपथ्य में कलकल दोनों सुनते हैं फिर नेपथ्य में)

हाय, इस दुष्ट पक्षिराज ने—

केचित् पक्षोत्क्षेपवातैर्विधूतास्त्रासादेवासादिता मोहमन्ये,

मूर्ध्नो ह्य विड्निगीर्णाः परेषां बच्चू कोटिप्रोटितस्कन्धबन्धाः ॥५५॥

भद्र.—भगवन्, भयङ्कर सञ्चरति पतगेन्द्रः ।

नारदः—किमुच्यते कोपि किलावतारो महारुद्रस्य काद्रवेयकुलद्रोही
विहङ्गपुङ्गवः । पश्य—

विद्वेषं दनुजनुषां कुलेषु कुर्वन् निर्वन्धाद्द्वितयमुपाद्दे स देवः ।

तत्रैकस्त्रिभुवनकम्पनः पतन्ती चक्रं च प्रचितपराक्रमं परेषु ॥ ५६ ॥

भद्र—अतः परं प्राप्तुमवशिष्यते सुदर्शनः पित्र्य रणोपकरणं
कुमारस्य ।

नारदः—पुरतस्तदपि नेदीयः ।

भद्र—भगवन् पश्य पश्य, बैनतेय निहन्तुमुद्यत दानवेन्द्र दारुण-
विमर्दया गदया प्रहरति प्रद्युम्नः ।

नारदः—(विलोक्य, बज्रनाभ निर्दिशन्) अयं हि—

किष्ठी को पङ्क की वायु से उडा दिया, कुछ को भय से ही मूर्च्छित कर
दिया, और कुछ लोगो के गले को चीच के द्वारा तोड कर उनके सिर को
निगल लिया ॥ ५५ ॥

भद्र—महाराज, पतगेन्द्र बड़ी भयङ्करता से सञ्चरण कर रहे हैं ।

नारद—क्या कहते हो, यह पक्षिराज सर्पवशद्रोही तथा महारुद्र के
अवतार हैं । देखो—राक्षसो से द्वेष रखने वाले भगवान् विष्णु ने आप्रहपूर्वक
दो वस्तुएं अपनायी हैं, एक त्रिभुवन को कम्पित कर देनेवाला पक्षिराज और
दूसरा है शत्रु पर पराक्रम प्रदर्शित करने वाला चक्र ॥ ५६ ॥

भद्र—इसके बाद प्रद्युम्न को पिता का युद्धोपकरण सुदर्शन पाना
शेष है ।

नारद—आगे वह भी समीप है ।

भद्र—महाराज, देखिये देखिये, गरुड को मारने पर उतारू दानवेन्द्र
को भयङ्कर प्रहार करनेवाली गदा से प्रद्युम्न आहत कर रहे हैं ।

नारद—(देखकर, बज्रनाभ की ओर संकेत करके)

हृदिपतितगदः प्रतिप्रतीक-

प्रसरदस्त्र्निवहारुणो विभाति ।

सपदि सवितृविभ्यसंविभागाद्

गिरिरिव सम्परिवद्धसान्ध्यमेषः ॥ ५७ ॥

भद्रः—क्षण प्रमुञ्च प्रबुद्धो दनुजराजः । (सभयम्) पश्य पश्य, गद्देयं
दानवप्रयुक्ता प्रद्युम्नोरसि परापतति ।

नारदः—(सोढेगं कर्णो विधाय) प्रतिहतममङ्गलम् ।

(नेपथ्ये)

हाहा महासुरविस्फुटगदाभिमृष्टः

कषां दशामयमुपैति विशालबाहुः ।

भद्रः—(आकर्ष्यं) परित्रायस्वेति मूर्च्छितः पतति)

(नेपथ्ये शब्दध्वनिः)

यह वज्रनाभ हृदय पर प्रगुम्न से गदा द्वारा ताडित हुआ है, इसके रग रग से खून निकल रहा है, उस खून से रञ्जित होने के कारण वह ऐसा लग रहा है मानो सूर्यकिरण के सम्पर्क में आया हुआ सान्ध्यमेष से आवृत गिरिराज ही ॥ ५७ ॥

भद्र—घोड़ी वेर तक मूर्च्छित रहकर वज्रनाभ होश में आ गया । (डरकर) महाराज, देखिये, यह वज्रनाभ को गदा प्रगुम्न की छाती पर गिर रही है ।

नारद—(उद्विग्न होकर, कान मूदकर) भगवान् भला करें,

(नेपथ्य में)

हाहा ! महासुर वज्रनाभ द्वारा प्रहत गदा से आहत होकर यह विशाल-
बाहु प्रद्युम्न कष्टमय दश को प्राप्त हो रहे हैं ।

भद्र—(चुनकर) (वचाओ—बहकर मूर्च्छित होता है)

(नेपथ्य में शब्दध्वनि)

नारद—(आकर्ष्यं) समाश्वसिहि समाश्वसिहि, पाञ्चजन्यध्वनिरयं प्रबोधयति प्रद्युम्नम् ।

(पुनर्नेपथ्ये—प्रियन्न, प्रियन्न)

एतस्य मोहमपसारयति त्रिलोकी

मुञ्जीवयन्निव जगन्निधिशङ्खनादः ॥ ५८ ॥

भद्र—(समाश्वस्योत्थाय) (सकातयम्) भगवन्, किमवलोक्यते ।

नारद—पश्य पश्य, अम्बरादद्यतरन्त सुदर्शनमुत्थायाभिवाद्य पाणौ-
कृत्य प्रहरति प्रद्युम्न ।

भद्र—(शोक्कष्टम्) भगवन्, अपि नाम निर्दनुजदुदिन त्रिभुवनं दर्शयिष्यति सुदर्शन ।

(नेपथ्ये कलकल उभावाकर्णयत । पुनर्नेपथ्ये)

प्रद्युम्नेनावकृत्त. कृतयिकृतधरं दानवेन्द्रस्य दोर्भ्या
मङ्गे कुर्वन्निधोर्वा निपतति निविडस्नेहबन्ध. कयन्धः ।

नारद—(सुनकर) धैर्यं धारण कीजिये, धैर्यधारण कीजिये, यह पाञ्च-
जन्य शब्द कुमार को होश में ला रहा है ।

(फिर नेपथ्य में—बड़ी खुशी, बड़ी खुशी) भगवान् के शङ्ख का शब्द प्रद्युम्न की मूर्च्छा को दूर कर रहा है ॥ ५८ ॥

भद्र—(आश्वस्त होकर, उठकर) (कातर भाव से) महाराज, क्या देख रहे हैं ?

नारद—देखो देखो, आकाश से उतरते हुए सुदर्शन को उठाकर प्रद्युम्न ने प्रणाम किया, फिर हाथ में लेकर वह उस से प्रहार कर रहे हैं ।

भद्र—(उत्कण्ठित भाव से) महाराज, क्या सुदर्शन त्रिभुवन से दानवों के आतङ्क को दूर कर देगा ।

(नेपथ्य में कलकल दोनों सुनते हैं फिर नेपथ्य में)

प्रद्युम्न ने दानवेन्द्र का सिर काट दिया, उसके गिरने से पृथ्वी विकृत हो रही है, उसकी देह बाहुओं से पृथ्वी का आलिङ्गन सा कर रहा है । उसके

कण्ठेनाक्रम्यचक्रं गगनतलमथोल्लङ्घयन्नस्य मूर्ध्ना
बाहुर्धाविन्नपर्वण्यपरमवचतुरत्युद्मस्तत्यर्कविम्बम् ॥ ५९ ॥

(पुनर्नेपथ्ये)

स्वर्नारी विकुरापकर्षणरसाहम्भावसम्भावना—

भारोन्माद्वशेन येन गमिता निर्निद्रमेष क्षया ।

सोऽयं प्राप्तजनार्दनानुजभुजोपश्लेष विश्लेषित-

द्वैतोद्वेगमुपैति धीरशयनस्वापं सुनाभासुरः ॥ ६० ॥

(उभावाकष्यं, सप्रमोदम्) आ कथमतिचिरेण त्रिभुवनान्त करणा-

नन्दनिरन्तराण्याकर्णितानि वचनामृतानि ।

भद्र — (विलोक्य सानन्दम्) भगवन् पश्य पश्य,

कृत्वा शाम्बशरावली विदलितारम्भं निकुम्भं पुर-

पातालाय विधाय मानसममी दूरं व्यपेता द्विषः ।

गले में चक्र लिपटा हुआ है, उसका घिर तथा बाहु आकाश में उड़कर
अपर्व में राहुकृत ग्रहण की शब्दा पैदा करते हुए सूर्यमण्डल को ग्रस्त कर
रहे हैं ॥ ५९ ॥

(फिर नेपथ्य म)

देवाङ्गनाओं के बाल छींचने की इच्छा, तथा अहङ्कार प्रयुक्त उसकी
सभावनाकृत उन्माद से जिसने रातें जगकर बिताई, वह सुनाभासुर
गद के बाहुओं से पीड़ित होकर अद्वैत सुल में वीरशयन प्राप्त होकर
सो रहा है ॥ ६० ॥

(सुनकर, सानन्द)

अहा, किस प्रकार शीघ्र ही त्रिभुवन के अन्त करण को आनन्दित करने-
वाले वचनामृत सुनने को मिल गये ?

भद्र—(देखकर, सानन्द) महाराज, देखिये देखिये ।

शाम्ब ने निकुम्भासुर के घारे प्रयत्न व्यर्थ कर दिये, तब राक्षसों ने
निकुम्भ को आगे करके पाताल भाग जाने की इच्छा से मैदान छोड़ दिया ।

आदेशाद्यशाङ्गिणः शमयितुं निर्यान्ति सञ्जालसाः ।

प्रासादाभिमुद्धा विषादविधुरान्दारान् कुमारास्त्रयः ॥ ६१ ॥

नारद — (सानन्दम्) तदहमुपगत्य सम्भाषयामि प्रभावतीप्रद्युम्नी ।

भद्र — (अञ्जलि बद्ध्वा) आज्ञापयतु भवानहमपि गत्वा वासुदेव-
वासवयो प्रसादसुखमनुभवामि ।

नारद — एवमस्तु ।

(भद्र निष्क्रान्तः)

नारद — (परिक्रम्यावलोक्य च) कथमित एव चन्द्रवती गुणवत्यो-
रानन्दाय गदशाम्बामनुप्रहित्य तरलिकया सह स्वपन्थानमवलोकयन्ती
प्रभावतीमुपसर्पति प्रद्युम्नः ।

(ततः प्रविशन्ति ययानिदिष्टाः प्रद्युम्नप्रभावतीतरलिका
विभवतश्च परिवाराः)

अब भगवान् के आदेशानुसार तीनो कुमार स्त्रियों को शान्तिमुख प्राप्त कराने
के लिये लज्जित भाव से प्रासाद की ओर जा रहे हैं ॥ ६१ ॥

नारद—(सानन्द) मैं प्रभावती तथा प्रद्युम्न के समीप जाकर उनको
साधुवाद प्रदान करूँ ।

भद्र—(हाथ जोड़ कर) आप आज्ञा दें, मैं भी कृष्ण तथा इन्द्र के पास
जाकर उनके सुख में हिम्सा बटाऊँ ।

नारद—एवमस्तु ।

(भद्र का प्रस्थान)

नारद—(आगे चलकर, देखकर), क्या, इधर चन्द्रवती तथा गुणवती
को प्रसन्न करने के लिये गद तथा शाम्ब को भेजकर तरलिका के साथ प्रद्युम्न
साह देखती हुई प्रभावती के पास आ रहे हैं ।

(ययानिदिष्ट रूप में प्रद्युम्न, प्रभावती, तरलिका एवं उचित
परिवार का प्रवेश)

प्रभावती—(सोच्छासहर्षंमुपसृत्य कुमारस्यासनमुपगत्य)

कुमार—(उपविशति)

तरलिका—(तालवृत्तेन बीजयति)

कुमार—(सानुनयम्) देवि, पितृकुलद्रोही तथाहमिति मा ते मन्यु-
रस्तु । (इत्यञ्जलिं घटयति)

प्रभावती—(सहर्षंविषादम्) दिद्विआ परिद्विआइ पुण्ण परिणइ
मग्गाइ अम्हँसोहग्गाइ, तह दिद्विआ अदुक्करारम्भ दावणाइ णिइलि-
आइ दनुअ दुहिणाइ । (प्रभावतीपटाञ्चलेन मुखमावृत्य रोदिति) (दिष्ट्या
परिस्थितानि पुण्यपरिणतिमार्गानि अस्माक सौभाग्यानि, तथा दिष्ट्या अदुक्करा
रम्भ दावणानि निर्दलितानि दनुजदुर्दिनानि) ।

नारद—(उपसृत्य) देवि अलमलमश्रुपातेन,

तातस्ते दिवसकरोपकृतसरोकं

स्वर्लोकं मरणमद्वात्सवाद्वाप्त ।

प्रभावती—(उच्छ्वास तथा हृष के साथ प्रदुग्ध के लिये आसन
छाती है)

कुमार—(बैठने हैं)

तरलिका—(पट्टा झलती है)

कुमार—(अनुनय के साथ) देवि, मैं तुम्हारे पितृ कुल का द्रोही हूँ इसके
लिये तुमको मुझसे छुट नहीं होना चाहिये । (हाथ जोड़ता है)

प्रभावती—(हर्ष तथा विषाद के साथ)

भाग्यवश पुण्य परिणामस्वरूप हमारे सौभाग्य सुरक्षित रहे और भाग्यवश
ही भयङ्कर कार्य के कारण भीषण दानवदल समाप्त हो गया ।

(प्रभावती अँधल से मुहँ बाँपकर रोती है)

नारद—(समीप जाकर)

(बेटो, तुम्हारे पिता सूर्यलोक का भेदन करके रणमरण के कारण स्वर्ग

प्रत्यूहं कमपि चराचरस्य हर्ता

भर्ता ते भवनमुपागतः किमन्यत् ॥ ६२ ॥

(सर्वे ससम्भ्रममुत्थाप्य प्रणमन्ति)

तरलिका—(सादरमासनमुपनमति । सर्वे ययोचितमुपविशन्ति)

(नेपथ्ये)

भो भोः पौरजानपदा , प्रवर्त्यतां माङ्गलिकमातोद्यं दनुजराजभवन-
मुपगतौ महेन्द्रोपेन्द्रौ बज्रपुर सशाखानगरसहस्रं चतस्रश्च ग्रामकोटी-
श्चतुर्धाविभज्य हसकेतु प्रद्युम्नस्य विजय जयन्तस्य चन्द्रप्रभङ्गदस्य गुण-
वन्त शाम्बस्य चतुर. कुमारान् सम्प्रत्येव सम्पादितसम्भारमभिषिञ्चतः ।

(सर्वे आकर्ष्यं हर्षंन्नाटयन्ति । पुनर्नेपथ्ये)

आकल्पान्तं राज्यमेतच्चतुर्णा-

मास्तामेषामस्तु गोप्ता जयन्तः ।

सद्यः सर्वे सन्तु दिव्यानुभावा-

दिव्यास्त्रज्ञा व्योमयाना युधानः ॥ ६३ ॥

सिंहारे हैं, और ससारभयहारी तुम्हारे पतिदेव तुम्हारे घर आ गये हैं, और
क्या चाहिये ॥ ६२ ॥

(सभी शीघ्रता से उठकर प्रणाम करते हैं)

(तरलिका सादर आसन देती है सभी ययोचित रूप में बैठते हैं नेपथ्य में)

हे नगरवासियो, आप मङ्गल वाद्य बजायें, इन्द्र तथा कृष्ण दानवराज
के भवन में आकर शाखानगर समेत बज्रपुर तथा चार करोड़ गाँवों को
चार हिस्से में बाट दिया है एक भाग प्रद्युम्न के पुत्र हसकेतु को, दूसरा भाग
जयन्त के पुत्र विजय को, तीसरा भाग गद के पुत्र चन्द्रप्रभ को तथा चौथा
भाग शाम्बपुत्र गुणवान् को देकर तत्काल सामग्री प्रस्तुत करके उनका
अभिषेक कर दिया है ।

(सभी सुनकर हर्ष का अभिनय करते हैं । फिर नेपथ्य में)

प्रलयपर्यन्त यह राज्य इन चारों का रहे, जयन्त इनके रक्षक रहे, यह
चारों कुमार सद्यदिव्यशक्ति सम्पन्न, दिव्यास्त्र के ज्ञाता, व्योमविहारी तथा
पुत्रावस्थापन्न हों ॥ ६३ ॥

नारदः—(आकर्ष्यं) (सानन्दम्)

वरोऽयं वासववासुदेवयोः कमपि महिमानमारोपयति व कुमारान् ।

प्रभावती—(सानुशयं जनान्तिकम्) सहितरलिफ कि उण अज्जडत्तस्स
आणविस्सदि भअव महुमहणो । (सखि तरलिके, कि पुनरायंपुत्रस्य आशा-
पयिष्यति भगवान्मधुमवनः ।)

(नेपथ्ये)

राजानोऽमी पालनाय प्रजानां

यावत्प्राप्तप्रौढभावा भवन्ति ।

प्रद्युम्नाद्याः स्थापितास्तावदत्रे-

त्युक्त्वा सेन्द्रो यादवेन्द्रः प्रयाति ॥ ६४ ॥

तरलिका—(आकर्ष्यं) सहि जिदं अम्हेहिं । (इत्युभे हर्षं नाटयतः)
(छलि, जितमस्माभिः ।)

तरलिका—(ऋष्वंभवलोक्य) कहं चलि आ इज्जेव महेन्द्रादीणं विमा-
णाइं एसो भवअ महुमहणो विहङ्गवहणा गअणं आरुहिअ पत्थादुकामो

नारद—(सुनकर सानन्द)

इन्द्र तथा कृष्ण का यह वरदान आपके कुमारो को महिमातिशय प्रदान
कर रहा है ।

प्रभावती—(परित्ताप के साथ, लोगों से बचाकर)

सखि तरलिके, न जाने, भगवान् मधुसूदन आर्यपुत्र को क्या आदेश
देते हैं ?

(नेपथ्य मे)

तत्काल अभिषिक्त यह राजागण जब तक प्रजापालन के योग्य अवस्था को
प्राप्त करें तब तक प्रद्युम्न आदि को यहाँ रखा जाता है, ऐसा कह कर इन्द्र
के साथ कृष्ण जा रहे हैं ॥ ६४ ॥

तरलिका—(सुनकर) तब जीत हमारी रही ।

(दोनों हर्ष का अभिनय करती हैं)

तरलिका—(ऊपर की ओर देखकर) क्यों, महेन्द्र आदि के विम न

पतीएदि । तुम्हाणं बहुआण अन्ते उराइं ता सहि पणम चराचरगुरुणो
अत्तणो ससुरस्स । (कथ चलितान्येव महेन्द्रादीना विमानानि, एष भगवान्मधु-
मयनः विहङ्गपतिना गगनमारुह्य प्रस्थातुकामः प्रतीयते । दूरं बभ्र्वोऽन्तःपुरस्य ।
तद् सखि प्रथम चराचरगुरुमात्मनः स्वशुरम् ।)

प्रभावती—(ससम्भ्रममुत्थाप्य प्रणमति, इतरेपि यथोचितमाचरन्ति)

नारदः—(सानन्दम्) कुमारप्रद्युम्न, किन्तेभूयः प्रियम् ?

कुमारः—(अञ्जलिं बद्ध्वा) भगवन् , किमपरम् , यस्या युष्माकमा-
शिषोऽयमुदकं पुनः पुनः सैवास्माकमस्तु ।

नारदः—(विहस्य) का तुम्यमाशीः ?

देवी त्वां सुरजिम्नवाम्बुदतडिल्लक्षीरसूतस्वयं

त्वद्वाह्णं पुरुहूतपत्तनपतत्रासोपसर्गागले ।

किञ्चानाविनिविष्टविश्ववलयं ब्रह्मैव यच्चिचन्त्यते

तस्य त्वं त्रिगुणोर्मिनिर्मितचतुर्न्यूहस्यतुर्यंमहः ॥ ६५ ॥

तथापीदमस्तु—

चल पडे ? यह भगवान् कृष्ण गण्ड पर आरुढ होकर जाने को उद्यत मालूम
पड रहे हैं । तुम उनकी बहूएँ हो, अतः तुम विश्वगुप्त अपने स्वशुर को
प्रणाम करो ।

प्रभावती—(शीघ्र उठाकर प्रणाम करती हैं, अन्य जन भी यथोचित
वाचन करते हैं)

नारद—(प्रसन्नता से) कुमार प्रद्युम्न, तुमको और क्या प्रिय है ?

कुमार—(हाथ जोड़कर) भगवन् , और क्या ? आपके जिन आशीर्वादो
का यह फल है, हमें वही आशीर्वाद पुनः-पुनः प्राप्त होते रहे ।

नारद—(मुस्कुराकर) तुमको क्या आशीर्वाद, कृष्णरूप मेघ की विद्युत्कृता
रूपा स्वयं लक्ष्मी ने तुमको जन्म दिया, तुम्हारे बाहु इन्द्रपुरी की रक्षा करते
हैं, जिसमें समस्त विश्व लीन है, जिसे योगिजन ध्यान करते हैं, उस चतुर्धाविभक्त
ब्रह्म के तुम चतुर्यं रूप हो ॥ ६५ ॥

फिर भी ऐसा होवे—

प्राक् प्राप्नोतु चिराद्गिरासद्वचरीमुद्रां समुद्रात्मजा
 नो चेन्मुञ्चतु वैरमित्यपि न चेन्मूढेषु मा मञ्जतु ।
 येषां दुर्मदमोहदुर्दिनदृशां दोषस्पृशामप्रतः
 कालप्रस्त इवावसीदति सतामन्तर्निगूढो गुणः ॥ ६६ ॥

अपि च—

पुरस्तात्पैशुभ्यं परिहरतु गोष्ठीं गुणजुषा-
 मथैषामौघत्ये मुदितमिदमास्ताञ्जगदपि ।
 कवेरेतत्करपावधिमधुरगम्भीरगुरुभि
 गिरां गुःफैः स्यूतं सुकृतमनुगृह्णन्तु सुहृदः ॥ ६७ ॥

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

नाट्योपसंहारो नाम सप्तमोऽङ्कः ।

इति महोपाध्यायश्रीहरिहरविरचित प्रभावतीपरिणयं नाम
 नाटक समाप्तम् ।

पहले तो लक्ष्मी सरस्वती की सहचरी बने, यदि ऐसा न हो तो कम से कम लक्ष्मी सरस्वती से वैर त्याग दे, यदि यह भी संभव नहीं हो तो लक्ष्मी उन मूढ जनों पर अनुराग नहीं करे जिन मोहप्रस्त दोषदर्शी अन्त करणों में सज्जनों के गुणगण कालप्रस्त की तरह समाप्त हो जाते हैं ॥ ६६ ॥

और— पिशुनता गुणियों की गोष्ठी को छोड़ दे, यह ससार गुणियों की उन्नति में प्रयत्नशील हो, और इस कवि की गम्भीर गुहवाणी में निबद्ध यह रचना सहृदयों द्वारा अनुगृहीत होती रहे ॥ ६७ ॥

(सभी का प्रस्थान)

नाट्योपसंहारनामक सप्तम अङ्क समाप्त

महोपाध्याय हरिहरोपाध्यायकृत प्रभावतीपरिणय नामक
 नाटक का हिन्दी रूपान्तर समाप्त

प्रभासतीपरिणयस्य

श्लोकानुक्रमणिका

अ	वारा	अक्षरा	पं	पते	पं
अत्रनि रजनिरन्या	१४५	आरूढेऽपि	१५१	पते भूपतयो	३६
अन्तपुरापराधे	१५०	आलक्षित	४६	पते श्वेतमद्युष्ठा	१९७
अन्नमदूर्	२०६	आविष्कुवन्निव	१५३	एषा तयो	५
अथ सप्तमा	१०५			ऐ	
अथावनघ	१०४	इ		ऐन्द्रस्पन्दन	२०९
अधिगानमनेका	१४०	इत पीत	१२९		
अधिगतमिदधिज	१००	इतो वातजात	१७६	क	
अनधीनप्रतीकारे	१६	इदमिह मम	२०३	कति कति न	१९
अनाकलितनीरस	२३	इयत्या रूपसम्पत्त्या	२८	कतिधा न	११२
अनुकूलमेव देव	५१	इह सन्निरहितोऽसि	१११	कयमसि तरला	१०२
अन्त स्थिरानुरागो	४४			कर्णोमादन	१९५
अन्तश्चिन्तावतार	२३	ई		कम्पयति विद्यमङ्ग	९६
अन्योन्याघोष	१८७	ईशेषु दुरूहेषु	३२	कलय क्लृप्तक	९५
अपसरतु सुरेन्द्र	१३७	उ		कलानाथो राकामिव	५१
अपयनाभासन	७२	उत्कम्पितानि	५५	कविना निपुण	७
अपेक्षने	१५५	उत्सिक्तानि	१५२	कवे कथ	६
अप्युज्झितोचिन	१७	उद्देजयन्ति दैतेया	३२	कर्त्ता तां	७८
अथ लोकाचार	५२	उदभूयमादेन्दु	१४३	कायविश्री जन	७४
अथि भवशे	९३	उन्माद्यदिष्य	१३२	काश्यपा भूयमस्माक	१८
अल विळम्बि	१९४	उपहरसि	१२१	कि कपूर	११८
अस्तान्यस्तीकृण	१३१	उरसि विसिनीपत्र	९०	कि जातु	२४
अस्तोर्वीधरमन्दिरं	६२	उल्लसदमिन	१३१	किं भूदात्	१५५
अस्याम्भोज	३०	उर्वी दुर्वारदैत्या	१४	किमपि तदग्निमा	१९
अक्षैराकुलिते	१०१	उत्सृज्य	१२२	किमिह निशया	१४४
अहह धिकुरा	३७	ए		किमया	१५७
अहो महोश्रता	१७३	एकत्र रम्यरमणी	१३७	कुतुकादर	१०१
ना		एतस्य मोहमपसारपति	२१४	कुर्वाण	१५२
आकल्पान्त	२१८	एतस्या कवरो	१७५	केचित् पञ्चोक्षेप	२१२
		एतस्या	१००	केलीशिक्षण्ड	३६
		एतानि मत्प्रणय	११०	केलिप्रमस्वित्त	३६

कोपेऽपि जल्पितमलं	९७	तव नवकवरी -	१७७	ध	
कोऽयं कथोपघाती	१८६	तन्निर्णीत भवति	२०	ध्वनति मधुरमस्थाः	२०
क्रोधात् सद्यः	१९९	तन्वीं तनुं	११२	ध्यानावधान	१
क्रोधान्धेन	६०	तस्मिन्स्तपःपरिभवे	५५	ध्यायन्त्योरेतयोः	१२८
कुम्भमधुकरे	९५	त्यक्त्वा स्वदिरहेण	९३	ध्यानतदयामल	२५
कृत्वा शापवशरावली	२१५	स्वप्नेप्रेण	१७५	धिक् पाटञ्चर	२०१
कृत्तिमचामपयोरपि	११	स्वमन्यहरि	१५४	धीरन्धेहि पदे	१६५
ग		ताण्डवोन्मद	१७६	धुनीते ईसाली	९
गतिः प्रतिपदं	१६३	तातस्ते	२१७	न	
गात्रं नाप्सरसां	१८१	तायस्त्विरसरस	८९	न केवलं	९०
गुणवल्लभवदो	१७७	त्वियौ पर्यु	१३९	न तावदपि	१९६
गुर्वीमथ धुर	१९८	त्रासोत्कम्पिनमस्तुरा	११	नवामोदोद्गारा	१३०
घ		त्रिभुवनजययात्रा	१८८	नान्तःपुर	१६८
घकितचकित	१११	त्रैलोक्यधारा	८०	नापक्रान्त	१८९
घरणभरविभङ्गुरा	१३१	द		निर्माय जन्मावधि	१००
घरमशिखरिशोर्षे	४२	दत्तोष्णांशुक	१४१	निर्माय निर्माय	१८५
घरमाचल	१४०	दिङ्नागरीवदन	२	नियतयिद् तनीया	२५
चित्रनेतदनु	२७	दुर्लभ्याद्यु	१४६	निरालम्बामम्बा	५८
चिराद्दृष्ट	१९१	दूरं प्रेम दुर्लभ	२०२	निशि निशि मदयन्ति	३९
चैत्रोचन्द्रधृति	२६	दूरादाकुलमक्षिणी	९९	निर्भासान्	४७
चोरककुम्भमरसार्मा	९६	दूरादानकदुन्दुभे	१२	नीरावैर्देह्ये	३४
ज		देव्या मानापनोद	१	नेत्रातिथि	२८
जगदशरण	७१	देवा यत्र	६९	नैवोपैति	११६
जन्यति जडिमानं	७०	देवी र्वा	२२०	प	
जटठतरकटोरो	१९८	देवो द्वारवती	१२	पतगन्पति	३१
जातस्तवमेव	२	देहैर्द्रोहभृता	२११	पन्थाः पाथोधि	९९
जानीमहे	१५४	द्वैत्याः कृत्याय	२०५	परपरिमरुपात्र	२०३
ज्योतिरपि	३५	दैत्येशादेशवाचः	१८७	परितः सरोरुह	१३१
त		देवादस्तमुपेयुधि	६२	परिस्तं	६९
त विद्यो विषयं	१९१	दो स्तम्भोद्रेक	१८८	परोन्मीलम्भती	१११
तपैतामहमोह	७५	दृष्कटकल्पान्त	१८६	परोपकाराय	५
कृते	८०	दृष्टा भिकुरनिकरं	१७४	पवनैः प्रकम्पित	१७६
		द्वीपान्तरेषु	४९	पश्यन्तोऽप्यनिरीक्षणः	३९

पान्थो हि	११६	व	युष्मादृशी	१४४	
पारिणात हरणा	१९२	वद्भुभिरनुप	२००	पुष्पामिर्दनुजा	१८९
पाषाणरेखा	१०३	म	ये चत्वार	६	
पितयुपरते पुत्रा	१६	मुक्कुण्डा	१९३	वेषा इन्	१५२
पुरत पुरमेव	१२०	मुक्कुण्डान्	१९२	र	
पुरश्चिरमनोरथ	९२	भूषा पीयूषाशु	११३	रतिमतिचिरची	९८
पुरस्तात्पैशु-य	२२१	भ्रमसि नयनालोके	७२	रक्षिरयम्भू	१३८
पुरस्वकालाप	१५६	म	राशामाङ्गामह	३५	
पुरा पराधीनतया	११४	मदस्त्रभ्यु-प्रस्त	२०२	राजानोऽनी	२१९
पूर्णा दिङ्मनगरत्नाकर	१४	मदुत्सङ्गासङ्ग	१७४	ल	
पुलकयति	१६०	मया मायामवस्थाय	११७	लीलादोल-म्रज	२७
प्रकम्पयद्भि	१३०	मया लम्ब	११८	लोकत्रयप्रतिभय-	५६
प्रतिकृते	४५	मट्यालेरयगते	१०६	व	
प्रतिनवरसो	६७	मयि चेन्मदन	११४	वशे यद्विषज	२०१
प्रत्येक नलिनीदला	३३	मलयजरसो	७०	वक्रयति	१६२
प्रययसि यथा	२०२	माध्याह्निके	३३	वक्षोधनश्लोम	१६३
प्रदुष्मनास्त्रगण	२०७	माने मनागपि	१७०	वचोभिरभि	२०८
प्रपुम्न परिणोष	१२०	मूढत्व द्रढय	२०४	वज्रनामस्य	१०
प्रपुम्नेनावकृत	२१४	य		वदनमुद्रण	१३८
प्रयात पाताल	१४९	यश्चाद्भुते कर्मणि	८१	वानापने	१६७
प्रवेशिता	१८८	यद्भि कययसि	१६९	विक्रामम्रक	१९९
प्रसादितासीव	२९	यदि निरति	१७०	विषट्यकपटा	३०
प्रसूनपटला	१३०	यदीपा प्रति	१५१	विचित्य प्रागम्या	२६
प्रस्थानुविष्णु	२०५	यदेतस्या	१५६	विक्रितजगतो	२३
प्राक पर्याप्ततपश्चर्या	१३	यद्यप्येष	७	विनय न	१४८
प्राकपारिजाता	२०७	यस्मैना	१८०	विदूर वेदेश्यो	६
प्राक प्राप्नोतु	२२१	यस्मिन् दूरदिगा-त	११३	विदूष दनुजनुषां	२१२
प्राचीनाचलमौलि	१५१	याञ्चामिरेव	१६३	विधिना विनिपात	१३८
प्रात प्र-यद्गुणोद्य	१६०	यानेव क्षयमोहते	१८१	विधुरविधिविधेयी	७०
प्रादुर्भूय	४	या-यासन्	१४२	विषासु क्रमशिक्षितासु	५०
प्राप्तु ररना-यद्भु	३१	यावद्वियोग	१६१	विमल युवयो	१२४
प्रिदेक्षिताया	११५	यावदेष	१९४	विमुद्रयन्तो	१८५
		यावन्न कमल	११४	वियद-या	१४१

	८	स	स्फूर्जद्दुर्जति	२१
विरलोऽपि गुणो			स्तबकस्तन	२३२
विरहेण रवेतिना	१५३	संख्यावद्भिः	स्मरनरपतेः	२५३
विभोपश्रुत	६७	ससिक्ता	स्वगौरी विकुरा	२१५
विश्वम्भ्यापि	२१७	सगर्वं कुर्वन्तः	स्वप्नेऽपि	१६८
विसर्पत्	१०१	सद्यो नद्यो	स्वेद्रेनीच्छल	११९
वीरवर्त्मविधुरेण	२१	समितममित	ह	
वेगावह्य	१६२	सम्प्राप्तः प्रतिमदिरं	हसाः स्व.सरसी	१४५
व्याप्नोति	१९९	सश्चरीनिबहेन	हस्याद् समुदाहनः	६८
		सासारिकेऽस्मिन्	हरति सरसि	२९
श		साधारणैः	हरन्ति लवशो	१९६
शमितसलिल	१७९	सुकृतैः	हरिद्राड्याङ्गि	१७३
शाम्बोत्सृष्ट	२०९	सुवदित इह	हा मात.	१८१
शुण्डाकृशान्द	२०८	सुप्ता शैवलशीतलेऽपि	हा नाथेत्य	१९३
शेषे विशेषेण	१३३	सुरमिसमय	हाहा महासुर	२१३
शोणन्ते	१७०	सोपानेऽस्मिन्	हृदये सुचिरं	११५
शोभामम्भो	१३९	स्तनजघन	हृदिपतितगदः	३१३
श्रीरामेश्वरमीश्वरी	४	स्फोटस्फारित	हृदि विरह	१०४
श्रुत्वा मन्मथ	८१			

